

शोध दिशा

ISSN 0975-735X

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका : केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से अनुदान प्राप्त

शोध अंक 25

जनवरी-मार्च 2014

200 रुपए

संपादकीय कार्यालय

हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ०प्र०)
फोन : 01342-263232, 07838090732
ई-मेल : shodhdisha@gmail.com
वेब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय

दिल्ली एन०सी०आर०
अनुभूति
सी-106, शिव कला
बी 9/11, सैक्टर 62, नोएडा
फोन : 09952070700

हरियाणा

डॉ० मीना अग्रवाल
बी-203, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,
गुडगाँव (हरियाणा)
फोन : 0124-4076565, 07838090237
डॉ० हरिशरण वर्मा
एफ-120, सेक्टर 10
डी०एल०एफ० (के०एल० मेहता स्कूल के पास)
फरीदाबाद (हरियाणा)
(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रबंध संपादक

डॉ० मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक

डॉ० शंकर क्षेम

उपसंपादक

डॉ० रश्मि त्रिवेदी

कला संपादक

गीतिका गोयल/ डॉ० अनुभूति

उपसंपादक

डॉ० अशोककुमार 09557746346

विधि परामर्शदाता

अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता

ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी०ए०

शुल्क

आजीवन :

व्यक्तिगत : चार हजार रुपए

संस्थागत : पाँच हजार रुपए

वार्षिक शुल्क : पाँच सौ रुपए

यह प्रति : दो सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजे। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी आफसेट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

परामर्श-मंडल

- डॉ० सुधा ओम ढींगरा, 101, Guymon Court, Morrisville, NC-27560 USA
- डॉ० सुरेशचंद्र शुक्ल, अध्यक्ष इंडो-नार्वेजियन सूचना एवं सांस्कृतिक मंच
- प्रो० हरिशंकर आदेश, भारतीय प्राच्य विद्या संस्थान, कनाडा
- डॉ० आर०पी० सिंह (पूर्व कुलपति, मेरठ विश्वविद्यालय) प्राचार्य बरेली कॉलेज, बरेली (उ०प्र०)
- डॉ० अशोक चक्रधर, उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
- डॉ० कमलकिशोर गोयनका, ए-98, अशोक विहार फ़ेज-1, दिल्ली 110052
- डॉ० हरिमोहन, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, के०एम०मुंशी हिंदी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
- डॉ० बाबूराम, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र (हरियाणा)
- डॉ० राजेंद्र मिश्र, 14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म०प्र०)
- डॉ० आदित्य प्रचंडिया, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट (डीम्ड यूनिवर्सिटी) दयालबाग, आगरा (उ०प्र०)
- डॉ० रामसजन पांडेय, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
- डॉ० दामोदर खड्गसे, कार्याध्यक्ष, महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी, मुंबई (महा०)
- डॉ० आनंदप्रकाश त्रिपाठी, अध्यक्ष हिंदी अध्ययन मंडल, डॉ० हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
- डॉ० पद्मा पाटिल, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महा०)
- डॉ० माया टाक, प्रोफ़ेसर संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)
- डॉ० नरेंद्रकिशोर पांडेय, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)
- डॉ० अनिलकुमार जैन, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)
- डॉ० हनुमानप्रसाद शुक्ल, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
- डॉ० चंद्रकांत मिसाल, अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस०एन०डी०टी० महिला विद्यापीठ, पुणे (महा०)
- डॉ० मुकेश गर्ग, रीडर हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- डॉ० जितेंद्र वत्स, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)
- डॉ० हरeram पाठक, अध्यक्ष हिंदी विभाग, डिगबोई महिला महाविद्यालय, डिगबोई (तिनसुकिया) असम
- डॉ० शंभुनाथ तिवारी, रीडर हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ०प्र०)
- डॉ० श्यामधर तिवारी, प्रोफ़ेसर हिं०वि०, संघटक महाविद्यालय पौड़ी, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर
- डॉ० दिनेशकुमार चौबे, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)
- डॉ० सभापति मिश्र, पूर्व प्राचार्य, हंडिया कालेज, हंडिया, इलाहाबाद (उ०प्र०)
- डॉ० शाहबुद्दीन शेख, प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा०, औरंगाबाद (महा०)
- डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण', (पूर्व प्राचार्य) 74/3 नया नेहरूनगर, रुड़की (उत्तराखंड)
- डॉ० महेशचंद्र, रीडर हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ०प्र०)
- डॉ० संतोषकुमार गौड़, रीडर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ०प्र०)
- डॉ० महेश दिवाकर, अध्यक्ष, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी साहित्य एवं कला मंच, मुरादाबाद (उ०प्र०)
- डॉ० घनश्याम अरोरा, पूर्व रीडर इतिहास विभाग, वर्धमान कालेज, बिजनौर (उ०प्र०)
- डॉ० सुधारानी सिंह, वरिष्ठ प्रवक्ता हिंदी विभाग, शहीद मंगल पांडेय राजकीय महिला स्ना० महा०, मेरठ

आजीवन सदस्य

उत्तर प्रदेश/ उत्तराखंड

डॉ० रामानंद शर्मा

अध्यक्ष हिंदी विभाग, हिंदू (पी०जी०) कालेज
9, जिगर कालोनी, मुरादाबाद (उ०प्र०)

डॉ० मधुलिका तिवारी

रीडर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग,
एल०आर० पी०जी० कॉलेज, साहिबाबाद
गाज़ियाबाद (उ०प्र०)

श्री हरिराम 'पथिक'

स्नेहगंगा, विष्णुधाम कालोनी,
गली नं० 3, न्यू माधोनगर, सहारनपुर (उ०प्र०)

डॉ० वंदना सेमल्टे

टी०एफ० 7, प्रेरणा अपार्टमेंट्स,
गांधीनगर, गाज़ियाबाद 201001

डॉ० मनमोहन शुक्ल

147, मायापुरी, आवास योजना
झुँसी, इलाहाबाद 211019

श्री अरुणकुमार भगत

माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
एवं संचार विश्वविद्यालय, नोएडा परिसर
'माध्यम' सी-56, ए/5, सेक्टर-62
नोएडा 201301 (उ०प्र०)

डॉ० विपिनकुमार गिरि

पुराना माधव नगर, भारद्वाज गली,
सहारनपुर (उ०प्र०)

प्राचार्या

आर०बी०डी० महिला महाविद्यालय
बिजनौर (उ०प्र०) 246701

डॉ० सुधारानी सिंह

सी-54, सेक्टर-3, सुशांत सिटी,
दिल्ली बाईपास, मेरठ (उ०प्र०)

डॉ० प्रेमव्रत तिवारी

सरस्वती सदन, बेटियाहाता,
गोरखपुर (उ०प्र०)

डॉ० पूनम भारद्वाज

17 प्रेम विहार,
मुजफ्फरनगर 251001
09997100697

श्रीमती अल्पना

द्वारा श्री अरुण कपूर, III एच 288 नेहरू नगर
पवन सिनेमा के पीछे, राकेश मार्ग
गाज़ियाबाद 201001

डॉ० वंदना श्रीवास्तव

के 83 सी आशियाना
लखनऊ 226012
09415917170

डॉ० अर्चना वालिया

286, जौनपुर दक्षिण, स्नेहकुंज कालोनी,
कोटद्वार (गढ़वाल) उत्तराखंड 246149

डॉ० सुचित्रा मलिक

37 गांधी आश्रम, विष्णु गार्डन
कनखल (हरिद्वार) उत्तराखंड

मध्य प्रदेश

डॉ० राजेंद्र मिश्र

14/4 स्नेहलता गंज,
इंदौर 452003 (म०प्र०)

डॉ० स्मृति शुक्ला

ए-16 पंचशील नगर, नर्मदा रोड,
जबलपुर (म०प्र०)

डॉ० सुरेंद्र यादव

301 नवदीप अपार्टमेंट, 7 शंकर नगर (साकेत),
इंदौर 452018

डॉ० ज्योतिसिंह

213 अनूपनगर
सी०एच०एल० अपोलो हास्पिटल के सामने
ए०बी० रोड,
इंदौर 452008 (म०प्र०)
09926300355

डॉ० चंदा तलेरा जैन
जी-17, रेडियो कालोनी
इंदौर (म०प्र०) 452001
09425944773

डॉ० वंदना अग्निहोत्री
194 सुखदेव नगर, एरोडम रोड
इंदौर (म०प्र०) 452001
09926477787

डॉ० पुष्पा शाक्य
110, सुंदर नगर मेन
सुकलिया, इंदौर (म०प्र०)
09827281203

डॉ० चंद्रकिरण अग्निहोत्री
108, रेडियो कालोनी
इंदौर (म०प्र०) 452001

प्राचार्य
शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई
कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय
किला भवन, इंदौर (म०प्र०)

पंजाब/ हरियाणा
श्री हेमांशु शर्मा
हिंदी विभाग, साईदास ए०एस०सी० सी०से० स्कूल
पटेल चौक, जालंधर शहर (पंजाब)

प्राचार्या
कमला नेहरू कालेज फॉर वुमैन
फगवाड़ा (कपूरथला) पंजाब

प्राचार्या
कन्या महाविद्यालय
विद्यालय मार्ग, जालंधर (पंजाब) 144004

डॉ० विद्या चौधरी
मिर्जापुर फार्म,
कुरुक्षेत्र (हरियाणा) 136119

डॉ० विजय इंदु
1608 हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी
सेक्टर 10 ए,
गुडगाँव (हरियाणा) 122001

डॉ० राजाराम अग्रवाल
ग्राम व पोस्ट शेखपुर दरौली
जिला फतेहाबाद (हरि०) 125053
मो० 09896789100

महाराष्ट्र

डॉ० अश्विनीकुमार 'विष्णु'
अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग
सीताबाई आर्ट्स कालेज, अकोला (महा०)
डॉ० शहाबुद्दीन नियाज़ मुहम्मद शेख
(प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा० औरंगाबाद)
अध्यक्ष, राष्ट्रीय हिंदी सेवी महासंघ
78/484 सिविल हडको, अहमदनगर 414003
09850119687

डॉ० लियाकत मियाँ भाई शेख
अखिलेश नगर, प्लाट क्र० 11
नए बस स्टेंड के पास,
गंगापुर, (औरंगाबाद) महा०
09423933402

प्रो० शेख मुहम्मद शाकिर शेख बशीर
अध्यक्ष हिंदी विभाग
पूना कालेज ऑफ आर्ट्स, कामर्स एंड साइंस
कैंप, पुणे 411201 (महा०)
09423017017

डॉ० मेहमूद रसूल पटेल
दारुल अमन, काशीनगर,
जालना रोड, बीड़ (महा०)

प्रा. डॉ० अभयकुमार रमेश खैरनार
मु. पो. जुनवणे,
तह. जि. धुले (महाराष्ट्र)

प्रा० अनंत नानाजी केदारे
5 पार्वती अपार्टमेंट, अयोध्या कॉलोनी
दाते नगर, गंगापुर रोड
नासिक 422005 (महा०)

डॉ० मंजूर चाँदभाई सय्यद
'गुलसिता' 223 औदुंबरनगर, अमृतधाम
पंचवटी, नासिक 422004 (महा०)
09822991516

डॉ० अशोक द्रौपद गायकवाड़
'कृतज्ञता', अवधूत पार्क, आरोह निसर्ग के पास
कादंबरी नगर क्रमांक 1 के पास
पाइप लाइन रोड, सावेडी
अहमदनगर (महा०) 414003
09822941330

प्रा० दत्तात्रय माधवराव टिलेकर
द्वारा संतोष मेडिकल, साई प्रेस्टिज, फ्लैट नं० 13
पाटील अली, ओतूर
तह० जुन्नर, जिला पुणे (महा०) 412409
09860229544

डॉ० मजीद मुनीर शेख
ग्राम व पो० साष्ट, पिंपल गाँव,
(वाया अंकुशनगर) तह० अंबड
षिला जालना (महा०) 431212
09765944586

डॉ० भरत त्र्यंबक शेणकर
द्वारा होटल जय महाराष्ट्र
ग्राम, पो० व तह० अकोले
षिला अहमदनगर (महा०) 422601
09423164521

डॉ० पोपट विठ्ठल कोटमे
फ्लैट नं० 5, सत्यसंगम
कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी
श्री जयनगर, इंदिरानगर, नासिक (महा०) 422006
09850760866

डॉ० शोभा साहेबराव राणे
17 स्वर समृद्धि अपार्टमेंट, नंदनवन लॉन के सामने
आशाराम बापू आश्रम मार्ग, सावरकर नगर,
गंगापुर रोड,
नासिक (महा०) 422013

डॉ० श्रीमती विजयालक्ष्मी नारायण रामटेके
सुशीला सोसायटी, प्लॉट क्र० 5
अजय जिम के पीछे, तेलरांधे के सामने
जरी पटका रिंगरोड, जरी पटका पोस्ट ऑफिस
नागपुर 440014 (महा०)

प्रा० (श्रीमती) ऐनूर अजीजभाई इनामदार
स्वामी समर्थनगर, राजूरी रोड
कोल्हार 413710
तहसील राहाता, जिला अहमदनगर (महा०)
09011449636

डॉ० एस०एन० देवरे
प्लॉट नं० 17, सिद्धिविनायक कॉलोनी
देवपुर, धुले (महा०) 424002

प्रो० डॉ० चंद्रकांत मिसाल
अध्यक्ष हिंदी विभाग,
एस०एन०डी०टी० महिला विश्वविद्यालय,
कर्वे रोड,
पुणे 411038 (महाराष्ट्र)

सुश्री शारदा बी. जावरे
ओमकार, समृद्धि डेपलपर, फ्लैट क्र० 402
प्लॉट नं० 26, सर्व क्र० 137/1 ए,
बराटे स्कूल के पास, वारजे, मालवाडी,
पुणे 411058 (महाराष्ट्र)

08805616654
सुश्री कामिनी अशोक न्यायाधीश
661 अरुणोदय कालोनी, सिडको एन-5
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
09975773345

प्रा. अशोक शामराव मराठे
116, सखाराम नगर,
पेरेजपुर रोड, साक्री, तह. साक्री,
जिला धुले 424304 (महाराष्ट्र)

प्रा. पंजाबी ममता नानकचंद
19/20, त्रिमूर्ति नगर,
मोरे अस्पताल के पास,
साक्री, तहसील साक्री,
जिला धुले 424304

प्रा० उषा पुंडलिक शिरोळे
द्वारा श्री शशिकांत हरी बागडे
गुरुकृपा हास्पिटल, डाक पारीपत्यदार
सावतानगर मालेगाँव, तह-मालेगाँव
जिला नासिक (महा०)

प्रा. करुणा दत्तात्रय अहिरे

व्ही.यू.पाटील कला एवं विज्ञान महाविद्यालय,
साक्री, तह० साक्री,
जिला धुले 424304

प्रा. डॉ० प्रमोद गोकुळ पाटील

मु.पो. मोराणे (प्र.ल.)
तह. जिला धुले 424001 (महाराष्ट्र)

प्रा. डॉ० संजय विक्रम ढोढरे

7, मोतीराम नगर, वाडीभोकर रोड,
देवपूर, धुले 424002 (महाराष्ट्र)

प्रा. डॉ० अशफाक सिकलगर

जीएफ-102 ताज अपार्टमेंट,
चालीसगाँव रोड, धुले (महाराष्ट्र)

प्रा. डॉ० महेंद्रसिंह रघुवंशी

सरस्वती नगर, प्लॉट नं. 10,
वाघेश्वरी मंदिर के पास,
नंदुरबार 425412

डॉ० रेखा वसंत पाटील

सीतामाई नगर, चालिसगाँव
जिला-जलगाँव (महा०) 424101

प्रा. डॉ० योगेश गोकुळ पाटील

प्लॉट नं. 12, नयना सोसायटी,
नकाणे रोड, देवपूर, धुले 424002

प्रा. डॉ० मंजू तरडेजा (सिंघाणी)

ब्लॉक नं. आर-10, रूम नं. 10,
कुमार नगर, साक्री रोड, धुले 424001

प्रा. डॉ० चंद्रमादेवी पाटील

59, धनदाई नगर, गोंदुर रोड, वलवाडी,
देवपूर, धुले 424005 (महाराष्ट्र)

डॉ० संजयकुमार नंदलाल शर्मा

38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी,
तलोदा, जि० नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413

श्रीमती वर्षा सुभाषचंद्र देशमुख

बी-6, चंद्रवेल अपार्टमेंट, गोविंदनगर होटेल
प्रकाश्या भागे, मुंबई नाका,
नासिक (महाराष्ट्र) 422010

डॉ० देवकीनंदन महाजन

1 टेलीफोन कालोनी,
धुले रोड, अमलनेर (जलगाँव) महाराष्ट्र

डॉ० कल्पना राजेंद्र पाटील

38, जमनानंद, गुरुकुल कालोनी, तलोदा
जि० नंदुरबार (महाराष्ट्र) 425413

प्रा० डॉ० रामचंद्र माली

अध्यक्ष हिंदी विभाग, क०वा०वि० महाविद्यालय,
नवापुर, षिला नंदुरबार (महाराष्ट्र)

डॉ० सुषमा कोंडे

81/ए, प्लाट नं० 9/ए,
गिरिदर्शन हाउसिंग सोसायटी, बानेर रोड
पुणे 411007 (महाराष्ट्र)
09822848464

प्राचार्य

विद्यावर्धिनी महाविद्यालय,
धुले (महा०) 424001

डॉ० हेमलता कांचनकर

43 नंदनवन कालोनी (कैट),
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
09730202528

सुश्री नेहा संदीप घोरपडे

द्वारा सुश्री सुनीता पवार
फ्लेट नं० 404, प्रकाश मेमाराइज
एस नं० 73, दूध डेयरी, पुणे-411046

सुश्री निर्मला पुरुषोत्तम तोमर

फ्लेट नं० 12, एस नं० 137/2
वारजे मलवाडी, पुणे 411058
08087612123

सुश्री भारती मधुकर पाटील

मु०पो० सावलदे, तहसील शिरपूर
जिला धुले (महा०)

प्रा० शिंदे नवनाथ सर्जेराव

अध्यक्ष, हिंदी विभाग
सांगोला महाविद्यालय, सांगोला
कडलास रोड, सांगोला (सोलानुर) 413307
09763602304

सुश्री मीनल वार्वे

बी-8, ड्रीम घरकुल,
एम.एस.ई.बी. कॉलोनी के पास,
शिवाजी नगर, जेल रोड,
नासिक रोड (महाराष्ट्र)

प्रा० ईश्वर पदमसिंग ठाकुर

जनशक्ति कालोनी
रिंग रोड, फैजपुर
तहसील यावल (जलगाँव)

प्रो० दीपक विश्वासराव पाटील

मुकाम पोस्ट सुन्दने
निकट कलाविश्व कंप्यूटर सेंटर
तहसील जिला धुले
घुलेवाडी, संगमनेर (महा०) 424002
099923811609

डॉ० अनिता मधुकर अंतरे

मयूर सोलर ऐजेंसी
स्वामी समर्थ मंदिर के पास
पो० लोनी बी के, तालुका रहाता,
जिला अहमदनगर (महाराष्ट्र) 413736
09970343766

डॉ० विठ्ठलसिंह नंदरामसिंह ढाकरे

'सी' टाइप कालेज
शास्त्रीनगर, लासलगाँव
जिला नासिक (महाराष्ट्र) 422306
08888590156

प्रो० अमानुल्लाह मो० शेख

श्रद्धा रेजिडेंसी, बिल्डिंग ए, बिंग ए-201
आई०टी०आई० कालेज के पास
पो० मुकिन्दपुर, तह० नेवासा
जिला अहमदनगर (महा०)

डॉ० उर्मिला मानसिंह गायकवाड

प्लॉट नं० 290-292, सेक्टर-29
गुरु स्मृति अपार्टमेंट, ए-विंग, फ्लैट नं० 303 रावेत
निकट डी-मार्ट, पुणे 412101
मो० 07620225839

डॉ० एफ०एम० शाह

द्वारा श्री टी०एम० धुवारे
छोटा दत्त मंदिर के पास, टी०बी० टोली
गोंदिया (महा०) 441614
मो० 07620042772

डॉ० शैला पांडुरंग चव्हाण

फ्लेट नं० 1, सुविधिनाथ हाउसिंग सोसायटी
मुख्य फायर ब्रिगेड आफिस के सामने
हीरा-मोती शोरूम के पीछे, सिंघाड़ा तालाब
नासिक (महा०) 422001
मो० 09850827138

श्री शेख शिराज हसन

पोस्ट बोरी, तालुका खंडाला (सतारा)
415521 (महा०)
मो० 09011444059

प्राचार्य

कला, वाणिज्य व कंप्यूटर एप्लीकेशन महिला महा०
डोंगर कठोरे, यावल
जिला जलगाँव (महा०)

गुजरात**श्री गुलाबराव शांताराम बाविस्कर**

201, के-टॉवर, श्रीनंदनगर
सोखड़ा रोड, छाणी
बड़ोदरा (गुजरात) 391740
09624501415

तमिलनाडु**Dr. V. Jayalakshmi**

Mathura, Plot No. 38
5th Cross Street, Gokul Nagar
Preumbakkam
Chennai-600100

कर्नाटक**डॉ० जुबैदा हाशिम मुल्ला**

बैतुल हाशामी, म०नं० 152, ताजनगर
हुबली 580031 (कर्नाटक)

जनसुलभ साहित्य माला

हिंदी साहित्य निकेतन ने जनसुलभ साहित्य माला के अंतर्गत निम्नलिखित पुस्तकों को प्रकाशित किया है। इनमें से प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल पचास रुपए है। 12 पुस्तकों का पूरा सैट मात्र 500 रुपए में।

कहानी

कमरा नंबर 103 / सुधा ओम ढींगरा

इमराना हाज़िर हो / महेशचंद्र द्विवेदी

कुत्तेवाले पापा / डॉ० मीना अग्रवाल

प्रेमचंद : कालजयी कहानियाँ / सं० डॉ० कमलकिशोर गोयनका
लघुकथाएँ मानव-जीवन की /

सं० सुकेश साहनी, रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'
कहानियाँ अमेरिका से / सं० इला प्रसाद

व्यंग्य

दूध का धुला लोकतंत्र / गोपाल चतुर्वेदी

आदमी और कुत्ते की नाक / डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

सच का सामना / डॉ० हरीशकुमार सिंह

व्यंग्य-एकांकी

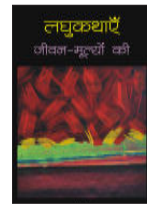
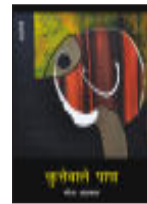
अफलातून की अकादमी / डॉ० शिव शर्मा

सिनेमा

सिनेमा, साहित्य और संस्कृति / नवलकिशोर शर्मा

कविता

मान भी जा छुटकी / गीतिका गोयल



पगडंडी से पुस्तकालय तक

कुछ ही समय पहले मैंने उन दोनों को देखा था।

उनमें से एक था, जो एक जटाधारी साधु बाबा के सामने नतमस्तक था और दूसरा एक शाहजी के सम्मुख हाथ जोड़े खड़ा था। मैंने दोनों पर एक उचटती-सी नज़र डाली, कुछ सोचा और आगे बढ़ गया।

यह जून का महीना था, जब दिन लंबे और रातें छोटी हो जाती हैं। जब सूर्य का प्रकाश चौबीस घंटों में निरंतर चौदह घंटे धरती को उजाले के जल से स्नान कराता है और अंधेरे की अवधि कम हो जाती है। मैंने नज़र उठाकर दूर तक देखा। आदमी हो, जानवर हो, घर-द्वार हो, घने पेड़-पौधे हों, सभी की परछाइयाँ सिमटकर उनके आकार तले छिपने का प्रयास कर रही थीं। आकाश के बीचों-बीच चमकते हुए सूरज ने अंधकार को परिमित कर दिया था। कैसा अद्भुत दृश्य था वह! चारों ओर बिखरे हुए उजाले से सहमकर अंधकार का भूत अपने लिए शरणस्थली ढूँढने पर विवश हो गया था।

वे दोनों शायद अब भी उसी अवस्था में होंगे, एक साधु बाबा के सामने नतमस्तक और दूसरा शाहजी के सामने हाथ जोड़े हुए। ध्यान आया शहर के अंधकार को तो रोशनी की तेज़ किरणें भेदकर पराजित कर देती हैं, परंतु यह आदमी के भीतर हो, उसकी सोच और मस्तिष्क से जुड़ा हो, तो फिर ज्ञान की रोशनी ही उसे अंधेरे की दासता से मुक्त कर सकती है, कोई और व्यक्ति नहीं। लेकिन अंधकार को अंधविश्वास से दूर करने वाले लोग... मैंने क्षण-भर उनके विषय में सोचा और आगे बढ़ आया।

पीछे मुड़कर देखता हूँ तो दूर तक मेरे पीछे सर्प की तरह बल खाई हुई पगडंडी बिछी थी। पगडंडियों पर यात्रियों के पद-चिह्न थे। मार्ग के दोनों ओर हरियाली थी और जून की इस भरी दोपहर में पंछियों ने चहचहाना छोड़कर वृक्षों की टहनियों पर अपना बसेरा कर लिया था।

मैं उन दोनों व्यक्तियों को जिस स्थान पर छोड़ आया था, अब उससे काफ़ी दूर हूँ।

लेकिन मुझे लगता है कि वे अब भी मेरे साथ-साथ हैं, एक समस्या बने हुए, एक प्रश्न का रूप धारण किए हुए। मैं कल्पना करता हूँ, उस निरीह मानव की, जो ज्ञान और श्रम के बल पर संकट का समाधान न पाते हुए उन कथित चमत्कारों की भेंट चढ़ जाता है, जिन पर वह विश्वास तो करता है, लेकिन जिनके संबंध में वह जानता कुछ भी नहीं है।

अनहोनी चीजों पर विश्वास करना शायद उसकी विवशता है। भविष्य के गर्भ में क्या है? वह नहीं जानता। उसके दुःख कैसे दूर होंगे, वह इस बात से परिचित नहीं है। विपत्तियों और संकटों की जिस दलदल में वह धँसा खड़ा है, उससे उबरने की विधि क्या होगी, उसे ज्ञात नहीं है। तब वह क्या करे? कहाँ जाए? किससे अपने दुःख का निवारण कराए? विवेक, श्रम, बुद्धि, कर्म और प्रयास की सारी बैसाखियाँ उसका साथ छोड़ गई हैं।

तब—? तब वह क्या करे?

दोनों व्यक्ति फिर मेरी कल्पना के पट पर उभर आए हैं। मैं उनसे पूछना चाहता हूँ, वे अपने ही जैसे एक अन्य व्यक्ति के सम्मुख यों नतमस्तक क्यों हैं? क्या कुछ मंत्रों का उच्चारण करनेवाले सचमुच भविष्य के ज्ञाता हैं, क्या सचमुच वे उन घटनाओं को जानते हैं, जो भविष्य में घटनेवाली हैं और क्या वास्तव में इतनी शक्ति उनमें है कि वे उन अभावों की, उन संकटों की बेड़ियाँ तोड़कर फेंक दें, जिन्होंने भाग्य की परिभाषा में स्थापित होकर निरीह मानव को अपनी जकड़ में ले लिया है?

जून की इस भरी दोपहर में मैं अपनी इस यात्रा में अकेला हूँ, लेकिन मुझे लगता है कि वे दोनों भी मेरे साथ-साथ हैं। दाएँ और बाएँ, जो अपने विवेक और बुद्धि को उसी स्थान पर छोड़ आए हैं, जहाँ 'बाबाओं' के डरे थे।

मैं कुछ और आगे बढ़ आया हूँ। नज़र उठाकर दोनों की ओर देखता हूँ। मुझे लगता है, जैसे एक इतिहास इनकी मुखाकृति पर लिखा है। मुझे यह भी लगता है कि जैसे मैं इस इतिहास का एक छोटा-सा पाठक हूँ, और विश्व के उस पहले मानव से वार्ता कर रहा हूँ, जिसने फौलाद की तरह मजबूत अपनी भुजाओं से पहली बार धरती की छाती चीरी थी तथा दिन-रात ढेरों पसीना बहाकर उस पर खाद्यान्न की फ़सल उगाई थी—वह खुश था कि उसने अपना भविष्य सुरक्षित कर लिया है।

लेकिन—?

लेकिन फ़सल अभी खेत से उसके घर तक नहीं आ पाई थी कि अचानक पूरब की ओर से घनघोर बादल उठा, जिसने चारों ओर से आकाश के असीम फैलाव को ढाँप लिया। भयभीत मानव ने सहमकर आकाश की ओर देखा। उसे क्रोध आया प्रकृति की इस तानाशाही पर।

यह बरसात का मौसम नहीं था। फिर वर्षा क्यों? बादल क्यों? लेकिन इस 'क्यों' का उत्तर देने वाला दूर तक कोई नहीं था। वह सोचता रहा, सोचता रहा—और फिर देखते-ही-देखते बिजलियाँ आसमान के बीच कड़कने लगीं, बादलों ने सूरज को अपने भारी परदों के पीछे छिपा लिया। भरी दोपहर में रात्रि की कालिमा छा गई। गरज के साथ ओले गिरे, इतने की धरती दूर तक बर्फ के ढेर में परिवर्तित हो गई। कड़े परिश्रम से फ़सल उगाने वाला मानव ढूँढता रह गया कि उसका खेत कहाँ था, खलिहान कहाँ था।

तब वह झुक गया उन शक्तियों के सामने, जो उसके ज्ञान और उसकी पहुँच के बाहर थीं। उसे लगा कि जैसे धरती के सीने को अपनी ताक़त से खंगाल देनेवाले हाथ विवश हैं उन दैवी-प्रकोपों को रोक पाने में, जो न जाने कहाँ और किन परतों में निहित हैं।

वह ढूँढने निकला था अपने बचाव का एक रास्ता, अपनी सुरक्षा का एक उपाय। भविष्य और भाग्य के उन खतरों से अपने-आपको मुक्त करने का मार्ग, जिनसे वह परिचित नहीं था और जिन तक उसके ज्ञान ने अभी अपनी कमान (रस्सी की सीढ़ी) नहीं फेंकी थी।

ज्ञान और खोज की यात्रा में शायद यही वह पड़ाव था, जब उसकी भेंट हुई थी, उन 'जटाधरी बाबाओं' से जहाँ अभी-अभी मैं उन दो व्यक्तियों को छोड़ आया हूँ, नतमस्तक और भयभीत!

मैं उस बेमौसम ओलावृष्टि की कल्पना करता हूँ, जिसने ज्ञान के विश्वास को अज्ञानता की भेंट चढ़ाया था। तभी मेरी दृष्टि उस किसान की ओर उठ जाती है, जो खेत में सिर झुकाए बैठा है, बिल्कुल निराश और घबराया हुआ। उसका सिंचाई करनेवाला इंजन किसी यांत्रिक खराबी के कारण ठप्प हो गया है। पानी के अभाव में खेत मुरझा गया है। ज़बरदस्त सूखा पड़ा है।

ओलावृष्टि से प्रभावित हुए उस पहले किसान और भयंकर सूखे से पीड़ित इस दूसरे किसान के बीच हजारों-लाखों साल की दूरी है—लेकिन भाग्य की डोर दोनों के हाथ में है, पर भाग्य के फ़ैसले को चुनौती देने का उनके पास कोई उपाय नहीं है।

बस बाबा हैं, और शाहजी हैं।

मैं पिछले दो वर्ष से पढ़ रहे भयंकर सूखे के प्रकोप से जूझते हुए दुर्बल किसानों की कल्पना करता हूँ और विचार आता है, उस सत्तातंत्र का, जिसने दैवी-प्रकोपों से लड़ने का वैज्ञानिक आधार पैदा नहीं किया है और जो झुक गई है, उनके सामने—

जो तांत्रिक विद्या में दक्ष हैं,

जो आंतरिक शक्ति से भविष्य का रूप मोड़ सकते हैं,
जो शब्दों के बल पर ऐसे चमत्कार दिखा सकते हैं, जो विज्ञान के वश में नहीं हैं।
यह मथुरा है, यहाँ बहुत बड़े वर्षा-यज्ञ की तैयारी हो रही है, सत्तांत्र की देखरेख में।

सारा देश 20 वीं शताब्दी के इस भयंकरतम सूखे की त्रासदी से चिंतित है। खेत बंजर-मैदानों में परिवर्तित हो गए हैं। जमीन के भीतर पानी का स्तर इतना गिर गया है कि नलकूप अपने कंठों से पानी उगलने में असफल हो रहे हैं। आकाश पर दूर-दूर तक बादल का कोई टुकड़ा नहीं है। धरती सूखे की मार सह-सहकर जगह-जगह से चटख गई है। किसान हाथ-पर-हाथ धरे बैठा है और निराशापूर्ण दृष्टि से आकाश की इओर निहार रहा है। समाचार-पत्र ख़बरें प्रकाशित कर रहे हैं कि गुजरात, राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा अन्य कई स्थानों पर हज़ारों पशु चारे के अभाव में या तो मर गए या उनके स्वामियों ने विवश होकर उन्हें भूखा मरने के लिए अपने खूँटे से खोल दिया। उस समय मेरा मन पीड़ा से भर गया, जब किसी समाचार-पत्र में मैंने पढ़ा कि एक किसान महिला ने अपने अबोध बालक को गिनती के चंद टकों में इसलिए बेच दिया कि पेट की आग बुझाने के लिए उसके पास रोटी नहीं थी और रोटी जुटाने के साधन अकाल का दानव निगल चुका था।

सोचता हूँ, सभ्यता की इतनी लंबी यात्रा के बाद भी मनुष्य का जीवन प्रकृति की दया पर निर्भर है। आदमी जो आकाश से पाताल तक अपनी विजय-पताका फहराता हुआ ज्ञान और विज्ञान के शिखर तक पहुँच रहा है, इतना भी नहीं जानता कि यदि मानसूनी हवाएँ उससे रूठ जाएँ या अपना मार्ग बदल लें तो प्रकृति की इस बड़ी चुनौती का सामना वह कैसे कर सकता है।

विवशता आदमी को किन रास्तों की तरफ़ धकेल देती है, यह सत्ता के सिंहासन पर बैठे उन लोगों से पूछा जाना चाहिए, जो विज्ञान से अधिक भरोसा करते हैं उस अंधविश्वास पर, जिसकी नागफनी जीवन के मरुस्थल में आदमी की अज्ञानता ने बोयी थी, और जिसकी पकड़ में एक साधारण आदमी ही नहीं, शक्ति-संपन्न शासनतंत्र भी है।

हाँ तो बात मथुरा की थी।

आइए मथुरा चलें—

तंत्रविद्या में दक्ष कुछ विख्यात 'बाबाओं' ने दावा किया है कि वे तांत्रिक शक्ति से उस समय भी वर्षा कराने में सफल हो सकते हैं, जब बरसात का मौसम दूर हो, और देश के अधिकतर भागों में भीषण सूखा पड़ रहा हो। सरकार के अधीन कार्यरत

विज्ञान एवं तकनीकी विभाग इस दावे पर विश्वास ले आया है।

यह मई का अत्यंत गर्म और तपता हुआ महीना है। वर्षाऋतु आरंभ होने में अभी 25 दिन शेष हैं। दावा किया गया है कि एक विशाल यज्ञ के परिणामस्वरूप 48 से 72 घंटों के भीतर मथुरा के आस-पास कम-से-कम 10 किलोमीटर के क्षेत्र में मूसलाधार वर्षा होगी और धरती पानी से भर जाएगी।

इस कार्यक्रम के लिए विज्ञान एवं तकनीकी विभाग ने 10 हजार रुपए का अनुदान स्वीकृत किया। शेष धन जनता से दान के रूप में एकत्र किया गया। तंत्रविद्या पर विश्वास करने वाले देश के करोड़ों लोगों की आँखें मथुरा पर लगी हैं। यज्ञ की सारी तैयारियाँ पूर्ण हो चुकी हैं। बीसों कुंटल लकड़ी, चंदन, शुद्ध घी और हजारों रुपए की अन्य सामग्री का भंडार यज्ञस्थल पर इकट्ठा हो गया है।

वेद-मंत्रों के बीच तांत्रिक यज्ञ का शुभारंभ कर चुके हैं। सुगंधित धुआँ आकाश की ओर लपक रहा है। वैज्ञानिक वायुमंडल में संभावित परिवर्तन का अध्ययन करने के लिए अनुसंधान-कक्षों में उपस्थित हैं। उनके हाथ में दूरबीन हैं और वे यंत्र हैं, जिनसे वायुमंडल में होने वाले छोटे-से-छोटे परिवर्तन को भी जाँचा-परखा जा सकता है। हजारों-लाखों लोगों की भीड़ यज्ञ-स्थल के चारों ओर उमड़ पड़ी है। यही वे सब लोग हैं, जिन्हें सूखे के दानव ने तोड़कर रख दिया था। इनकी आँखों में आशा की ज्योति है और तांत्रिकों की आंतरिक शक्ति पर एक ऐसा अटूट विश्वास, जिसका आधारस्तंभ अज्ञानता की धरती पर टिका होता है।

धुएँ के बादल यज्ञ-कुंड से उठ-उठकर आकाश की ओर लपक रहे हैं। लेकिन अभी तो यह मात्र धुएँ का आवरण है, इनमें मानसूनी हवाओं का जल कब प्रविष्ट होगा? इसकी चिंता सबको है, मुझे भी, वैज्ञानिकों को भी।

पहले चौबीस घंटे बीते, फिर अड़तालीस और अंत में 72 भी, लेकिन यज्ञ का धुआँ बादल नहीं बन सका। धरती प्यासी की प्यासी रही। 20 हजार की सामग्री और हजारों-लाखों लोगों की आशाएँ यज्ञ की आग में जलकर भस्म हो गयीं, लेकिन जो चीज़ नहीं जल सकी, वह केवल आस्था और विश्वास का वह लोहा था, जो न मुड़ता है, न गलता है और जो शताब्दियों से निराश और असहाय लोगों का कवच बना हुआ है।

विश्वास की जोत लिए जो लोग मथुरा आए थे, वे सब तंत्रविद्या को नहीं, कलयुग के स्वयंभू एवं पाखंडी तांत्रिकों को दोष देकर वापस घर लौट चुके हैं। आइए, हम भी घर चलते हैं।

अब फिर उसी पगडंडी पर अकेला हूँ, जहाँ से कुछ दूर पहले एक स्थान पर मैंने उन दो व्यक्तियों को देखा था, जिनमें एक एक जटाधारी साधु बाबा के सामने

नतमस्तक था और दूसरा 'शाहजी' के सम्मुख। मुझे लगता है, वे या उनकी परछाइयाँ अब भी मेरे साथ हैं। जी चाहता है, उनसे पूछूँ कि तुम किस दुःख के निवारण-हेतु आए हो? वह कौनसी पीड़ा है, जो तुम्हें इस स्थान पर खींच लाई है, जहाँ तर्क नहीं, विश्वास की सत्ता है और विश्वास का सूत्र उन व्यक्तियों के हाथ में है, जिनका ध्येय जनसेवा नहीं, स्वार्थ है, व्यवसाय है। ये वे लोग हैं, जो पिता और परमेश्वर दोनों को एक-साथ बेच देने पर भी लज्जित नहीं होते।

सोचता हूँ, लौट जाऊँ और उन दोनों उत्पीड़ित व्यक्तियों को अपने साथ खींच लाऊँ, जो आशा और विश्वास की रोशनी लेकर आए थे, लेकिन भटक जानेवाले हैं, अंधविश्वास की लंबी अंधेरी गलियों में। मुड़कर पीछे देखता हूँ, लेकिन पाँव आगे बढ़ जाते हैं। पगडंडी-पगडंडी चलता हुआ दूर निकल आया हूँ और अब एक ऐसे स्थान हूँ, जहाँ रायपुर (बिहार) के एक गाँव की आबादी अपने पाँच सपूतों के शवों पर आँसू बहा रही है।

मैं खड़ा हूँ एक तंत्र-शिक्षा विद्यालय के सम्मुख। विद्यालय का संचालक और इन पाँच मृत युवकों का गुरु फरार है, और पुलिस उसकी खोज में लगी है। दुःख और आश्चर्य से विद्यालय की ओर देखता हूँ, सन्नाटा-ही-सन्नाटा है, शमशान-जैसा। कारण जानना चाहता हूँ, तो अख़बार के पन्ने अचानक मेरे स्मृति-पटल पर फैल जाते हैं।

वह जो एक प्राइमरी विद्यालय में अध्यापक था, एक शिक्षा-संस्थान खोलता है तंत्रविद्या सिखाने के लिए, गाँव के सीधे-सादे युवक उसकी ओर खिंचने लगे हैं।

यह भारत है! जहाँ दीन-धर्म के नाम पर कुछ भी किया जा सकता है। न किसी से अनुमति लेने की आवश्यकता, न किसी क़ानून का भय, न प्रमाण-पत्र की ज़रूरत, न किसी योग्यता की। लोग धर्म के नाम पर विद्यालय खोल सकते हैं, प्रशिक्षण-केंद्र स्थापित कर सकते हैं, सीधी-सादी जनता को मूर्ख बना सकते हैं और तो और रूपकुँवर जैसी मासूम युवतियों को सती की दुहाई देकर आग की भेंट चढ़ा सकते हैं। कुछ भी किया जा सकता है। क़ानून की आँख तो उस वक़्त खुलती है, जब घटनाएँ घट चुकी होती हैं और लोग भिन्न-भिन्न प्रकार के अंधविश्वास का शिकार हो चुके होते हैं।

अगर मैं भूलता नहीं हूँ तो शायद उसका नाम अजीत साहू था, अपनी तांत्रिक शक्ति से निर्जीव को जीवित कर देने का दावा करने वाला साहू! गुरु को देवता की तरह पूजने वाले शिष्य आँख मूँदकर विश्वास ले आए उसकी आंतरिक शक्ति पर,

और फिर एक दिन एक युवक ने विषपान किया,

अगले दिन दूसरे ने-फिर तीसरे ने...

चौथे ने रेलवे लाइन पर कटकर जान दी...

पाँचवे ने फाँसी लगाकर अपनी जीवनलीला समाप्त कर ली।

मृत्यु की पहली तीन घटनाओं को प्रशासन आत्महत्या के साधारण मामले समझता रहा, लेकिन जब यह क्रम पाँच तक पहुँचा, तो प्रशासन के कान खड़े हुए। पुलिस हरकत में आई। जाँच-पड़ताल हुई। तब पाँच के पाँच शव बरामद हुए, अन्य सामग्री ज्यों-की-त्यों रखी थी और गुरु फरार था। वह अपनी तंत्रविद्या से किसी को भी जीवित नहीं कर सका था।

मेरे भीतर की चीख बार-बार मुझसे पूछती है कि उन अभागे परिवारों के घरों का अंधकार अब कौन दूर करेगा, जिनके दीपक अजीत साहू ने बुझा दिए? उन रोती-बिलखती माताओं के हृदय कैसे शांत होंगे, जिनकी ममता के अधखिले फूल अंधविश्वास की भेंट चढ़ गए? उन बहनों की आँखों से कौन आँसू पोंछेगा, जिनके सम्मान की रक्षा करनेवाले हाथ मौत के दानव ने चबा डाले? हो सकता है क़ानून आत्महत्या के लिए प्रेरित करने वाले साहू को मृत्युदंड दे...

लेकिन यहाँ एक साहू नहीं, हजारों-लाखों साहू हैं और हम विश्वास कर रहे हैं उन पाखंडियों पर, उन निराधार विश्वासों पर, जिनका संबंध सत्य से नहीं, भ्रम और धोखे से है।

मैं रायपुर के निकट स्थित उस गाँव से भी लौट आया हूँ, जहाँ आज भी अपने पाँच लाड़लों की अकाल मृत्यु पर चीत्कार और कोहराम मचा है। जहाँ आज भी माताओं की आँखों में आँसू हैं और पिता निराशा का बोझ लिए सिर झुकाए बैठे हैं। उनकी कमर टूट गई है और भुजाओं को अधरंग मार गया है।

मैं घबराकर इस गाँव से भागता हूँ, भागता ही जाता हूँ, लेकिन नियति मुझे एक ऐसे स्थान पर ले आई है जो वीरान है, जहाँ कब्रों के नाम पर मिट्टी के कुछ ढेर बिखरे पड़े हैं। आँख खोलकर देखता हूँ तो मैं स्वयं को भी एक कब्र के किनारे खड़ा पाता हूँ। भूली-बिसरी यादें मस्तिष्क पर हमला करती हैं, अख़बार का एक और पन्ना मेरे सम्मुख लहराता है और मुझे याद आती है वह महिला, जो एक 'शाहजी' के बताए टोटके की भेंट चढ़ गई।

वह निःसंतान थी, पर स्तनों में ममता का ज्वार ठाठें मार रहा था। कोई उपाय नहीं था उसके पास। ज्ञान की रोशनी पहुँची नहीं थी उस तक। जो कुछ पहुँचा था उस तक, वह एक आस्था थी, एक विश्वास था उन लोगों के प्रति, जिन्होंने उस समाज में अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी, जिस समाज की आर्थिक सत्ता और व्यवस्था ने पुरुषों और महिलाओं तक सच और ज्ञान के प्रकाश को पहुँचने नहीं दिया था।

आखिर मातृत्व की आग उसे खींच ले गई शाहजी के चरणों में, जहाँ से वह एक उम्मीद, एक आशा लेकर आई। उसे विश्वास था कि चालीस दिन का व्रत और दुआओं के बोल और 'शाहजी' के आशीर्वाद निःसंदेह उसकी मनोकामना पूरी कर सकते हैं, उसकी गोद हरी हो सकती है।

दसवें दिन ही उसका वजन इतना घट गया कि वह पलंग से लग गई। रक्त की कमी और दुर्बलता बढ़ती गई, बढ़ती गई और इससे पूर्व कि वह अपने व्रत के अंतिम दिन तक पहुँचती, सुनसान जंगल में स्थित कब्रिस्तान के एक गड्ढे में सुला दी गई।

मैंने दुःख की मुद्रा में कब्र की मिट्टी उठाई। उसे सूँघा। मुझे लगा, जैसे इसमें झूठी आस्था और अज्ञानता की दुर्गंध आ रही हो। मैंने घबराकर वह मिट्टी फेंक दी और फिर उस पगडंडी पर चला आया, जहाँ से कुछ दूर पहले मैंने उन दो व्यक्तियों को छोड़ा था, जिनमें से एक नतमस्तक था किसी जटाधारी साधु बाबा के सामने और दूसरा हाथ जोड़े खड़ा था शाहजी के चरणों में।

सोचता हूँ, इनका अंत क्या होगा? क्या इनके दुःख दूर होंगे, अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर सकेंगे ये? मुझे कोई उत्तर नहीं मिलता। हाँ, विशाल जीवन का एक मंच मेरे सामने है, जहाँ दिन-रात यह नाटक हो रहा है। पात्र नाच रहे हैं, उन्हें नचाया जा रहा है, भ्रमों और अंधविश्वासों के इशारे पर...

मेरा दुःख बढ़ जाता है। मेरी घबराहट बढ़ जाती है... मैं भाग उठता हूँ उस पगडंडी से और शरण लेता हूँ उस पुस्तकालय में, जहाँ से मुझे ज्ञान और सत्य की रोशनी मिली थी, जिसने अंधकार से लड़ने के लिए प्रेरित किया था मुझे...

मेरे चारों ओर लेखक हैं, कवि हैं, नाटककार हैं...विचारक हैं, दार्शनिक हैं...मैं उनकी ओर बढ़ता हूँ और सज जाता है फिर एक और मंच...

इस मंच पर भ्रमों और अंधविश्वासों के मारे पात्र तो हैं जो अपनी-अपनी भूमिकाएँ रोचक ढंग से निभा रहे हैं, लेकिन मंच पर वह रोशनी तेज़ है, वह प्रकाश बहुत तीव्र है, जो अज्ञानता को ज्ञान को ज्ञान में बदलेगा, धोखे को समय की शक्ति से पराजित करेगा। मुझे विश्वास है।



डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

अनुक्रम

कवयित्री चंपाबाई : जीवन और साहित्य / प्रो० आदित्य प्रचंडिया	19
सामाजिक आदर्श और भारतीय शिक्षा / डॉ० अशोक उपाध्याय	24
बेवजाल पर साहित्यिक पत्रिकाओं की स्थिति : एक विवरण / कृष्णवीर सिंह सिकरवार	31
सात सुरों के पश्चात् भविष्य का आठवाँ राग / डॉ० स्मृति शुक्ल	42
रीतिकान्त की मनोवैज्ञानिकता : कुछ नोट्स / डॉ० दीपक त्रिपाठी	48
आधुनिक युग में कबीरवाणी की सार्थकता / नीलम	72
हिंदी में वैज्ञानिक शब्दावली / डॉ० वंदना श्रीवास्तव	77
श्रीराम परिहार का ललित निबंध विधा में योगदान / सुभाष	81
हरियाणवी लोकगीतों में कार्तिक मास का महत्त्व / डॉ० कृष्णा हुड्डा	84
अज्ञेय के काव्य में अस्तित्ववाद / डॉ० जसबीरसिंह	90
विश्वस्तर पर हिंदी का प्रयोजन / डॉ० जसबीरसिंह	96
'देख तेरी गली बाबुल' में सामाजिक सरोकार / नीलम	100
मनमोहन सहगल कृत उपन्यास 'बदलती करवटें' में विभाजन की पीड़ा / सुमनबाला	105
मनमोहन सहगल कृत उपन्यास 'जिंदगी और जिंदगी' में संक्रमित सांस्कृतिक मूल्य / सुमनबाला	109
स्वातंत्र्योत्तर हिंदी-कहानी में गांधी चिंतन के स्वर / स्मृति उपाध्याय	114
जयशंकर प्रसार की नाटकीय दृष्टि / डॉ० राजाराम	118
वेदांत सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिवेश / डॉ० सुधा सिंह	120
हिंदी साहित्य में स्वामी श्री रामभद्राचार्यजी का योगदान / डॉ० सद्भावना शुक्ला	125
पंडित लखमीचंद के सांगों में शृंगार-रस / डॉ० एस०के० आत्रेय	132
जैनेंद्र के संदर्भ में चिंतन और सृजन की समीक्षा / मंजूबाला	136
जैनेंद्र के कथासाहित्य का शैल्पिक सौष्ठव / मंजूबाला	140
डॉ० महीपसिंह के कथासाहित्य में चित्रित राजनीतिक पक्ष का अनुशीलन / रविंद्रकुमार	144
इतिहास और तरीखों का परस्पर संबंध / डॉ० नरेशचंद्र शर्मा	151
'अंचल' के काव्य में प्रगतिशील स्वर / डॉ० पूजा मुरारिया वधवा	156
प्राचीन भारतीय राजा के 'अधिकार और दायित्व' / डॉ० पूनम शर्मा	161

कृष्णा सोबती के औपन्यासिक चरित्रों में नारी-विमर्श / इंद्रजीत वर्मा	168
नारी-चेतना : सामान्य परिचय / अरविंदकुमार	174
जयशंकर प्रसाद के नाटक और धर्म भावना / डॉ० राजाराम अग्रवाल	187
संरचनावाद और सस्यूर / डॉ० राकेश रंजन	190
डॉ० रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित नाटक 'महाराणा प्रताप' में संवेदना एवं शिल्प / काशीनाथ	197
सुधा अरोड़ा के आलेखों में चित्रित दलित औरत / नंदा गुलाबराव बच्छाव	203
हिंदी सिनेमा गीतों के विविध स्वर / निर्मला राजपूत	206
जनमाध्यम और मुस्लिम महिलाएँ / अमरीन	214
प्रतिभाशाली छात्राओं और औसत छात्राओं के समायोजन और मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन / डॉ० सतीश गिल	220
उत्तर प्रदेश में 73वें संविधान संशोधन के बाद पंचायती राज-व्यवस्था, प्रशासनिक ढाँचा तथा उसका मूल्यांकन / विवेक पांडेय	227
दिल्ली सुल्तानों का खलीफाओं से संबंध / डॉ० नीलू कपूर	232
गांधीवाद के प्रमुख जीवनसूत्र / स्मृति उपाध्याय	236

कवयित्री चंपाबाई : जीवन और साहित्य

प्रोफ़ेसर आदित्य प्रचंडिया, डी०लिट्०

चंपाबाई हिंदी की जैन कवयित्री हैं। आपने एक शतक काव्य का सृजन किया है। समूचा शतक पदों में रचा गया है। इन पदों का प्रतिपाद्य विषय आध्यात्मिक है। कवयित्री का नाम चंपादेवी था, लेकिन राजस्थानी प्रभाव के कारण जैन खंडेलवाल जाति में नारी के नाम के साथ 'बाई' शब्द का प्रचलन प्राचीन समय से था। अतएव चंपादेवी चंपाबाई के नाम से प्रसिद्ध हुईं। कवयित्री चंपाबाई के पिताश्री मोहनलाल अलीगढ़ (उ०प्र०) के निवासी थे। मोहनलाल खंडेलवाल जैन थे और आपका गोत्र था 'पाटनी'। इस प्रकार चंपाबाई का जन्म पाटनी परिवार में हुआ था। मोहनलाल पाटनी की तीन संतानें थीं—दो पुत्र और एक पुत्री। कवयित्री अपने पिता की सबसे छोटी संतान थीं। दोनों भाई कवयित्री के अग्रज थे। उनके नाम थे क्रमशः रामलाल पाटनी और प्यारेलाल पाटनी। प्यारेलाल पाटनी रुई तथा अनाज के बड़े व्यापारी थे। आप सरल प्रकृति, धर्मनिष्ठ श्रावक तथा सफल व्यापारी थे। प्यारेलाल पाटनी सुधी तथा अध्यात्म के श्रेष्ठ साधक थे और कालांतर में पंडित प्यारेलाल नाम से विद्वत् समाज में समादृत हुए। कवयित्री के जीवन निर्माण में उनके भाई पंडित प्यारेलाल पाटनी का व्यापक प्रभाव पड़ा और कवयित्री में बाल्यावस्था से ही स्वाध्ययशील होने के बीज अंकुरित होने लगे थे। पंडित प्यारेलाल पाटनी के सुपुत्र पंडित श्रीलाल पाटनी अपने समय के विख्यात आध्यात्मिक विद्वान थे। आपने पूजा काव्यरूप में काव्य सृजन किया। आपके 'भूगोल भ्रमणभ्रांति' नामक ग्रंथ ने तत्समय भारी धूम मचा दी थी। यह ग्रंथ जैन आगमों के आधार पर रचा गया था और अनेक मान्यताओं का खंडन-मंडन करता है। डॉ० महेंद्र सागर प्रचंडिया के अनुसार इन्होंने मध्यमा के सभी खंड उत्तीर्ण किए थे। पंडित श्रीलाल पाटनी का प्रभाव उनकी बुआजी पर विशद् था। कवयित्री चंपाबाई का जन्म संवत् 1913 में अलीगढ़ में हुआ था।¹ उन्नीसवीं शती में भारतीय समाज में वैवाहिक संस्कार अल्पायु में ही संपन्न हो जाते थे। फलस्वरूप कवयित्री चंपाबाई का छोटी अवस्था में ही दिल्ली निवासी सुंदरलाल टोंग्या के साथ विवाह संपन्न हुआ। आपके पति हीरा-जवाहरात के बड़े व्यापारी थे। कवयित्री के जीवन में धनाभाव नहीं रहा। इनके पति और पिता दोनों ही संपन्न परिवार के प्रसिद्ध व्यक्ति थे। कवयित्री चंपाबाई ने अपने जीवन के तीस वर्ष बड़े आनंद के साथ व्यतीत किए। नारी की सबसे बड़ी इच्छा उसकी सुशील संतान हुआ करती है। दुर्भाग्य से कवयित्री निःसंतान रहीं। तीस वर्ष की आयु में कवयित्री चंपाबाई विधवा हो गईं। कवयित्री का निसंतान होना उस पर भी पति का वियोग वस्तुतः दारुण दुःखद घटना प्रमाणित हुई। अपनी विधवावस्था में कवयित्री को अलीगढ़ रहने का अधिक अवसर मिला तथा भाई-भतीजों के संपर्क में तत्त्व चर्चा की अभिरुचि उत्पन्न हुई और स्वाध्याय में उत्तरोत्तर प्रवृत्ति बढ़ती गई। कवयित्री को छियासठ वर्ष की अवस्था में विविध रोगों

ने आक्रांत किया। अनेक औषधियों के प्रयोग से भी कोई लाभ न होता देख इनके हृदय में अर्हद्भक्ति एकमात्र संबल शेष रह गया। कवयित्री भगवद्भक्ति में विभोर हो गई और इनकी हार्दिक हूक काव्यात्मक कूक में प्रस्फुटित होने लगी। प्रभु से मझधार में पड़ी नाव के उबारने की प्रार्थना इनके श्रद्धालू भाव का ज्वलंत प्रमाण है—

पड़ी मझधार मेरी नैया, उबारोगे तो क्या होगा।

तरन तारन जगतपति हो, जु तारोगे तो क्या होगा।²

अग्रज पंडित प्यारेलाल पाटनी ने कवयित्री को यथेष्ट प्रेरणा और परामर्श दिया। फलस्वरूप इनका काव्यात्मक दायरा दरिया में विवर्द्धित होने लगा। पदों का सृजन इनके सभी रोगों को शांत करने का एकमात्र उपाय शेष रह गया। दो वर्ष की अवधि में कवयित्री ने चंपाशतक की रचना पूर्ण कर डाली। परिवार का नाम चलता रहे, अस्तु कवयित्री ने चिरंजी लाल नामक युवक को गोद ले लिया। आपके दत्तक पुत्र व्यवस्थित हुए जिनके पाँच पुत्र और तीन पुत्रियाँ अर्थात् आठ संताने संजीवित हैं। वर्तमान में यह परिवार जयपुर में बस गया है।

जिन भक्त और सहृदय कवयित्री चंपाबाई के काव्य में जैनदर्शन, भक्ति तथा उपयोगी अन्य कल्याणकारी बातों का समावेश है। वस्तुतः कवयित्री का काव्य भावपरक स्फुट मुक्तकों का संकलन है, जो ज्ञान, भक्ति तथा उपदेशों से सुगठित है। जिन गुरु, देवी, देवता आदि से श्रद्धान रखने की प्रबल प्रेरणा व्यक्त की गई है। इन धार्मिक अभिव्यक्तियों के द्वारा कवयित्री ने मानव के जीवन का वास्तविक मूल्य उपन्यस्त किया है। फलस्वरूप संसार के प्रति विरक्ति और आध्यात्मिक अभिचिंतन के प्रति अनुरक्ति उत्पन्न होना अत्यंत स्वाभाविक है। कवयित्री की मान्यता रही है कि इन सभी श्रद्धेय पूज्यात्माओं के गुणों के चिंतन करने से मानव का उद्धार सहज हो जाता है। अर्हद्भक्ति, आलोचनात्मक उपदेशात्मक, कथात्मक, गुरुभक्ति, जिनवाणी माता, जिनागम, तीर्थकर भक्ति, दार्शनिक, पर्वतात्मक, प्रार्थनात्मक, बधाईपरक और शिक्षात्मक आदि भावभिव्यक्ति की संक्षिप्ति कवयित्री के काव्य में व्यहृत है।

अर्हद्भक्ति विषयक कवयित्री द्वारा दस मुक्तक रचनाएँ रची गई हैं। जिसमें वीतराग, जिनराज, महावीर स्वामी, जंबू स्वामी, पार्श्वप्रभु और श्री अरिहंत जी के प्रति अर्चन, वंदन और श्रद्धाभाव व्यक्त हुए हैं। वीतराग प्रभु के गुणों का गान और उनकी हियकारी छवि का चिंतन कर कवयित्री ने स्वयं भी उनकी भक्ति में अनुरक्त होने के भाव को व्यक्त किया है। आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता को व्यक्त कर कवयित्री ने सांसारिक जीव के विभिन्न कृत्यों का साथ ही तदनुसार फल की प्राप्ति का विवेचन किया है। मानव को सदैव जगत से उदासीन हो जिनराज की प्रतिमा का एकाग्रचित से ध्यान करने का निर्देश है। संसार को अज्ञान का कुआँ बतलाकर मानव को उससे निकलने की बात कही है और यह रागद्वेष आदि कुवृत्तियों के विसर्जन होने पर ही संभव है। जिनराज की पूजा भी मानव के जीवन में अनिवार्य है। सांसारिक मोहबंधनों का परित्याग कर कुसंग और कुचर्चा की ओर से उपेक्षित होकर मानव को अर्हनिश जैन मंदिर की संस्तुति की गई है।

आलोचनात्मक स्फुट सक्तकों में उन प्राणियों की चर्चा है, जो अपने जीवन में सदैव जिनवाणी का उल्लंघन कर अनैतिक कार्यों में व्यस्त रहते हैं। मोक्षमार्ग में विघ्न बाधाओं का उल्लेख कर कवयित्री ने उन व्यक्तियों की आलोचना की है, जो ज्ञान और वैराग्य का झूठा बाना

पहने रहते हैं। जो प्राणी लोभ, मोह आदि की ओर उन्मुख होते हैं साथ ही स्वार्थवश धन के संचय में ही अपना समस्त जीवन व्यतीत कर देते हैं, ऐसे जीव कभी भी आनंद की अनुभूति नहीं कर सकते। कवयित्री ने बताया है कि जागतिक प्राणियों की गतिविधियाँ विभिन्न प्रकार की हैं। कोई तो साधु का बाना ग्रहीत कर स्वयं को बैरागी कहते हैं और कोई व्यसनों में फँसे रहने पर भी ज्ञानी बताता है। इन सभी पर कवयित्री ने अपने आलोचनात्मक भजनों में जीवंत प्रहार किया है। उपदेश मूलक इक्कीस भजनों की रचना कर कवयित्री ने नई पीछी का मार्ग दर्शन किया है। इन सभी उपदेशों में जनकल्याण की भावना रही है। ज्ञानोदय होने पर प्राणी अपने जन्म के क्षणों का उचित उपयोग कर स्व-पर का कल्याण करने में सक्रिय होता है। कवयित्री का स्पष्ट कथन है कि मानव जीवन दुर्लभ है, विगत क्षण कभी वापस नहीं आता, इसीलिए प्रत्येक क्षण को संयममय बनाना ही श्रेयस्कर है। कथ्यात्मक मुक्तक काव्य में कवयित्री द्वारा केवल दो प्रगीतों की रचना हुई है। जैन कथानकों में नेमिराजुल वृत्त बहुचर्चित है। ये प्रगीत नेमिराजुल के जीवन से संबंधित हैं। नेमि की वरयात्रा में आगत मांसाहारियों के लिए निरीह बंदी पशुओं की चीत्कार ने नेमि के हार्दिक चक्षुओं को खोल दिया और उन्हें तत्काल वैराग्य हो गया। मनोनीत पति को वैराग्य की ओर उन्मुख देख राजुल रानी का व्याकुल होना अत्यंत स्वाभाविक है, किंतु उन्हें भी अपने जीवनाधारा का अनुकरण करना ही श्रेयस्कर प्रतीत हुआ और वह अपनी अल्पायु में ही माँ से वैराग्यवती होने की अनुमति प्राप्त करती हैं। कन्या माँ की आत्मिक प्रतिलिपि होती है। इस कथ्य में करुणा, श्रृंगार तथा वैराग्य की प्रतीतियाँ विषयक कवयित्री की काव्य साधना वस्तुतः पाठक को रसविभोर कर देती है।

गुरुभक्ति प्रसंग में कवयित्री में वीतराग गुरु के गुणों की चर्चा की है। वीतराग गुरु ने हृदय में जाग्रत अविरल चिदानंद ज्योति को अभिव्यक्त कर कवयित्री ने उनके द्वारा किए गए सम्यक् तप की ओर मानव के मन को आकर्षित किया है। कवयित्री ने विलासी प्राणियों को संबोधित करते हुए सम्यक् तपश्चरण की प्रेरणा प्रदान की है। कवयित्री ने चिंतामणि, कल्पतरु, कामधेनु आदि से जिनराज को अलंकृत कर उनके कृपाभाव को पाने की कामना व्यक्त की है। 'चंपाशतक' की संरचना में कवयित्री द्वारा जिनवाणी माता का स्मरण और उनके गुणा का गायन आरंभ में हुआ है। कवयित्री ने जिनवाणी की चर्चा जिनवाणी, जिनवाणी माता, जिनागम, सरस्वती तथा जिनवचन नामक संज्ञाओं में हुई है। तीर्थकर भक्ति में सात स्फुट मुक्तकों का व्यवहार हुआ है। ये सभी मुक्त तीर्थकर भक्ति से परिपूर्ण हैं। प्रार्थना परक मुक्तकों में जीवन के उद्धार के लिए कवयित्री ने श्री जिनेंद्र की विभिन्न भावों से अर्चना-वंदना की है, जो मानव को रसविभोर कर देती है। शिक्षात्मक मुक्तकों की संख्या सर्वाधिक है। कवयित्री द्वारा भावसागर से पार करने के लिए जगतपति से विनयभाव अभिव्यक्त हुआ। शांतमय प्रभु प्रतिमा के दर्शन से भक्त का रूप भी तदनुसार हो जाता है। कवयित्री ने शिक्षात्मक मुक्तकों में उन भक्तों की भी चर्चा की है जिन्होंने अपनी संकटपूर्ण स्थिति में ईश्वर का हार्दिक भाव से स्मरण किया है। जनकसुता, अंजना, सौमा, द्रोपदी, गज, सुलोचना, मैना, चंदना आदि सभी ने क्रमशः श्री जिनवर, परमेष्ठी, प्रभु, श्रीजिन, सिद्धचक्र महावीर का संकटपूर्ण स्थिति में स्मरण किया है। फलस्वरूप उन्हें मुक्ति प्राप्त होती है। कवयित्री ने दिगंबर वेशधारी के महत्त्व को भी प्रतिपादित किया है।

भारतीय विचारधारा के उन्नयन में अन्य अनेक आचार्यों की नाई जैनाचार्यों का प्रदेय

महनीय है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, कन्नड़, तमिल, तेलुगु, मराठी, गुजराती और राजस्थानी आदि भाषाओं में रचित साहित्य की भाँति जैन कवयित्री का हिंदी वाङ्मय की श्रीवृद्धि में उल्लेखनीय योगदान रहा है।³ कवयित्री ने भले प्राणी को संबोधित करते हुए प्रेरणा दी है कि अनंत पर्यायों में अनिश्चितकाल तक जन्म-मरण के दुःखों से छुटकारा पाने के लिए हमें सम्यक्दर्शन जानना चाहिए। सम्यक्दर्शन के माध्यम से ही जीव अनंत दुःखों से निवृत्ति पा सकता है—

सम्यक् दर्शन जानो रे भाई, सम्यक् दर्शन जानो रे भाई।
बिन जाने ते काल अनंतो, अपनी कियो दुःख टानो।⁴

कवयित्री ने मिथ्यादर्शन, मिथ्यादृष्टि जीव की प्रवृत्ति का उल्लेख करते हुए लिखा है कि मिथ्यादर्शन में आस्था रखने वाला प्राणी पुद्गल, शरीर, धनसंपत्ति आदि सांसारिक पदार्थों के प्रति अनुरक्त रहता है और सम्यक् दर्शन से अनभिज्ञनिज आत्मस्वरूप को बिना जाने हुए शिव सुख से सर्वथा वंचित रहता है। ऐसे जीव निरंतर भटकते रहते हैं और निरंतर दुःख भोगा करते हैं। आत्मविश्वास के लिए सम्यक् दर्शन अपेक्षित है—

मिथ्या दर्शन सम्यक दर्शन, दोउ की विधि छानो।
सम्यक् गह मिथ्या तजि दीजे, यही बात उर आनो।⁵

इस प्रकार सम्यक् दर्शन और मिथ्या दर्शन द्वारा अर्जित उपलब्धियों का उल्लेख कर कवयित्री ने सद् और असद् का अंतर स्पष्ट कर दिया है। कवयित्री ने जीवकल्याण के लिए षट्द्रव्य और सप्त तत्त्वों का सतत चिंतन आवश्यक बताया है। सामान्यतया कवयित्री ने जैनदर्शन की आत्मा को पहचानते हुए उसका पर्याप्त प्रतिपादन कर सामाजिक प्राणी के लिए कल्याणकारी मार्ग का प्रवर्तन भी किया है। वीतरागी छवि के दर्शन करने से विविध विभावों का विसर्जन हो जाता है—

तिहारी वीतरागी छवि, विभावों को हटाती है।
इसी कारण तेरी भक्ति, मुझे निस दिन सुहाती है।⁶

कवयित्री चंपाबाई की भावना है कि ऐसे सच्चे गुरु के हमें कब दर्शन होंगे और कब हमें सद्ज्ञान प्राप्त होगा ताकि हम विपत्तियों के जाल से विमुक्त हो सकें—

कहै 'चंपा' जिन्होंने काज आतम के सम्हारे हैं
जगेंगे भाग हमरे तब मिले, जब गुरु हमारे हैं
दरस कब होयगा जिनका, यही लौ मेरे लागी है,
मिलेंगे कब गुरु हमको, जु साँचे वीतरागी हैं।

इस प्रकार कवयित्री की भक्ति में हृदय की सहज अनुभूति की प्रधानता है।

'चंपाशतक' में शांत और करुण रस की परिपाक हुआ है। कवयित्री ने अपनी जागतिक दुर्दशा का अभिचित्रण करते हुए प्रभु के सम्मुख चिंतवन किया है। वह वस्तुतः दीनता की सुंदर निदर्शन है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति में करुण रस की निष्पत्ति हुई है—

पड़ी मझदार मेरी नैया उबारोगे तो क्या होगा
तरन-तारन जगतपति हो जो तारोगे तो क्या होगा

शरण चंपा ने लीनी है भँवर में आ गयी नैया
मेरी विनती अपावन की विचारोगे तो क्या होगा।⁸

काव्य में व्यवहृत सभी अलंकार कवयित्री के ज्ञान वैविध्य का तो बोध कराते ही हैं। साथ ही जनसाधारण को भी ईश्वर भक्ति की ओर प्रेरित करने में सहायक सिद्ध होते हैं। कावयत्री को अनुप्रास, यमक, पुनरुक्तिप्रकाश, वीप्सा, रूपक, उपमा और दृष्टांत अलंकार प्रिय रहे हैं। अर्थ की सूक्ष्माभिव्यक्ति शब्द की स्थूल सामर्थ्य के द्वारा संभव नहीं है तथापि शब्दसाधक अपनी भावाभिव्यक्ति को यथासंभव व्यक्त किया करते हैं। फिर भी सूक्ष्म अर्थ की स्थापना करने में प्रतीकों का बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। कवयित्री ने वस्तु तथा स्थानपरक प्रतीकों को सर्वाधिक व्यवहार किया है। कवयित्री जैन धर्मानुयायी हैं। अस्तु, उनकी धार्मिक तथा भक्त्यात्मक अभिव्यक्ति में जैन दर्शन की गृहीत शब्दावली का सफल प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त 'चंपाशतक' में अरबी, फारसी, संस्कृत भाषाओं के शब्दों का तथा लोकजीवन में प्रचलित शब्दावली का व्यवहार सर्वाधिक हुआ है। कवयित्री चंपाबाई ने विभिन्न पद शैली में शताधिक पदों की रचना कर सूर, तुलसी तथा मीरा की पद शैली की परंपरा को गति प्रदान की। यद्यपि इन पदों में राग-रागिनियों तथा विभिन्न काव्यरूपों, गजल, कव्वाली आदि का व्यवहार हुआ है। तथापि इनके अधिकांश पदों में 'भजन टाइप' की स्पष्ट छाप है। इस प्रकार कवयित्री चंपाबाई मूलतः सांसारिक जीवन से दुःखी हैं, भक्त हैं, अस्तु उनकी भावाभिव्यक्ति में भक्त्यात्मक अनुभूतियों के दर्शन होते हैं। कवयित्री के विचार जैन धर्म से अनुप्राणित हैं। इसीलिए उनके समूचे शतक में जैन धर्म की पारिभाषित शब्दावली तथा प्रतीकों का सफल व्यवहार हुआ है। वस्तुतः हिंदी पद शैली की परंपरा में कवयित्री चंपाबाई का योगदान निस्संदेह अभूतपूर्व है।

संदर्भ

1. डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल, भूमिका, चंपाशतक, जयपुर
2. चंपाबाई, चंपाशतक, चाल रेखता
3. डॉ० महेंद्रसागर प्रचंडिया, जैन कवियों के हिंदी काव्य का काव्यशास्त्रीय मूल्यांकन, पृ० 1
4. चंपाशतक, दार्शनिक, पद संख्या 74
5. उपरिवत
6. चंपाशतके, अर्हद्भक्ति, पद संख्या 17
7. चंपाशतक, गुरुभक्ति, पद संख्या 10
8. चंपाशतक, शिक्षात्मक, पद संख्या 27

मंगलकलश
394, सर्वोदयनगर, आगरा रोड
अलीगढ़ 202001 (उ०प्र०)
दूरभाष (0571) 2410486

सामाजिक आदर्श और भारतीय शिक्षा

डॉ० अशोक उपाध्याय

हिंदी विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली

प्रसिद्ध शिक्षाविद् लेवटोल स्टॉय के अनुसार—‘व्यापक अर्थ में शिक्षा उन सभी प्रभावों की समष्टि है, जो मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास करते हैं और अधिक व्यापक दृष्टिकोण तथा नई जानकारी देते हैं। बच्चों के खेल अनुभव, माँ-बाप द्वारा दिया जाने वाला दंड, किताबें, काम, बलात अथवा स्वैच्छिक शिक्षण, कला, विज्ञान, जीवन आदि सबकुछ शिक्षा के जरिये है।’¹ इसका संबंध विद्यार्थी के पालन पोषण से भी है। ‘पोषण’ निहित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य संवर्द्धन का साधन है। पालन तन और मन पर स्थापित किया जानेवाला व्यक्तिगत प्रभाव है। इसका उद्देश्य जीवन के आचार-विचार तथा समाज में उचित व्यवहार-योग्य स्वभाव विकसित करने का सुनिश्चित प्रयास करना है। यह माता-पिता, भाई-बहन इत्यादि संरक्षकों के माध्यम से ग्रहण किया गया, स्वतंत्रतामूलक संबंध से विकसित शिक्षा का बाध्यता मूलक चेतना संपन्न प्रयास है। नियंत्रण, अध्यापकीय शिक्षण एवं उचित सामाजिक व्यवहार का संज्ञान इसके मुख्य बिंदू हैं। परिवार, राज्य, धर्म और समाज के कारण इसकी प्रायः आवश्यकता पड़ती है। माता-पिता तथा अन्य पारिवारिक शुभचिंतक अपने बच्चों को ठीक उस महत्त्वकांक्षा के अनुरूप ढालना चाहते हैं, जो कि स्वयं उनके अपने जीवन में विद्यमान है अथवा जैसा कि वे स्वयं अपने रूप में बना हुआ देखना चाहते हैं। ‘यह अकांक्षा इतनी स्वाभाविक है कि उसका बुरा नहीं माना जा सकता। जब तक हर माता या पिता इस बात को महसूस नहीं करता कि हर व्यक्ति को स्वतंत्र रूप से विकसित होने का अधिकार है, तब तक और कोई मांग नहीं की जा सकती। इसके अलावा, माता-पिता सबसे ज्यादा इस भरोसे रहेंगे कि उनका बेटा क्या बनता है। अतः अपने बेटे को अपने ढंग से पालने की उनकी इच्छा को यदि उचित नहीं, तो स्वाभाविक अवश्य ही कहा जा सकता है।’² शिक्षा का सामाजिक रूप सामाजिक प्रक्रिया से संबद्ध है और इसको जैविक प्रारूप का संबंध वंशानुक्रम से है। ‘सामाजिक क्रिया से तात्पर्य उन क्रियाओं से है, जिनके द्वारा लोक जीवन को प्रभावित करनेवाली परंपराएँ सामाजिक संगठन और संस्थाओं के साथ ही हर नई पीढ़ी का हस्तांतरित हो जाती है। परंपराओं का समायोजन करने से ही समाज में शिक्षा के बहुत से साधन इस ध्येय में सहायता पहुँचाते हैं। परंपराओं का समायोजन परिवार से ही आरंभ हो जाता है और विद्यालय एवं धर्म संस्थानों के साधनों द्वारा और समाज तथा राज्य के प्राविधिक साधनों द्वारा बराबर होता रहता है।’³

शिक्षा सामाजिक नियंत्रण, सुव्यवस्था और विकास का सबसे शक्तिशाली आधार है। आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं विभिन्न प्रकार के बौद्धिक प्रयासों को सफलत

बनाने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका सर्वविदित है। प्रो. वॉयड एच बोड के अनुसार—‘समाज और शिक्षा का एक-दूसरे से पारस्परिक कारण और परिणाम का संबंध है। किसी भी समाज का स्वरूप उसकी शिक्षा व्यवस्था के स्वरूप को निर्धारित करता है और इस व्यवस्था का स्वरूप समाज के स्वरूप को निर्धारित करता है।’⁴ इसकी उन्नति से पुष्पित-पल्लवित ज्ञान-विज्ञान का स्वरूप जीवन के उच्च मानदंडों को स्थापित करने में समर्थ होता है। अज्ञान के विनाश से उत्पन्न प्रकाश पुंज सामाजिक तथा सांस्कृतिक गरिमा का लोकव्यापी ज्योतिकलश बन जाता है। स्वामी विवेकानंद का कथन है कि ‘मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। ज्ञान मनुष्य में स्वभावसिद्ध है, कोई भी ज्ञान बाहर से नहीं आता, सब अंदर ही है। हम जो कहते हैं कि मनुष्य जानता है, यह यथार्थ में मानस शास्त्रसंगत भाषा में, हमें कहना चाहिए कि वह आविष्कार करता है, अनावृत या प्रकट करता है। मनुष्य जो कुछ सीखता है, वह वास्तव में आविष्कार करना ही है।’⁵ सामाजिक सभ्यता, संस्कृति तथा अनुभवगम्य विचार तत्त्वों की विकीर्ण ज्ञानराशि के संचित एवं परंपरागत स्वरूप को अनावृत करके नवीन रूप में प्रस्तुत तथा संरक्षित करने के अत्यंत लाभप्रद उपादानों का भी सृजन शिक्षा के द्वारा किया जाता है। एच०एच० हार्न ने लिखा है कि ‘शिक्षा के द्वारा अतीत के चित्र प्रस्तुत करने का उत्तम कार्य किया जाता है। यह उसे सुरक्षित भी रखती है। यह वर्तमान समय में अतीत की उपलब्धियों की रक्षा करने का उत्तम कार्य करती है। यह ज्ञान और शक्ति के वर्तमान संग्रह की वृद्धि करके और इस प्रकार भविष्य को अतीत से श्रेष्ठतर बनाने की संभावना का सर्वोत्तम कार्य करती है।’⁶

यह सर्वविदित तथ्य है कि हमारी सीखने या शिक्षण प्राप्त करने की प्रक्रिया जन्म से मृत्यु तक चलती रहती है। फिर भी यह सभ्य समाज की महत्वपूर्ण आवश्यकता है कि जीवन के कुछ वर्षों में विशेष रूप से जीवन के प्रारंभिक काल से लेकर युवावस्था तक औपचारिक या संस्थागत शिक्षा प्राप्त की जाए। प्रशिक्षण एवं अनुशासन की सहायता से ही मनुष्य को एक श्रेष्ठ सामाजिक सदस्य का स्तर प्राप्त होता है। कर्तव्यपालन के साथ-साथ सामाजिक अनुकूलन कादाचित भी इसी के माध्यम से संभव है। प्रशिक्षण का तात्पर्य यहाँ पर पढ़ना-लिखना मात्र नहीं है। इसे विवेकसम्मत आचरणशील तथा जीवन के लिए उपयोगी बौद्धिक ज्ञान के रूप में ग्रहण किया जना चाहिए।

महात्मा गांधी का कथन है कि ‘सच्ची शिक्षा इसमें नहीं है कि आप बच्चों को अक्षरों का ज्ञान करा दें। सच्ची शिक्षा तो बच्चों के चरित्र निर्माण में है। जब तक बच्चे छोटे होते हैं और उनकी बुद्धि कोमल होती है तभी तक उन्हें इच्छानुसार मोड़ा या ढाला जा सकता है। इसलिए शिक्षक यदि इस उम्र में बच्चों को समझा दें कि जीवन में चरित्र ही सबसे पहली और आखिरी वस्तु है और अक्षर ज्ञान तो चरित्र गठन का साधन मात्र है, तो मैं शिक्षकों और बच्चों, दोनों का पाठशाला में जाना सार्थक समझूँगा और माता-पिता का ऐसी पाठशालाओं में बच्चों को भेजना उचित मानूँगा।’⁷ स्वामी विवेकानंद ने भी इसी प्रकार कहा है कि ‘शिक्षा विविध जानकारियों का ढेर नहीं है, जो तुम्हारे मास्तिष्क में ढूस दिया गया है और जो आत्मसात हुए बिना वहाँ आजन्म पड़ा रहकर गड़बड़ मचाया करता है। हमें उन विचारों की अनुभूति कर लेने की आवश्यकता है, जो जीवन निर्माण में सहायक हों। यदि शिक्षा का अर्थ जानकारी ही होता, तब तो पुस्तकालय संसार में सबसे बड़े संत हो जाते और विश्वकोश महान ऋषि बन जाते।’⁸

शिक्षा उच्चकोटि के नागरिकों के निर्माण की सर्वोत्तम प्रविधि है। छात्रों के हृदय में निहित अस्पष्ट एवं गोपनीय सामर्थ्य को बाहर लाकर सभी के हित के लिए प्रयुक्त करना इसकी कार्य प्रणाली की अनिवार्यता होनी चाहिए। इसमें जीविकोपार्जन का दृष्टिकोण होना आवश्यक है; लेकिन इतना अधिक नहीं कि सब कुछ उपभोक्तावाद की तीव्र लालसा में परिवर्तित हो जाए। शिक्षा का संबंध जीवन आदर्शों से है; इसीलिए 'शिक्षा व्यवस्था का मुख्य दायित्व उन प्रथागत विधियों तथा क्षमताओं के ज्ञान को संप्रेषित करना है, जिनको समाज अपने दीर्घजीवन एवं प्रगति के लिए अनिवार्य समझता है।'⁹ मानव-व्यक्तित्व का निर्माण करनेवाले विचारात्मक और भावात्मक तत्त्वों का शिक्षण इसकी सबसे बड़ी जिम्मेदारी है। सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास हेतु इसके प्रयासों में सदैव सार्थकता एवं सजगता आवश्यक है। धर्म और नीति के उपयोगी विचार भी इसके समीकरणों के लक्ष्य बिंदु होने चाहिए। शिक्षा के माध्यम से मानव आचारण के औचित्य एवं अनौचित्य के विषयों को सीखता है। किस प्रकार के कार्यों से उसे सम्मान मिलेगा और किस प्रकार के कार्यों से अपमान, यह उसी इसी के माध्यम से सीखने को मिलता है। सबसे अधिक आदरणीय व्यवहार, विश्वास एवं अविश्वास करने योग्य तथ्यों का सबल ज्ञान उसे शिक्षा से ही उपलब्ध होता है। जन्मजात आवेगों तथा दुर्गुणों का नियंत्रण करना भी इस दृष्टि से आवश्यक है कि उनका परिवर्तित स्वरूप उन्नतिकारक स्थिति में व्यक्ति तथा समाज के लिए हित संबद्ध बन जाए। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि हमारी शिक्षा का अभीष्ट सभी प्रकार के बालक-बालिकाओं को 'सामाजिक मूल्यों, विश्वासों और समाज के प्रतिमानों को आत्मसात करने के लिए तैयार करना और उनको समाज की क्रियाओं में भाग लेने के योग्य बनाना है।'¹⁰

अपने समाज और व्यक्ति के गौरव में विश्वास, सामाजिक एकता तथा न्याय का महत्त्व, स्वतंत्रता के प्रति आदर की भावना तथा प्रत्येक संकट का प्रतिरोध करने की शक्ति अर्जित करना हमारा लक्ष्य है। 'दूसरों को भय या वश में रखकर या वश में कर लेने की धमकी देकर हम शांति, प्रगति और ऐक्य की स्थापना नहीं कर सकते इनकी स्थापना तो तभी हो सकती है जब हृदय में उदारता के भावों को विकसित किया जाए। अपने औचित्यपूर्ण क्रोध और अधीरता के प्रदर्शन द्वारा भी इसकी सिद्धि नहीं होगी, बल्कि शांति और विचारपूर्ण ढंग से लोगों को प्रशिक्षित करने से ही होगी। विश्व पर अपनी भावनाओं को लादने से भी यह बात नहीं बनेगी, बल्कि यह बात तो सभी राष्ट्रों की भावनाओं को निष्पक्ष भाव से देखने और उनकी भली बातों की प्रशंसा करने से ही बनेगी।'¹¹

वैदिकयुग में विद्वान ऋषियों अथवा आचार्यों के लिए शिक्षा अदम्य प्रकाश का स्रोत थी। उसकी व्यापक तेजस्विता और ज्ञान-विज्ञान की प्रतिष्ठा संपूर्ण विश्व में परिव्याप्त थी। प्रो० ए०एस० आल्टेकर के अनुसार—'ईश्वर भक्ति तथा धार्मिकता की भावना, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक तथा सामाजिक कर्तव्यों का पालन सामाजिक कुशलता की उन्नति तथा राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण और प्रसार—प्राचीन भारत में शिक्षा के मुख्य उद्देश्य एवं आदर्श थे'¹¹² जयशंकर प्रसाद ने इसकी महिमा का वर्णन करते हुए 'स्कंदगुप्त' नाटक में लिखा है—

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार
उषा ने हँस अभिनंदन किया और पहनाया हीरक-हार
जगे हम लगे जगाने विश्व लोक में फैला फिर आलोक

व्योमतम पुंज हुआ तब नष्ट, अखिल संस्कृति हो उठी अशोक
विमल वाणी ने वीणा ली कमल कोमल कर में सप्रीत
सप्तस्वर सप्तसिंधु में उठे छिड़ा तब मधुर सामसंगीत।¹³

बौद्धकाल में शिक्षा का आधार महात्मा गौतम बुद्ध के उपदेश और तदनु रूप आचरण करने के लिए स्थापित संघ तथा श्रमण व्यवस्था थी। वैदिककाल में शिक्षा की पारिवारिक प्रणाली के कारण शिक्षक का घर अथवा परिवार छात्रों का शिक्षास्थल अर्थात् विद्यालय होता था। बौद्ध युग में शिक्षा का माध्यम संस्कृत के स्थान पर जनसामान्य द्वारा सहजता से बोली और समझी जानेवाली भाषा पाली बन गई थी। वास्तविकता यह थी कि 'व्याकरण के नियमों में जकड़ जाने पर संस्कृत का विकास रुक गया, परंतु बोलचाल की भाषा निरंतर विकसित होती जा रही थी। समस्त उत्तरापथ में आर्यों के प्रसार के साथ प्राचीन आर्य भाषा के रूप में भी परिवर्तन विवर्तन होता जा रहा था तथा भाषा में कालगत एवं स्थानगत भिन्नताएँ बढ़ती जा रही थीं और ईसापूर्व छठी शताब्दी तब प्राचीन आर्यभाषा विकास के मध्य स्तर तक पहुँच गई।¹⁴ बौद्ध मठों में धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ सांसारिक शिक्षा की भी व्यवस्था थी। वैदिक शिक्षा के समान शिक्षण प्रविधि में वाद-विवाद, तार्किक ज्ञान, विश्लेषण विवेचन, व्याख्यान, उपाख्यान एवं स्पष्टीकरण इत्यादि का सम्यक् उपयोग किया जाता था। मध्यकालीन मुस्लिम युग की शिक्षा धार्मिक कठोरता तथा इस्लामिक मतवाद से प्रेरित थी। इसका विशेष नैतिकता से परिपूर्ण स्वरूप युगीन आवश्यकताओं पूर्ति तथा विभिन्न सुधारों के बावजूद भारतीय संस्कृति के विपरीत था प्रो० यूसुफ हुसैन ने लिखा है कि उसका 'मुख्य दोष यह था कि उसमें छात्रों को परिशुद्ध निरीक्षण तथा व्यवहारिक निर्णय प्रदान करने की क्षमता नहीं थी। यह अत्यधिक अनम्य, निष्प्राण तथा पुस्तकीय थी। किसी भी शिक्षा प्रणाली की सर्वोत्तम कसौटी यह है कि क्या वह व्यक्ति के नैतिक तथा आध्यात्मिक अभ्युत्थान के लिए उसकी शक्तियों का पूर्ण विकास करती है। अथवा नहीं? यह दृष्टिकोण से यह कथन एक ऐतिहासिक सत्य है कि मध्यकालीन शिक्षा प्रणाली, व्यक्ति के नेतृत्व गुणों का विकास करने में असफल रही और इस प्रकार वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में असाधारण व्यक्तियों की पूर्ति न कर सकी। यदि मध्यकालीन शिक्षा-प्रणाली में प्रखर व्यक्तित्व का निर्माण करने की क्षमता होती, तो संभवतः भारत का मानचित्र लाल रंग से न रंगा गया होता।¹⁵ यहाँ यह भी अवलोकनीय है कि सम्राट अकबर तथा उनके अनुयायी मुस्लिम शासकों ने वैदिक तथा बौद्ध शिक्षा-पद्धति को भी अपनी समन्वयवादी सांस्कृतिक नीति के अनुरूप ढाल के रूप में ग्रहण करने का सफल प्रयास किया।

सन् 1757 ई० में प्लासी के महासमर के उपरांत अँग्रेजों का शासनकाल प्रारंभ हुआ। उनके द्वारा उपर्युक्त सभी शिक्षापद्धतियों की अवहेलना करके अपनी प्रशासनिक स्वार्थ नीति के अनुरूप अँग्रेजी के पठन-पाठन की व्यवस्था की। जनता ने भी नए शासन में महत्त्व प्राप्त करने तथा जीविकोपार्जन के लिए अँग्रेजी शिक्षा को स्वीकार कर लिया। अँग्रेज इससे पहले आयरलैंड में अपनी इस शिक्षा नीति से अभूतपूर्व सफलता अर्जित कर चुके थे। स्वामी विवेकानंद ने स्पष्ट रूप से इसका विरोध करते हुए बताया है कि 'आयरिश लोगों को उनके देश में मिलने वाली शिक्षा के समान हमारे यहाँ के बालकों को भी बड़ी निषेधात्मक या अभावात्मक शिक्षा दी जाती है। उसमें कुछ अच्छी बातें तो हैं, पर उसमें एक ऐसा भयंकर दोष है, जिसके कारण वे सारी

अच्छी बातें दब जाती हैं। पहले तो वह मनुष्य बनाने वाली शिक्षा नहीं है। वह पूर्णतया निषेधात्मक शिक्षामात्र है। निषेधात्मक शिक्षा अथवा कोई प्रशिक्षण, जो निषेध पर आधारित हो, मृत्यु से भी बदतर है।¹⁶ महात्मा गांधी जी ने भी इसी प्रकार अपना अभिमत व्यक्त किया है कि 'अँग्रेजी भाषा द्वारा दी गई शिक्षा ने मुट्ठी-भर शिक्षितों और सर्वसाधारण के बीच बड़ी भारी खाई उत्पन्न कर दी है। परिवारों में भी यही हुआ है; अँग्रेजी पढ़े मनुष्य, मनुष्य के विचार और भाव आदि का उसके घर की स्त्रियों के विचारों और भावों आदि से किसी प्रकार का सरोकार ही नहीं होता। अँग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों का लक्ष्य या तो सरकारी नौकरियाँ पाना होता है या बहुत हुआ तो शाही परिषद की सदस्यता प्राप्त करना होता है। जिस शिक्षा-प्रणाली से ऐसी बातें उत्पन्न होती हों, उसे मैं तो कभी ठीक नहीं समझता और जिन लोगों को ऐसी शिक्षा मिलती है, उनसे कभी यह आशा नहीं की जा सकती कि वे देश की कोई बड़ी सेवा करेंगे।'¹⁷

आज हमारे देश की शिक्षा दिन-प्रतिदिन अर्थोपयोगी स्वार्थ की भावना से परिपूर्ण होती चली जा रही है। निरंतर विकासशील वैज्ञानिक प्रज्ञा 'यावज्जीवेत सुखंजीवेत' के सिद्धांत का अंधानुकरण करती हुई दूसरों को निगलने के लिए तत्पर है। इसके कारण हम सबके समक्ष नैतिक विश्वासों का संकट उपस्थित हो गया है। हमारा परिवार और समाज अब स्वर्ग के समान आनंद प्रदान करने वाला नहीं रह गया है। उसमें रहकर हमें एक अजीब-सी घुटन और तिलमिलाहट महसूस होने लगी है। निराशा, अवसाद, अनैतिकता तथा स्वार्थलिप्सा की काली छाया ने समस्त वातावरण को भयावह बना दिया है। जीवन के आदर्श नष्ट होते जा रहे हैं और अंधानुकरण की दौड़ में शोषण 'रक्तबीज' निरंतर सक्रिय है। हमारी शिक्षा व्यवस्था में अनायास ही प्रविष्ट व्यावसायिक अतिशयता पूंजीवाद, बाजारवाद, उपभोक्तावाद तथा उत्तर आधुनिकतावाद जैसे मानकों को समाजवाद के आवरण में लपेटकर प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त कर ली है। कंप्यूटर क्रांति तथा जनसंचार के साधनों ज्ञान के भंडार की क्रय-विक्रय नीति निर्धारित करने काक लाभदायक प्रयत्न सफलतापूर्वक सिद्ध कर लिया है। राजनैतिक जीवन की प्रतिस्पर्धा तथा वैचारिक मान्यताओं ने हमारे आचरण को नष्ट-भ्रष्ट करके निहित स्वार्थ नीति में विभिन्न आयामों के द्वारा शैक्षिक जगत को भी प्रभावित किया है।

'आदमी की मौत अब घटना भी नहीं रह गई है। अखबारों में खबरें कुछ इस तरह छपती हैं कि जैसे फलाँ बूचड़खाने से आज बीते कल की उपेक्षा दर्जन भर बकरे ज्यादा मारे गए और कभी इस तरह की कि सौ डेढ़ सौ शिकारियों ने घेरा डालकर एक आदमखोर को मार गिराया। अखबार निरीह और बेबस निहत्थे आदमी की लाशों के बजाए आतंकवादियों की फोटो कुछ इस तरह फोकस करते हैं; जैसे मध्यकाल के नादिरशाही शासक दुश्मन की गर्दन चौराहे पर लटका देते थे।'¹⁸ ऐसी दुरंत स्थिति में भी हम आशान्वित हैं, क्योंकि भारत की शिक्षा, संस्कृति, आत्मगौरव, महानता एवं सामर्थ्य का आधार वह अध्यात्मिक शक्ति है, जिसको उसने अनादिकाल से संघर्ष करके उपाजित किया है। महर्षि श्री अरविंद का यह कथन पूरी तरह उचित ही है कि 'जब-जब ऐसी अवस्था उत्पन्न हुई कि लोगों को यह विश्वास होने लगा कि भारत-जाति के विनाश का काल निकट आ गया है, तब-तब आध्यात्मिक शक्ति ने गुप्त मूलस्रोत से तीव्र गति के साथ प्रवाहित होकर मुमूर्षु भारत को पुनरुज्जीवित किया है और सभी उपयोगी शक्तियों की सृष्टि भी की है। अभी भी वह मूलस्रोत सूख नहीं गया है, आज भी उस अद्भूत मृत्युंजय शक्ति

की क्रीड़ा हो रही है।¹⁹

भारतीय शिक्षा विद्यार्थियों को किसी भी अवस्था में निरकुंश एवं स्वच्छंद रहने का परामर्श नहीं देती है। यदि अन्य प्रकार के बंधनों से उन्हें मुक्त भी कर दिया जाए, तब भी स्वाधीन अर्थात् 'स्व' के बंधन उनके द्वारा सदैव स्वीकार्य होने चाहिए। इनके माध्यम से ही उन्हें सभी क्षेत्रों में नियमानुसार कार्य करने की समुचित प्रेरणा मिलती रहेगी। निरकुंशता की भयावह मनोवृत्ति ने आज इस आदर्श की नितांत उपेक्षा करके समस्त शिक्षा-जगत् को अनुशासन विहीनता की परिधि में स्थापित करने के कुचक्र की संरचना विभिन्न रूपों में प्रारंभ कर दी है। देश की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुत्तरदायित्वपूर्ण प्रभावों ने निरंतर बढ़ती हुई वैज्ञानिक प्रगति के साथ मिलकर एक अदृश्य आक्रांता का रूप धारण कर लिया है। श्रीमती महादेवी वर्मा ने स्पष्ट किया है कि 'हमारे विशाल और विविधता भरे देश की प्रतिभा ने अपनी विकास-यात्रा के प्रथम प्रहर में ही जीवन की तत्वगत एकता का ऐसा सूत्र खोज लिया था, जिसकी सीमा प्राणिमात्र तक फैल गई। हमारे विकास पथ पर व्यष्टिगत बुद्धि समष्टिगत बुद्धि के इतनी समीप रही है और व्यक्तिगत हृदय समष्टिगत हृदयता का ऐसा अभिन्न संगी रहा है कि अपरिचय का प्रश्न ही नहीं उठा। इसी से संपूर्ण भौगोलिक विभिन्नता और उसमें घटा जीवन एक ही संस्कृति उच्छ्वास में स्पंदित और अभिन्न रह सका है।²⁰ हमारे सिद्धांत असंख्य तत्त्वान्वेषियों के चिंतन की गरिमा से अभिमंत्रित हैं। जीवन की सजीवता और भविष्य की स्वप्निल आलोक दृष्टि इनके युगांतरकारी स्वरूपों में अनवरत गतिमान है। प्रायः सभी भारतीय विश्वविद्यालय हमारी गौरवशाली संस्कृति तथा सभ्यता के प्रचार प्रसार में संलग्न हैं। परस्पर सहानुभूति नारी सम्मान, शांतिपूर्ण जीवनयापन, स्वाधीनता के प्रति निष्ठापूर्ण आचरण, प्रेम एवं सद्भावना पूर्ण दृष्टि से अन्याय तथा अत्याचार का विरोध इनके प्रमुख संकल्प हैं। छात्रों के जन्मजात गुणों को खोजकर उन्हें पूर्णतया विकसित करने का कर्तव्य पालन इनके द्वारा निरंतर किया जा रहा है। न्याय, समानता, स्वतंत्रता तथा विश्वबंधुत्व इनके आदर्श हैं। धर्म और विज्ञान एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं। डॉ० राधाकृष्णन ने उचित ही कहा है कि 'विज्ञान की ठीक समझ आत्मा के धर्म की सहायक है। विज्ञान स्वयंचालित प्रक्रिया मात्र नहीं है और न ऐतिहासिक परिवर्तन का अज्ञात कारण है। विज्ञान का विकास उन लोगों की बुद्धि पर निर्भर है, जिनमें ज्ञान कौशल और मूल्यबोध है। मानव परमाणु का भंजन कर सकता है, इसीलिए ब्रह्मांड का स्वामी नहीं बन जाता। वह परमाणु का भंजन इसलिए कर सकता है, चूँकि उसके भीतर परमाणु से श्रेष्ठतर कुछ मौजूद है भौतिक उपलब्धियाँ तो इस तथ्य की गवाह हैं कि मानव चेतना क्या कुछ कर सकती है। इसके अतिरिक्त ये उपलब्धियाँ, कठोर मानसिक और नैतिक अनुशासन, पक्षपातहीन सत्यनिष्ठा, समर्पण की भावना और रचनात्मक कल्पनाशीलता की सुपरिणाम है।²¹

संदर्भ

1. लेवटोलस्टॉय, शिक्षाशास्त्रीय रचनाएँ, संपादक, स०फ० येगोरोव, पृ० 190
2. वही, पृ० 195
3. श्री जमनालाल बायती, साहित्य परिचय, शिक्षा और भारतीय संस्कृति विशेषांक, प्रधान संपादक, डॉ० रामशकल पांडेय, जनवरी-फरवरी 1971 ई० पृ० 176
4. वॉयड एच० वोड, फंडामेंटलस् ऑफ एजुकेशन, पृ० 221

5. स्वामी विवेकानंद, शिक्षा, अनुवादक पंडित द्वारिकानाथ तिवारी, पृ० 8
6. एच०एच० हार्ने, द फ़िलासफ़ी ऑफ़ एजूकेशन, पृ० 160, 161
7. महात्मा गांधी, शिक्षण और संस्कृति, संपादक-रामनाथ सुमन, पृ० 13
8. स्वामी विवेकानंद, शिक्षा, अनुवादक-पंडित द्वारिकानाथ तिवारी, पृ० 5
9. सी० पेननज़ियो, मेजर सोशल इंस्टीट्यूशन, पृ० 242
10. के०एन० वेंकटारायप्पा, एजूकेशन एंड सोसाइटी इन इंडिया, पृ० 23
11. ख्वाजा गुलाम सैयदेन, भारतीय शैक्षणिक विचारधारा, पृ० 21
12. प्रो० ए०एस० आल्टेकर, एजूकेशन एंशियेंट इंडिया, पृ० 9
13. जयशंकर प्रसाद, स्कंदगुप्त, पंचम अंक, पृ० 144
14. उदयनारायण तिवारी, हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० 58
15. यूसुफ़ हुसैन, ग्लिम्पसिज़ ऑफ़ मेडिवल इंडिया कल्चर, पृ० 97
16. स्वामी विवेकानंद, शिक्षा, अनुवादक पंडित द्वारिकानाथ तिवारी, पृ० 5
17. महात्मा गांधी, शिक्षण और संस्कृति, संपादक-रामनाथ सुमन, पृ० 20
18. बटरोही, साप्ताहिक हिंदुस्तान, 31 जुलाई 1988, पृ० 36
19. श्री अरविंद, धर्म और जातीयता, पृ० 101
20. महादेवी वर्मा, हमारे वैज्ञानिक युग की समस्या, संचयन, पृ० 127
21. डॉ० राधाकृष्ण, पूर्व और पश्चिम, पृ० 136-137

6/7, खन्ना भवन
सुभाष नगर, बरेली (उ०प्र०)
मो० 09927373723

बेवजाल पर साहित्यिक पत्रिकाओं की स्थिति : एक विवरण

कृष्णावीर सिंह सिकरवार

आज हिंदी में देश से कई छोटी बड़ी साहित्यिक पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं एवं इन पत्रिकाओं का पाठकवर्ग भी बहुतायत में है। इन पत्रिकाओं की लोकप्रियता का कारण यह भी है कि कम कीमत में ये पाठकों तक पहुँच जाती हैं। ये पत्रिकाएँ आज व्यापक रूप से प्रकाशित हो रही हैं और इनका क्षेत्र फैलता जा रहा है। पाठकों को इन पत्रिकाओं के माध्यम से साहित्यिक क्षेत्र में हो रही घटनाओं की जानकारी और हिंदी के प्रतिष्ठित रचनाकारों की लेखनी की जानकारी मिलती रहती है। देश में कई पुरानी पत्रिकाएँ बेहतर प्रचार-प्रसार के अभाव में एवं पाठकों का अभाव होने के कारण बंद भी हो रही हैं, फिर भी हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं का एक अपना बाज़ार है, जो इनको ज़िंदा बनाए हुए है।

इस लिहाज से लघु पत्रिकाओं की स्थिति बेहतर कही जा सकती है, क्योंकि एक तो इनकी कीमत कम होती है व आसानी से यह पत्रिकाएँ पाठकों को रेलवे स्टेशन, बस स्टैंड एवं पुस्तकों के स्टॉल पर प्राप्त हो जाती हैं।

आज की महँगाई में कुछ पत्रिकाओं की बड़ी हुई कीमत से भी इंकार नहीं किया जा सकता है फिर भी यह एक अपवाद ही माना जावेगा। आज महँगी पत्रिकाओं में उज्जैन से प्रकाशित मासिक साहित्यिक पत्रिका 'समावर्तन' का नाम लिए जा सकता है। इस मासिक पत्रिका की कीमत 150 रुपए मासिक व वार्षिक 1500 रुपए है, जो किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है, क्योंकि इतनी कीमत में एक अच्छी पुस्तक पाठक को मिल सकती है तो वह पत्रिका क्यों ख़रीदना चाहेगा। लगता है, इस पत्रिका का प्रकाशन अमीर पाठकों के लिए किया जा रहा है, आम पाठकों के लिए नहीं। इसके विपरीत देश में सस्ती पत्रिकाएँ भी निकल रही हैं, जिनकी कीमत बहुत ही कम रखी गई है। इस संदर्भ में हिमाचल प्रदेश शिमला से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'हिमप्रस्थ' का नाम लिया जा सकता है। इस पत्रिका की मासिक कीमत मात्र 5 रुपए व 50 रुपए वार्षिक रखी गई है। यह एक संपूर्ण साहित्यिक पत्रिका है। हालाँकि यह शासकीय पत्रिका है फिर भी 50 पृष्ठ की यह साहित्यिक पत्रिका पाठकों का भरपूर ज्ञानवर्धन कम कीमत में करती है। अतः ऐसी पत्रिकाओं का बेहतर प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए व पाठकों तक ऐसी पत्रिकाओं की जानकारी पहुँचाई जानी चाहिए।

आज कंप्यूटर व इंटरनेट के युग में कुछ पत्रिकाएँ सीधे ही बेवजाल पर प्रकाशित की जा रही हैं। यह भी एक सराहनीय क़दम है, क्योंकि बेवजाल पर प्रकाशित होने से देश में ही नहीं, बल्कि विदेशों में बैठे प्रवासी भारतीय पाठक भी आसानी से इन पत्रिकाओं को पढ़ सकते हैं। इस तरह से इन पत्रिकाओं के प्रकाशनों द्वारा विदेश में भेजने का डाक खर्च भी बच जाता

है, जो कि काफी ज्यादा होता है और पत्रिका भी काफी समय बाद पाठकों तक पहुँचती है। बेवजाल पर प्रकाशित होने से आराम से इन पत्रिकाओं का पढ़ा जा सकता है। इस दृष्टि से बेवजाल पर पत्रिकाओं का प्रकाशन पाठकों के दृष्टिकोण से लाभप्रद ही माना जाएगा। कुछ पत्रिकाएँ बेवजाल पर व प्रिंट रूप में प्रकाशित हो रही हैं एवं कुछ केवल प्रिंट रूप में ही प्रकाशित होती हैं। प्रस्तुत आलेख में हिंदी की साहित्यिक पत्रिकाओं के प्रकाशन पर प्रकाश डाला गया है।

केवल बेवजाल पर ही प्रकाशित पत्रिकाओं का वर्णन इस प्रकार है—

www.garbhnaal.com यह प्रवासी भारतीयों की मासिक पत्रिका है, जो पूर्व में प्रिंट रूप में प्रकाशित की जाती रही थी, परंतु आज यह केवल बेवजाल पर ई-पत्रिका के रूप में ही प्रकाशित की जा रही है। यह एक साहित्यिक पत्रिका है, जो मीनाल रेसीडेंसी, भोपाल से प्रकाशित होती है, इस पत्रिका में हिंदी की दशा व दिशा के साथ-साथ, उसके स्वरूप व उसके विकास को प्रमुखता के साथ प्रकाशित किया जाता है। धार्मिक चर्चाएँ भी इस पत्रिका की एक प्रमुख खूबी हैं, जिसमें पाठकों के समक्ष रामायण, महाभारत, गीतासार आदि से संबंधित विभिन्न रचनाकारों के विचार प्रमुखता से रखे जाते हैं। इस पत्रिका के संपादक श्री आत्माराम शर्मा साहित्य की इस बहुरंगी यात्रा के लिए बधाई के पात्र हैं, जो इतनी बढ़िया साहित्यिक पत्रिका पाठकों तक पहुँचाते हैं। इस लिंक पर पत्रिका के प्रथम प्रकाशन (नवंबर 2006) के बाद से वर्तमान अंक तक पी०डी०एफ० फ़ाइल के रूप में सँजोकर रखे गए हैं। पाठक नए अंकों के साथ-साथ पुराने अंकों को भी देख व पढ़ सकते हैं।

www.apnimaati.com यह पत्रिका भी ई-पत्रिका के रूप में चित्तौड़गढ़ राजस्थान से प्रकाशित की जाती है। यह एक साहित्यिक विधा की पत्रिका है, जिसमें हिंदी साहित्य के प्रत्येक कोण को प्रमुखता के साथ दर्शाया जाता है। इसके लिए इस पत्रिका के संपादक श्री अशोक जमनानी को बधाई। इस पत्रिका के पुराने अंक भी इस लिंक पर दिए गए हैं, जो पठनीय हैं।

www.rachnakar.org यह विश्व की पहली यूनीकोडित हिंदी की सर्वाधिक प्रसारित ई-पत्रिका है, जिसमें पत्रिकाओं के साथ-साथ रचनाकारों की रचनाएँ सीधे इस साइट के जरिए प्रकाशित की जाती हैं। इस पत्रिका में आलेख, कहानी, कविताएँ, उपन्यास, गज़लें, चुटकुले, बालकथाएँ, व्यंग्य, समीक्षाएँ, लघुकथाएँ, कहानी आदि सामग्री को प्रमुखता के साथ संकलित किया जाता है। इस लिंक को पाठकों द्वारा देखा जाना उचित होगा।

बेवजाल और प्रिंट रूप में प्रकाशित पत्रिकाओं का वर्णन इस प्रकार है—

www.bhavans.info यह हिंदी की डाइजैस्ट मासिक साहित्यिक पत्रिका है, जो भारतीय विद्या भवन, क०मा०मुंशी मार्ग, मुंबई से हर माह प्रकाशित होती है। इस पत्रिका के संपादक विश्वनाथ सचदेव हैं। यह पत्रिका प्रिंट रूप व बेवजाल दोनों ही रूपों में प्रकाशित की जाती है। यह भी हिंदी की साहित्यिक पत्रिका है, जिसमें सभी विचारों का स्वागत किया जाता है। पत्रिका पठनीय है। पत्रिका का मासिक शुल्क 30 रुपए है, जो किसी भी लिहाज से इतनी अच्छी हिंदी की साहित्यिक पत्रिका के लिए ज्यादा नहीं है। पत्रिका में नाटक, साहित्यिक समाचार एवं आवरण कथा के अंतर्गत सारगर्भित सामग्री पाठकों को दी जाती है, जो कि उच्चस्तरीय होती है। बेवसाइड पर नए व पुराने अंकों को पाठकों के लिए सुरक्षित रखा गया है, जिसे आसानी से देखा व पढ़ा जा सकता है। बेवसाइड पर पत्रिका को issuu.com के माध्यम से प्रकाशित किया जाता है।

www.hindisamay.com यह महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा महाराष्ट्र की बेवसाइड है, इस बेवसाइड पर प्रत्येक सप्ताह साहित्यप्रतियों के लिए कुछ-न-कुछ नया साहित्य जोड़ा जाता रहता है। इस लिंकपर पाठक विश्वविद्यालय व उसकी गतिविधियों की समस्त जानकारी को आसानी से देखा व पढ़ा जा सकता है। विश्वविद्यालय ने अपनी इस बेवसाइड पर उपन्यास, कविता, कहानी, व्यंग्य, नाटक, निबंध, आलोचना, विमर्श, बालसाहित्य, विविध, समग्र संचयन, अनुवाद, हमारे रचनाकार, हमारे लेखक, संग्रहालय आदि अनुक्रम के तहत हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर को सँजोकर रखा है, जो किसी भी पाठक के लिए बहुमूल्य सामग्री हो सकती है।

संग्रहालय के अंतर्गत विश्वविद्यालय में हिंदी के विभिन्न वैश्विक रचनाकारों की पांडुलिपियों, उनके पत्र, पत्रिकाओं में प्रकाशित उनकी रचनाओं आदि को रखा गया है, जो किसी भी पाठक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हैं। विश्वविद्यालय इन विभिन्न गतिविधियों के साथ-साथ तीन पत्रिकाओं का प्रकाशन भी करता है, जिसमें पहली है—‘बहुवचन’ अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिक हिंदी पत्रिका, इस पत्रिका के संपादक अशोक मिश्र हैं। पत्रिका में कहानियाँ, कविताएँ, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत एवं आलोचना आदि से संबंधित सामग्री प्रकाशित होती है। पत्रिका ने कई विशेषांकों का भी प्रकाशन किया है, जो पाठकों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय हुए हैं। पत्रिका ने वरिष्ठ आलोचक व चिंतक डॉ॰ रामविलास शर्मा पर आधारित विशेषांक, कहानी विशेषांक एवं हाल ही में (अक्टूबर-दिसंबर 2013 अंक) हिंदी फ़िल्मों के सौ साल के सफ़र पर विशेष विशेषांक प्रकाशित किया है, जो पाठकों के लिए बहुमूल्य साबित हो सकता है। दूसरी पत्रिका है—‘पुस्तक-वार्ता’ द्वैमासिक समीक्षा पत्रिका, इस पत्रिका के द्वारा विभिन्न पुस्तकों की समीक्षा के साथ-साथ आलोचना, कविता, कहानी, साक्षात्कार, कला संस्कृति, हस्तक्षेप, हिंदीविमर्श, संस्मरण आदि के तहत पठनीय सामग्री प्रकाशित की जाती है। इस पत्रिका को उच्चस्तरीय पत्रिका बनाने में इसके संपादक भारत भारद्वाज के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है। फिलहाल इस पत्रिका के संपादक राकेश श्रीमाल जी हैं। तीसरी पत्रिका है—‘हिंदी लैंग्वेज डिस्कॉर्स राइटिंग’ यह त्रैमासिक अँग्रेजी की पत्रिका है।

www.prenamagazine.com यह समकालीन लेखन के लिए साहित्यिक एवं सामयिकी की त्रैमासिक पत्रिका है, जो भोपाल से प्रकाशित होती है। इस पत्रिका के संपादक श्री अरुण तिवारी जी हैं। इस पत्रिका में सारगर्भित आलेख, कविताएँ, पुस्तक चर्चाएँ, लघुकथाएँ, कहानी आदि बहुत ही ज्ञानवर्धक जानकारी पाठकों को प्राप्त होती है। इस पत्रिका का प्रिंट रूप में त्रैमासिक शुल्क 20 रुपए और वार्षिक 100 रुपए है। इस पत्रिका के कुछ पुराने अंक पत्रिका की बेवसाइड पर डाले हुए हैं।

www.indiaculture.nic.in यह संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार की बेवसाइड है। इस पर मंत्रालय स्वयं की विभिन्न गतिविधियों की जानकारी के साथ-साथ ‘संस्कृति’ नामक सांस्कृतिक विचारों की प्रतिनिधि अर्द्धवार्षिक पत्रिका का भी प्रकाशन करता है। इस पत्रिका के संपादक भारतेशकुमार मिश्र हैं, जो संयुक्त निदेशक संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार के पद पर पदस्थ हैं। यह पत्रिका पहले त्रैमासिक प्रकाशित की जाती थीं और भारत सरकार द्वारा इसकी केवल 400 प्रतियाँ मुद्रित करवायी जाती थीं। बीच में यह पत्रिका कुछ समय के लिए बंद कर देनी पड़ी थी। इसके बाद अक्टूबर 2000 से इस पत्रिका का पुनः प्रकाशन किया गया। इस बार पत्रिका को

छःमाही कर दिया गया। अब इस पत्रिका की 3000 प्रतियाँ मुद्रित करवायी जाती है जो देश के लगभग समस्त विश्वविद्यालयों, पुस्तकालयों, लेखकों, देश-विदेश के सुविख्यात विद्वानों को निःशुल्क उपलब्ध करवायी जाती है। इस पत्रिका की विभिन्न विशेषताओं के साथ-साथ यह भी एक विशेषता है कि यह पत्रिका पूर्णतः निःशुल्क है। कोई भी पाठक इस पत्रिका को माँग सकता है। चूँकि इसकी सीमित प्रतियाँ ही मुद्रित की जाती हैं, इसलिए पाठकों की माँग पर सीमित संख्या में यह पाठकों तक पहुँच पाती है। परंतु मंत्रालय ने अपनी बेवसाइड पर इस पत्रिका के अब तक के प्रकाशित समस्त अंकों को पी०डी०एफ० फ़ाइल के रूप में डाला है, जिन्हें कोई भी पाठक उपर्युक्त बेवसाइड पर जाकर देख सकता है। इस पत्रिका के द्वारा देश के विभिन्न कालजयी व्यक्तियों पर विशेषांकों को प्रकाशित किया गया है। इनमें रवींद्रनाथ ठाकुर विशेषांक, जवाहरलाल नेहरू विशेषांक आदि काफी लोकप्रिय हुए थे।

www.hansmonthy.in यह हिंदी साहित्य के महान कथाकार मुंशी प्रेमचंद द्वारा स्थापित अपने समय की महत्वपूर्ण पत्रिका रही है। मुंशी प्रेमचंद की मृत्यु के बाद इस पत्रिका का प्रकाशन प्रेमचंद के पुत्र अमृतराय ने किया था। इधर यह पत्रिका कई वर्षों से बंद थी। उस समय हिंदी के प्रसिद्ध कथाकार श्री राजेंद्र यादव ने प्रेमचंद के जन्मदिवस यानी 31 जुलाई 1986 से इस प्रसिद्ध पत्रिका का प्रकाशन अक्षर प्रकाशन नई दिल्ली से शुरू किया। पत्रिका में साहित्य की समस्त विधाओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। यह पत्रिका अपने स्वतंत्र विचारों के साथ-साथ श्री राजेंद्र यादव के संपादकीय के लिए भी जानी जाती रही है। इस पत्रिका ने नए रचनाकारों को प्रमुखता से मौका दिया। परिणामतः देश के कोने-कोने में फैले अनगिनत रचनाकारों की रचनाओं से पाठकों का परिचय हुआ। यादवजी के देहावसान के कारण पत्रिका के कलेवर पर प्रभाव पड़ना लाजिमी है, फिर भी उम्मीद की जानी चाहिए कि पाठकों को पूर्व की तरह ही पत्रिका में विचारोत्तेजक सामग्री मिलती रहेगी।

पत्रिका में राजनीति, कला, संगीत, टी०वी० चैनल, साक्षात्कार, नाटक एवं कहानियाँ आदि से संबंधित सामग्री को प्रमुखता के साथ प्रस्तुत किया जाता है। प्रिंट रूप में इस मासिक पत्रिका का मूल्य 30 रुपए मासिक व 350 रुपए वार्षिक है। बेवसाइड पर पिछले कई सालों से कार्य नहीं किया जा रहा है, इस कारण नए अंकों की जानकारी उपलब्ध नहीं है। बेवसाइड समन्वयक से उम्मीद करनी चाहिए कि वे इस साहित्य की महत्वपूर्ण पत्रिका की जानकारी लगातार अपनी बेवसाइड पर अपडेट करते रहें ताकि पाठकों को समय पर जानकारी प्राप्त हो सके।

www.rsaudr.org यह राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर की मासिक पत्रिका है। इस पत्रिका के प्रबंध संपादक डॉ० प्रमोद भट्ट हैं। पत्रिका में विभिन्न विषयों पर आधारित आलेखों के साथ-साथ साक्षात्कार, परिचर्चा, कहानियाँ एवं अनुवाद से संबंधित सामग्री को प्रस्तुत किया जाता है। प्रिंट रूप में पत्रिका का मासिक शुल्क 10 एवं वार्षिक 120 रुपये है। पत्रिका की बेवसाइड पर नए अंकों के साथ-साथ पुराने अंकों को भी रखा गया है।

www.kathabimb.com यह पत्रिका मुंबई से प्रकाशित होती है। इसके संपादक डा० माधव सक्सेना 'अरविंद' हैं। बेवसाइड पर पत्रिका को issuu.com के माध्यम से प्रकाशित किया जाता है। बेवसाइड पर पत्रिका के नए व पुराने अंकों को संजोकर रखा गया है। इस पत्रिका का प्रिंट रूप में मासिक शुल्क 15 व वार्षिक 200 रुपए है।

www.parikathahindi.com यह समय और समाज की परिक्रमा है। पत्रिका द्वैमासिक रूप में नई दिल्ली से प्रकाशित होती है। पत्रिका के सलाहकार संपादक वरिष्ठ आलोचक व चिंतक डॉ॰ नामवर सिंह जी हैं। वर्तमान में संपादक पद का भार श्री शंकर सँभाल रहे हैं। अभी पत्रिका के युवा जीवन पर आधारित अंक प्रकाशित किए जा रहे हैं, जो युवा पाठकों के बीच बहुत लोकप्रिय हो रहे हैं। पत्रिका अपनी स्तरीय सामग्री के कारण पाठकों के बीच अति लोकप्रिय है। बेवसाइड पर पत्रिका के नये पुराने अंकों को सँभालकर रखा गया है। इस द्वैमासिक पत्रिका के एक अंक की कीमत 40 रु॰ व बारह अंकीय सदस्यता की कीमत 300 रु॰ है।

www.bharatiyabhasaparishad.com साहित्य और संस्कृति की यह मासिक पत्रिका कोलकाता से प्रकाशित होती है। इसके संपादक एकांत श्रीवास्तव व कुसुम खेमानी हैं। पत्रिका में साहित्य की विभिन्न विधाओं कहानी, कविता, गीत, गज़ल आदि के साथ कथासाहित्य के से संबंधित विचारोत्तेजक सामग्री प्रस्तुत की जाती है। इस पत्रिका का प्रिंट रूप में मासिक शुल्क 20 व वार्षिक 200 रुपये है। पत्रिका की बेवसाइड पर वर्ष 2013 के समस्त अंक पी॰डी॰एफ॰ फ़ाइल के रूप में पाठकों को उपलब्ध कराए गए हैं।

www.vartmansahitya.com साहित्य, कला और सोच की यह मासिक पत्रिका अलीगढ़ से प्रकाशित होती है। इस मासिक पत्रिका के संस्थापक संपादक श्री विभूतिनारायण राय व संपादक नमिता सिंह हैं। पत्रिका में सभी विषयों पर आधारित सामग्री प्रकाशित होती है, जिसमें कहानियाँ, लघुकथाएँ, पुस्तक समीक्षाएँ, कविताएँ, गज़लें, सांस्कृतिक समाचारों आदि के साथ विभिन्न विषयों पर देश के लोकप्रिय रचनाकारों के विचार प्रकाशित किए जाते हैं। इस पत्रिका का प्रिंट रूप में मासिक शुल्क 20 व वार्षिक 230 रुपए है। पत्रिका की बेवसाइड पर वर्ष 2013 के समस्त अंक पी॰डी॰एफ॰ फ़ाइल के रूप में पाठकों को उपलब्ध कराए गए हैं।

www.veenapatrika.com राष्ट्रभाषा हिंदी एवं साहित्य के मूल्यों को समाज तक पहुँचाने के उद्देश्य से वर्ष 1927 में पत्रिका 'वीणा' का प्रकाशन प्रारंभ किया था। तबसे यह पत्रिका निरंतर प्रकाशित हो रही है। इस पत्रिका को आरंभ से देश के कालजयी रचनाकारों की लेखनी का सहयोग प्राप्त होता रहा है। पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी भी युवावस्था में 'वीणा' के लेखक रहे हैं। 'वीणा' के शोधपरक लेख छात्रों के लिए काफ़ी उपयोगी साबित होते हैं। अभी तक 'वीणा' का संपादन सोलह महान विभूतियों द्वारा किया गया है। वर्तमान में इसके संपादक श्री डॉ॰ विनायक पांडेय हैं। इस पत्रिका के अब तक विभिन्न अवसरों पर 30 विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं। वर्तमान में यह पत्रिका मध्यप्रदेश के इंदौर जिले से प्रकाशित हो रही है। इस मासिक पत्रिका में साहित्य की अमूल्य धरोहरों को समाहित किया जाता है। इस पत्रिका का प्रिंट रूप में मासिक शुल्क 20 व वार्षिक 200 रुपए है। पत्रिका की बेवसाइड पर नए व पुराने अंकों को पी॰डी॰एफ॰ फ़ाइल के रूप में पाठकों के लिए रखा गया है।

www.lamahihindipatrika.blogspot.in इस ब्लॉगपोस्ट पर हिंदी साहित्य की एक और शुद्ध त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका 'लमही' का प्रकाशन किया जाता है। यह पत्रिका गोमतीनगर लखनऊ से प्रकाशित होती है। इसके संपादक ऋत्विक् रॉय हैं। पत्रिका में आलोचनात्मक आलेखों को प्रमुखता के साथ प्रकाशित किया जाता है। इस ब्लॉकपोस्ट पर पत्रिका के लगभग समस्त अंकों को पी॰डी॰एफ॰ फ़ाइल के रूप में पाठकों के लिए रखा गया है। पत्रिका के शिवमूर्ति विशेषांक

व कहानी विशेषांक पाठकों द्वारा विशेष रूप से सराहे गए। इस पत्रिका का प्रिंट रूप में मासिक शुल्क सामान्य अंक के लिए 15 व आजीवन सदस्यता 1000 रुपए रखी गई है। पत्रिका पिछले छः वर्ष से निरंतर प्रकाशित हो रही है।

www.pragatisheelvasudha.blogpost.in यह पत्रिका भी ब्लॉगपोस्ट पर प्रकाशित की जाती है। पत्रिका मध्यप्रदेश भोपाल से प्रकाशित होती है। इस पत्रिका के संस्थापक संपादक श्री हरिशंकर परिसाई जी थे। वर्तमान में इसके संपादक स्वयंप्रकाश व राजेंद्र शर्मा हैं, जो अपने बेहतरीन संपादन से इस पत्रिका का कलेवर खूबसूरत बनाए हुए हैं। पत्रिका में आलोचनात्मक आलेखों के साथ-साथ कविताएँ, कहानी, पुस्तक-चर्चाएँ, सामयिकी आदि के तहत बेहतरीन जानकारी पाठकों को उपलब्ध करवायी जाती है। इस ब्लॉगपोस्ट पर पत्रिका के नए पुराने अंकों को पी०डी०एफ० फ़ाइल के रूप में पाठकों के लिए रखा गया है। इस पत्रिका का प्रिंट रूप में मासिक शुल्क 50 व वार्षिक 250 रुपए है।

www.vibhom.com इस बहुआयामी पत्रिका की संपादिका डॉ० सुधा ओम ढींगरा हैं, जो खुद एक पत्रकार, कहानीकार, स्टेज कलाकार, उपन्यासकार व टी०वी० आदि के क्षेत्र में विशेष रूप से सक्रिय रही हैं और आज प्रवासी साहित्यकार के रूप में हिंदी प्रचारिणी सभा कनाडा से प्रकाशित अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका 'हिंदी चेतना' के रूप में हिंदी की बहुमूल्य सेवा कर रही हैं। पत्रिका में भारतीय प्रवासी साहित्यकारों की रचनाओं के साथ-साथ भारतीय रचनाकारों की रचनाओं को भी प्रमुख रूप से पत्रिका में स्थान मिलता है। पत्रिका के माध्यम से पाठकों को साहित्य की समस्त गतिविधियों से रूबरू कराया जाता है, जो सुधाजी की उत्कृष्ट संपादकीय की एक मिसाल है। पत्रिका की बेवसाइड पर जुलाई 2009 से अब तक के सभी अंक पी०डी०एफ० फ़ाइल के रूप में पाठकों को मिलेंगे। इस पत्रिका का मूल्य 5 डॉलर रखा गया है। उल्लेखनीय है कि पत्रिका के परामर्श-मंडल में भारत के विख्यात आलोचक, प्रेमचंद साहित्य विशेषज्ञ डॉ० कमलकिशोर गोयनका जी का पत्रिका को उत्कृष्ट बनाने का महत्त्वपूर्ण योगदान है व पद्मश्री विजय चोपड़ा भारत, पूर्णिमा बर्मन शारजाह, अफ़रोज तज अमेरिका, निर्मला आदेश केनेडा, विजय माथुर केनेडा आदि प्रवासी रचनाकारों का योगदान भी पत्रिका को नई ऊँचाइयों पर पहुँचाने में उल्लेखनीय है।

www.literature.awgp.orgèmagzine यह गायत्री परिवार की एक धार्मिक मासिक पत्रिका है, जो पिछले 77 वर्षों से पाठकों का भरपूर ज्ञानार्जन कर रही है। यह एक संपूर्ण धार्मिक मासिक पत्रिका है, जिसमें धर्म, अध्यात्म, योग आदि से संबंधित सामग्री को प्रस्तुत किया जाता है जो अपनी उच्चस्तरीय सामग्री के कारण सभी पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है। पत्रिका का संपादन वर्तमान में डॉ० प्रणव पड्ड्या द्वारा किया जा रहा है। पत्रिका की बेवसाइड पर दस-दस वर्ष के कॉलमों के तहत पत्रिका को सुरक्षित रखा गया है। यह कॉलम इस प्रकार है-वर्ष 1940-50, 1951-60, 1961-70, 1971-80, 1981-1990, 1991-2000, 2001-2010 व 2011-2013 आदि जिन्हें पाठकों द्वारा अवलोकन किया जा सकता है। प्रिंट रूप में इस पत्रिका का मासिक शुल्क 10 रुपए एवं वार्षिक मूल्य 120 रुपए है, जो धार्मिक पाठकों के लिए उचित है। पत्रिका पठनीय व सुरुचिपूर्ण है।

www.samvadihindipatrika.blogpost.in इस त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन संवदिया

प्रकाशन, अररिया, बिहार द्वारा कोसी अंचल के वरिष्ठ कवि कथाकार श्री भोला पंडित 'प्रणयी' के प्रधान संपादन में अक्टूबर 2004 से नियमित रूप से हो रहा है। पत्रिका में गज़ल, कविताएँ, आलेख, पुस्तक समीक्षाएँ, कहानी और संस्मरण आदि के तहत बहुत ही पठनीय सामग्री पाठकों को दी जाती है। पत्रिका की बेवसाइड पर पिछले सभी अंकों को पाठकों के लिए सुरक्षित रखा गया है। प्रिंट रूप में इस पत्रिका का त्रैमासिक मूल्य 25 रु० व वार्षिक 100 रु० है।

www.pakhi.in इस मासिक पत्रिका का प्रकाशन गौतमबुद्ध नगर उत्तरप्रदेश से किया जा रहा है एवं वर्तमान में पत्रिका के संपादक श्री प्रेम भारद्वाज हैं। पत्रिका में कविताएँ, शोध आलेख, लघुकथाएँ, रपट, परिचर्चा, संस्मरण, पुस्तक समीक्षाएँ आदि बहुत ही ज्ञानवर्धक सामग्री पाठकों को दी जाती है। यह पत्रिका सितंबर 2008 से नियमित प्रकाशित हो रही है। अभी तक पत्रिका वरिष्ठ कथाकार राजेंद्र यादव, डॉ० नामवरसिंह, ज्ञानरंजन और संजीव पर विशेषांक प्रकाशित कर चुकी है। इन विशेषांकों को साहित्य-जगत् की अपार सराहना मिली। पत्रिका की बेवसाइड पर सितंबर 2008 से जनवरी 2013 तक के सभी अंकों को पाठकों के लिए सुरक्षित रखा गया है। प्रिंट रूप में इस पत्रिका का मासिक मूल्य 30 रु० व वार्षिक 350 रु० है।

www.pakhimagazine.blogspot.in इस ब्लॉगपोस्ट पर पाखी के जनवरी 2013 के बाद के अंकों के केवल आवरण चित्र एवं अनुक्रम के रूप में इस ब्लॉगपोस्ट पर रखे गए हैं। पत्रिका में संकलित विशेष आलेखों को पाठकों के लिए उपलब्ध करवाया गया है।

केवल प्रिंट रूप में प्रकाशित पत्रिकाओं का वर्णन इस प्रकार है—

केवल प्रिंट रूप में प्रकाशित पत्रिकाओं का वर्णन इस प्रकार है—

1. **समीचीन** : यह अर्द्धवार्षिक पत्रिका है, जो बंबई से प्रकाशित होती है। इस पत्रिका के संपादक डॉ० देवेश ठाकुर हैं। पत्रिका पूर्णतः निःशुल्क है। दूरभाष : 022-25161446

2. **सर्वनाम** : यह त्रैमासिक पत्रिका है, जो बागबाहरा छत्तीसगढ़ से प्रकाशित होती है। इस पत्रिका के संस्थापक संपादक विष्णुचंद्र शर्मा हैं। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 25 रु० एवं वार्षिक 100 रु० है। दूरभाष : 07707-242578

3. **कृतिओर** : यह त्रैमासिक पत्रिका है, जो जोधपुर राजस्थान से प्रकाशित होती है। इस पत्रिका के संपादक डॉ० रमाकांत शर्मा हैं। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 20 रु० एवं वार्षिक 70 रु० है। दूरभाष : 09414410367

4. **शेष** : यह त्रैमासिक पत्रिका है, जो जोधपुर राजस्थान से प्रकाशित होती है। इस पत्रिका के संपादक हसन जमाल हैं। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 20 रु० एवं वार्षिक 100 रु० है। दूरभाष : 09829314018

5. **प्रसंग** : यह त्रैमासिक पत्रिका है, जो हजारीबाग झारखंड से प्रकाशित होती है। इस पत्रिका के संपादक शंभू बादल हैं। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 50 रु० एवं वार्षिक 200 रु० है। दूरभाष : 09931182570

6. **साहित्य प्रोत्साहन** : यह मासिक पत्रिका है, जो लखनऊ से प्रकाशित होती है। इस पत्रिका के संपादक राजेंद्रकृष्ण श्रीवास्तव हैं। यह हिंदीसेवी और बिना मूल्य की पूर्णतः निःशुल्क साहित्यिक पत्रिका है। दूरभाष : 8005032532

7. **समाज प्रवाह** : यह मासिक पत्रिका है, जो मुंबई से प्रकाशित होती है। पत्रिका के

संपादक मधुश्री काबरा हैं। पत्रिका का मासिक शुल्क 10 रु० एवं वार्षिक 100 रु० है। दूरभाष : 022-25602655

8. **गज़ल गरिमा** : यह हिंदी गज़ल की त्रैमासिक पत्रिका है, जो जोधपुर राजस्थान से प्रकाशित होती है। इस पत्रिका के संपादक भानुमित्र हैं। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 30 रु० एवं वार्षिक 120 रु० है। दूरभाष : 09413521354

9. **आजकल** : यह प्रकाशन विभाग नई दिल्ली की मासिक पत्रिका है। पत्रिका का मासिक शुल्क 10 रु० एवं वार्षिक 100 रु० है। दूरभाष : 011-24362915

10. **व्यंग्य यात्रा** : यह व्यंग्य की त्रैमासिक पत्रिका है, जो नई दिल्ली से प्रकाशित होती है। इस पत्रिका के संपादक प्रेम जनमेजय हैं। पत्रिका प्रेम जनमेजय के उत्कृष्ट संपादकीय के कारण व्यंग्य में अपना उचित स्थान रखती है। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 20 रु० एवं वार्षिक 100 रु० है। दूरभाष : 011-25264227

11. **प्रेरणा अंशु** : यह मासिक पत्रिका है, जो उत्तराखंड से प्रकाशित होती है। पत्रिका के संपादक प्रतापसिंह हैं। पत्रिका का मासिक शुल्क 15 रु० एवं वार्षिक 150 रु० है। दूरभाष : 09719957008

12. **सनद** : यह त्रैमासिक पत्रिका है, जो दिल्ली से प्रकाशित होती है। पत्रिका के संपादक मंजू मल्लिक मनु हैं। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 25 रु० एवं वार्षिक 125 रु० है। दूरभाष : 09868018472

13. **शिवम्** : यह मासिक पत्रिका है। पत्रिका का प्रकाशन कोलार रोड भोपाल से होता है। पत्रिका के संपादक निरूपम तिवारी हैं। पत्रिका का मासिक शुल्क 15 रु० एवं वार्षिक 180 रु० है। दूरभाष : 09425649435

14. **अक्षरशिल्पी** त्रैमासिक पत्रिका : एम०पी० नगर भोपाल से प्रकाशित इस त्रैमासिक पत्रिका के संपादक डॉ० विजय शिरडोणकर हैं। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 20 रु० एवं वार्षिक 75 रु० है। दूरभाष : 09826014024

15. **अक्षरा** : यह साहित्य की द्वैमासिक पत्रिका है, जो हिंदी भवन भोपाल से प्रकाशित होती है, पत्रिका के प्रधान संपादक डॉ० कैलाशचंद्र पंत हैं एवं पत्रिका की संपादिका डॉ० सुनीता खत्री हैं। पत्रिका का द्वैमासिक शुल्क 20 रु० एवं वार्षिक 120 रु० है। दूरभाष : 0755-2660909

16. **संस्कार सुगंध** : यह मासिक पत्रिका है, जिसका प्रकाशन खटोदरा कॉलोनी सूरत से होता है। पत्रिका की संपादिका प्रभा जैन हैं। पत्रिका महिलाओं के मूल्यों को उजागर करती एक महिला प्रधान पत्रिका है। पत्रिका का मासिक शुल्क 30 रु० एवं वार्षिक 300 रु० है। दूरभाष: 09723544153

17. **समय के साखी** : यह भी एक मासिक पत्रिका है जिसकी संपादिका आरती जी है। पत्रिका का प्रकाशन भोपाल से किया जाता है। पत्रिका का मासिक शुल्क 20 रु० एवं वार्षिक 250 रु० है। दूरभाष : 09713035330

18. **अभिनव इमरोज** : यह मासिक पत्रिका है। देवेन्द्रकुमार बहल के संपादन में पत्रिका का प्रकाशन नई दिल्ली से किया जा रहा है। ग्लेज्ड पेपर पर प्रकाशित होने के कारण पत्रिका की खूबसूरती देखते ही बनती है। पूर्णतः साहित्य की शुद्ध पत्रिका है। वर्तमान में पत्रिका का

मासिक शुल्क 50 रु० एवं वार्षिक 500 रु० है। दूरभाष : 09910497972

19. **समरलोक** : यह साहित्य की त्रैमासिक पत्रिका है, पत्रिका की संपादिका वरिष्ठ रचनाकार डॉ० मेहरून्सिा परवेज हैं। पत्रिका का प्रकाशन शाहपुरा भोपाल से होता है। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 20 रु० एवं वार्षिक 100 रु० है। दूरभाष : 0755-2430210

20. **समीक्षा** त्रैमासिक पत्रिका : इस त्रैमासिक पत्रिका के संपादक डॉ० सत्यकाम हैं वरिष्ठ कथाकार डॉ० गोपालराय के पुत्र हैं। पत्रिका वर्तमान में प्रकाशित हो रही पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित करने के लिए विश्वविख्यात है। पत्रिका में पुस्तकों की समीक्षा देश के ख्यातिप्रद रचनाकारों द्वारा कराई जाती है। पत्रिका का प्रकाशन नई दिल्ली से किया जाता है। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 30 रु० एवं वार्षिक 200 रु० है। दूरभाष : 011-29533534

21. **सद्भावना दर्पण** : यह मासिक पत्रिका है जो देश की रचनाओं के साथ-साथ प्रवासी साहित्यकारों की रचनाओं को प्रमुखता के साथ प्रकाशित करती है। पत्रिका के संपादक रचनाकार गिरीश पंकज हैं। प्रकाशन रायपुर छत्तीसगढ़ से होता है। पत्रिका का मासिक शुल्क 20 रु० एवं वार्षिक 200 रु० है। दूरभाष : 09425212720

22. **साहित्य अमृत** : यह मासिक पत्रिका है, जो नई दिल्ली से प्रकाशित होती है, पत्रिका के संपादक त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी हैं। पत्रिका का मासिक शुल्क 20 रु० एवं वार्षिक 200 रु० है। दूरभाष : 011-23289777

23. **मीडिया विमर्श** : यह त्रैमासिक पत्रिका है, जिसमें मीडिया, फिल्मों आदि से संबंधित सामग्री को प्रमुख रूप से प्रकाशित किया जाता है, प्रकाशन भोपाल से किया जाता है। पत्रिका के संपादक डॉ० श्रीकांत सिंह हैं। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 50 रु० एवं वार्षिक 200 रु० है। दूरभाष : 0989359888

24. **हमारी धरती** : यह द्वैमासिक पत्रिका है। पत्रिका में पर्यावरण से संबंधित सामग्री को प्रकाशित किया जाता है पत्रिका के संपादक सुबोधनंदन शर्मा हैं। पत्रिका का प्रकाशन अलीगढ़ से किया जाता है। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 25 रु० एवं वार्षिक 150 रु० है। दूरभाष : 09412819912

25. **बुलंदप्रभा** : यह त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका बुलंदशहर उ०प्र० से प्रकाशित होती है, संपादक डॉ० अनूपसिंह हैं। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 25 रु० एवं वार्षिक 100 रु० है। दूरभाष : 09259269007

26. **गोलकुंडा दर्पण** : यह मासिक पत्रिका है। पत्रिका का संपादन गोविंद अक्षय द्वारा किया जाता है तथा पत्रिका हैदराबाद से प्रकाशित होती है। पत्रिका का मासिक शुल्क 15 रु० एवं वार्षिक 180 रु० है। दूरभाष : 09246521546

27. **व्यंग्य तरंग** : यह व्यंग्य की त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका जौनपुर उ०प्र० से प्रकाशित होती है एवं संपादक श्री कृष्णकांत एकलव्य हैं। पत्रिका में व्यंग्य-विधा से संबंधित सामग्री को प्रचुरता के साथ प्रकाशित किया जाता है। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 15 रु० एवं वार्षिक 150 रु० है। दूरभाष : 09621728383

28. **कल्याण** : यह धार्मिक पाठकों के लिए एक वरदान है कि देश से इतनी अच्छी धार्मिक मासिक पत्रिका निकलती है। पत्रिका में धर्म, अध्यात्म, योग आदि से संबंधित सामग्री

को प्रकाशित किया जाता है। पत्रिका कई वर्षों से धार्मिक पाठकों का अनवरत रूप से ज्ञानार्जन कर रही है, जिसके लिए पत्रिका के संपादक राधेश्याम खेमका बधाई के पात्र हैं। पत्रिका का प्रकाशन गीता प्रेस गोरखपुर उ०प्र० से किया जाता है। पत्रिका का मासिक शुल्क 10 रु० एवं वार्षिक 180 रु० है। दूरभाष : 0551-2334721

29. **शोधदिशा** : यह साहित्य की त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका में शोध आलेख, कविता, कहानी आदि से संबंधित सामग्री को प्रकाशित किया जाता है। पत्रिका के संपादक वरिष्ठ कथाकार डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल हैं, जिनकी साहित्य की विभिन्न विधाओं पर कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। पत्रिका का प्रकाशन बिजनौर उ०प्र० से किया जाता है। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 200 रु० एवं वार्षिक 400 रु० है। दूरभाष : 07838090732

30. **सुखनवर** : यह उर्दू-हिंदी की द्वैमासिक पत्रिका है। पत्रिका के संपादक अनवारे इस्लाम हैं। पत्रिका का प्रकाशन अशोका गार्डन भोपाल से किया जाता है। पत्रिका का द्वैमासिक शुल्क 25 रु० एवं वार्षिक 170 रु० है। दूरभाष : 09893663536

31. **संचेतना** : यह मासिक पत्रिका है। पत्रिका के संपादक डॉ० महीप सिंह हैं। पत्रिका का प्रकाशन नई दिल्ली से किया जाता है। पत्रिका का मासिक शुल्क 20 रु० एवं वार्षिक 200 रु० है। दूरभाष : 011-25222888

32. **अभिनव बालमन** : यह बालसाहित्य की त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका में बालसाहित्य पर केंद्रित सामग्री को प्रकाशित किया जाता है। पत्रिका के संपादक निश्चल हैं। पत्रिका का प्रकाशन अलीगढ़ से किया जाता है। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 15 रु० एवं वार्षिक 180 रु० है। दूरभाष : 09719007153

33. **संचारिका** : यह त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका के संपादक डॉ० नारायण वाकले हैं। पत्रिका का प्रकाशन औरंगाबाद से किया जाता है। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 30 रु० एवं वार्षिक 100 रु० है। दूरभाष : 07588811476

34. **दस्तावेज़** : यह त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका के संपादक डॉ० विश्वनाथ तिवारी हैं, जो खुद भी एक वरिष्ठ साहित्यकार हैं। पत्रिका में साहित्य की एतिहासिक सामग्री का प्रकाशन तिवारी जी की ही देन है। पत्रिका का प्रकाशन बेतियाहाता गोरखपुर उ०प्र० से किया जाता है। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 20 रु० एवं वार्षिक 100 रु० है। दूरभाष : 09454839732

35. **प्राची** : यह मासिक पत्रिका है। पत्रिका के संपादक राकेश भ्रमर हैं। पत्रिका का प्रकाशन जबलपुर से किया जाता है। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 20 रु० एवं वार्षिक 220 रु० है। दूरभाष : 09425323193

36. **बावूजी का भारतमित्र** : यह एक अर्द्धवार्षिक पत्रिका है। पत्रिका के संपादक रघुविंद्र यादव हैं, पत्रिका का प्रकाशन हरियाणा से किया जाता है एवं पत्रिका का अर्द्धवार्षिक शुल्क 25 रु० एवं पंचवार्षिक 250 रु० है। दूरभाष : 09416320999

37. **वाङ्मय** : यह आलोचना की त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका के संपादक डॉ० एम० फिरोज अहमद हैं। पत्रिका का प्रकाशन अलीगढ़ से किया जाता है। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 40 रु० एवं वार्षिक 200 रु० है। दूरभाष : 09044918670

38. **सृजक** : यह मासिक पत्रिका है। पत्रिका के प्रधान संपादक श्री सत्यम् शिवम् हैं।

पत्रिका का प्रकाशन बिहार से किया जाता है। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 40 रु० एवं वार्षिक 200 रु० है। दूरभाष : 09031197811

39. **शैल-सूत्र** : गंगा-जमुनी साहित्य की त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका के प्रधान संपादक आशा शैली व संपादकद्वय श्री कुहेली भट्टाचार्य एवं आनंदगोपाल सिंह बिष्ट हैं। पत्रिका का प्रकाशन नैनीताल उत्तराखंड से किया जाता है। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 25 रु० एवं वार्षिक 100 रु० है। दूरभाष : 09456717150

40. **सरस्वती सुमन** : यह साहित्य एवं संस्कृति की त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका के प्रधान संपादक डॉ० आनंदसुमन सिंह हैं। पत्रिका का प्रकाशन देहरादून से किया जाता है। पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 25 रु० एवं वार्षिक 100 रु० है। दूरभाष : 0135-2740060

41. **कथा समय** : यह साहित्य की मासिक पत्रिका है। पत्रिका के प्रधान संपादक डॉ० कृष्णकुमार खंडेलवाल हैं। पत्रिका का प्रकाशन पंचकूला से किया जाता है। पत्रिका का मासिक शुल्क 15 रु० एवं वार्षिक 150 रु० है। दूरभाष : 0172-2585521, 2566521

42. **पूर्वग्रह** : यह साहित्य की आलोचनात्मक त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका के प्रधान संपादक रामेश्वर मिश्र 'पंकज' हैं। पत्रिका का प्रकाशन श्यामला हिल्स भोपाल से किया जाता है। पत्रिका में आलोचनात्मक लेखों को वरीयता दी जाती है एवं पत्रिका का त्रैमासिक शुल्क 25 रु० एवं वार्षिक 100 रु० है। दूरभाष : 0755-2660239

निष्कर्षतः उपर्युक्त अवलोकन के माध्यम से हम यह पूर्णरूपेण अनुमान लगा सकते हैं कि आधुनिकता की दौड़ में देश व विदेशों में बैठे लाखों-करोड़ों पाठकों तक पत्रिका की पहुँच हो, इसके लिए देश की छोटी-से-छोटी व बड़ी-से-बड़ी पत्रिका का प्रकाशन बेवसाइड पर किया जा रहा है। इस प्रक्रिया के कारण देश के ही नहीं बल्कि विदेशों के पाठकों को भी पत्रिका पढ़ने को मिल जाती है। पत्रिका अत्यधिक पाठकों तक पहुँचने के कारण लोकप्रिय भी होती है। उपर्युक्त आलेख में केवल हिंदी में ही प्रकाशित प्रमुख-प्रमुख पत्रिकाओं का विवरण दिया गया है। चूँकि आज देश में हजारों की संख्या में छोटी-बड़ी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं, जिनका संपूर्ण विवरण स्थानाभाव के कारण संभव नहीं था।

आवास क्रमांक एच-3,
राजीव गांधी प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
एयरपोर्ट, वायपास रोड, गांधीनगर, भोपाल-462033 (म०प्र०)
मो० 9826583363; E-Mail: Krishanveer74@gmail.com

सात सुरों के पश्चात् भविष्य का आठवाँ राग

डॉ. स्मृति शुक्ल

हमें अपनी समृद्ध विरासत से सात सुर प्राप्त हुए हैं। सात सुरों पर हमारी राग-रागिनियाँ आधारित हैं। अपने कविता-संग्रह के माध्यम से आठवाँ राग हमें दे रहे हैं राजेन्द्र मिश्र जी। राजेन्द्र मिश्र हिंदी साहित्य जगत में प्रतिष्ठित नाम है। कविता, निबंध, नाटक, आलोचना आदि सभी विधाओं पर आपने सार्थक लेखन किया है। राजेन्द्र मिश्र ने 'आज कविता' का प्रवर्तन किया है और अब आठवें-राग के माध्यम से 'भविष्य कविता' का प्रवर्तन कर चुके हैं।

यूँ तो भविष्य कविता पर इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही विमर्श चल रहा है। पश्चिमी विचारकों द्वारा कविता के अंत की घोषणाएँ की जाती रहीं हैं, किंतु कविता इतनी सशक्त विधा है कि उसका अंत नहीं हो सकता। हाँ, कविता का रूपगठन परिवर्तित हो सकता है, कविता निचाट गद्य के रूप में लिखी जा सकती है, उसकी विषयवस्तु और संरचना में परिवर्तन हो सकता है। कवि राजेन्द्र मिश्र की कृति 'आठवाँ राग' (भविष्य कविता) वैश्वीकरण, सांस्कृतिक आक्रमण उत्तर आधुनिक जीवन के संवेदनहीन वातावरण, इंसानों के मशीन में तब्दील हो जाने से, बाजार की चमक में गुम होती इंसानियत और प्रचार माध्यमों द्वारा स्त्री को वस्तु में परिवर्तित कर देने के दर्द से उपजी है। कवि के मन में गहरी उदासी और तड़प भरी बेचैनी है। यह उदासी और बेचैनी इसलिए है, क्योंकि राजेन्द्र मिश्र जागरूक कवि हैं, समाज के प्रति उनके हृदय में सच्ची प्रतिबद्धता है। वे समाज के सजग पहरुये हैं। कबीर ने पाँच सौ वर्ष पूर्व कहा था—

सुखिया सब संसार है, खावे अरु सोवे।

दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रोवे।

ठीक कबीर की भाँति राजेन्द्र मिश्र भी जाग्रत हैं और वर्तमान परिस्थितियों से उदास हैं, क्योंकि वे परिस्थितिजन्य अँधेरों से लड़ रहे हैं। संसद अर्थात् लोकतंत्र के मंदिर में होने वाले स्वार्थपूर्ण झगड़ों से, बच्चियों से होने वाले दुव्यर्वहार से, बार में डांस करती लड़की पर गोली चलने से और अपराधी के छूट जाने से, तेजाब फेंकने की घटनाओं से, अमीर-ग़रीब के बीच भेदभाव से, धर्म के बाजारीकरण से, संवेदनाओं के क्षरण से, आदमी के मशीन में तब्दील होते जाने से राजेन्द्र मिश्र जी उदासी और अवसाद से घिर गए हैं। वे लिखते हैं—'मैं उदास हूँ कि मैं बेजान होकर जी रहा हूँ। मेरे पास टेलीफोन है। मेरे पास मोबाइल है। मेरे पास कम्प्यूटर है। मेरे पास कार है। पर मैं नहीं हूँ। मैं मशीन होता जा रहा हूँ।'

कवि का दूसरा राग है 'मैं अकेला हूँ'। यह सच है कि तमाम चमक-दमक और भीड़ के बीच आज का व्यक्ति अकेला है। समूह में होकर भी अकेला है। वर्तमान समय में व्यक्ति अकेलेपन की त्रासदी झेल रहा है। तीसरा राग विरूपता का राग है, आज जब सभी जगह रूप

को महत्त्व दिया जा रहा है। टेलीविजन के झिलमिलाते पर्दों पर रूप की ही चकाचौंध है, लेकिन कवि को रूप की इस नकली चमक-दमक के पीछे की विरूपता स्पष्ट दिखाई दे रही है। नदियों का सूखना, समुद्र का रेत बनना, ज़िंदगी में निराशा की धुंध, इस धुंध के दूसरी ओर आशा का सूरज निकलने के प्रयास में है। कवि को लगता है कि सुंदरता एक मुखौटा है। असली चेहरा तो विरूप ही है। राजेन्द्र मिश्र ने आज के कृत्रिम सौंदर्य को ही सब-कुछ मानने वाले लोगों के मन्तव्य को कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है—‘विरूप है यह दुनिया यह कहने पर ऐतराज होता है, लोग कहते हैं बाज़ार में सब-कुछ सुंदर है। तुम विरूप की बात क्यों करते हो? ढेर सारे सौंदर्य-प्रसाधन जिनका विज्ञापन होता है, खरीदकर तुम अपना मेकअप कर सकते हो’² कवि का कहना है कि विरूप का क़द बहुत बड़ा है। वह सबके सामने अजेय खड़ा है, उसे किसी का डर नहीं है। वह खुलेआम घूमता है। यहाँ कवि ने उसकी बात की है, जो सच में ग़लत है, इसलिए विरूप है। लेकिन ग़रीब होना भी विरूप है, भूख में जीना, पुलिस से डंडे खाना, अभावों में खुद से ही झगड़ना, अपने बच्चों को पीटना, अपनी भूख मिटाने के लिए अपनी ही बीवी को बेच देना यह समाज के उस बड़े वर्ग की सच्चाई है, जो दिन-रात अभावों में जीता है। ग़रीबी की इस विरूपता को मुक्तिबोध ने भी चाँद का मुँह टेढ़ा है कविता में व्यक्त किया है। जहाँ उन्हें ग़रीबी की झोपड़ियों के ऊपर पड़ती चंद्रमा की चाँदनी किसी भूतनी की सँवलाई चूनर-सी जान पड़ती है और चाँद कंजी आँखोंवाला, गंजा और टेढ़े मुखवाला शोषक लगता है। राजेन्द्र मिश्र भी ठीक मुक्तिबोध की भाँति अमीरी और ग़रीबी दोनों में ही विरूपता के दर्शन करते हैं। ऊपरी तौर पर हमें यह अंतर्विरोध लग सकता है, लेकिन वास्तव में यही सच्चाई है। अमीरी विरूप इसलिए है, क्योंकि वह ग़लत धंधे करके, ग़रीबों का खून चूसकर आई है। आज सौंदर्य में भी विरूपता आ गई है, क्योंकि सौंदर्य से पवित्रता तिरोहित हो गई है। कवि को लगता है कि सारी दुनिया पर विरूपता का साया है।

चौथा राग है—मैं युद्ध हूँ। आज सारी दुनिया युद्धमयी है। महाभारत का युद्ध तो शाम होने पर बंद हो जाता था, लेकिन वर्तमान समय में युद्ध दिन-रात दोनों समय चल रहा है। मस्तिष्क में युद्ध, घर-परिवार में युद्ध, चुनाव में युद्ध, जल में युद्ध, धर्म के लिये युद्ध, प्रकृति में युद्ध, यानी युद्ध के बिना जीवन की कल्पना नहीं। महाकवि दिनकर ने कुरुक्षेत्र में युद्ध की आवश्यकता इन शब्दों में व्यक्त की है—

युद्ध को तुम निंद्य कहते हो मगर,
जब तलक उठ रहीं चिनगारियाँ,
भिन्न स्वार्थों के कुलिश-संघर्ष की,
युद्ध तब-तक विश्व में अनिवार्य है।³

इस चौथे राग में राजेन्द्र मिश्र ने युद्ध के विभिन्न स्वरूपों को स्पष्ट करते हुए युद्ध को दर्शन से जोड़ दिया है। वे लिखते हैं कि ‘एक साँस आती है। एक साँस जाती है। दोनों में युद्ध होता है जब-तक आने वाली साँस जीतती है। आदमी ज़िंदा रहता है। जब जाने वाली साँस जीतती है। आदमी मर जाता है।’

पाँचवाँ राग है ‘खुशी’। यह पहले राग उदासी का विलोम है। खुशी जो दिल की दुनिया में रहती है। कभी ओठों पर सजती है, कभी आँखों पर आ जाती है। कवि मानता है कि आज

का मनुष्य बेहद तनाव में जी रहा है। कभी-कभी परिस्थितियों के दबाव में अपने आपको असहाय पाता है। ऐसी विषम परिस्थिति में मनुष्य आगत खुशी की आशा में घोर व्यथा में भी ज़िंदा है।

छठा राग दर्द का राग है। दर्द जन्म से ही मनुष्य के साथ है, दर्द खुशी से पहले आता है। दर्द से ही सृष्टि जन्मी है और दर्द ही सृजन का आधार है। दुनिया के इस दुख-दर्द ने ही राजकुमार सिद्धार्थ को गौतम बुद्ध बना दिया था। लेकिन वर्षों की तपस्या के बाद उनका निष्कर्ष यही था, दुख-दर्द दुनिया का आर्ष सत्य है।

दुखों से मुक्ति नहीं जैसे दिन और रात का युग्म है वैसे ही दर्द और हर्ष का भी युग्म है। राजेन्द्र मिश्र ने पूरे जीवन और समाज में दर्द को देखा है। गरीबी का दर्द, बेरोज़गारी का दर्द, कुरूपता का दर्द, स्त्री-शोषण का दर्द, स्त्री के बंधनों में जकड़े रहने का दर्द, उत्पीड़न का दर्द, सपने टूटने का दर्द, अपने करीबी की मौत का दर्द, अभिनेत्री और मॉडल का दर्द, यहाँ तक कि सूरज, चाँद और सितारों का दर्द भी कवि ने देखा है। कवि का मानना है कि वक्त बदलता है, लेकिन दर्द नहीं बदलता।

सातवाँ राग है मैं स्वप्न हूँ। कवि मानता है कि चेतन की दुनिया से अलग अवचेतन की दुनिया में स्वप्न है। यदि मनुष्य ने स्वप्न नहीं देखे होते तो आज जो इतना उन्नत संसार है, वह नहीं होता। स्वप्न ही है, जो प्रत्येक वस्तु को सुंदर बना देता है। कवि का मानना है कि स्वप्न महत्त्वपूर्ण है। हमारा भारतीय दर्शन कहता है कि 'संसार स्वप्न है। संसार मिथ्या है। स्वप्न कभी प्रेरणा बन जाते हैं, कभी दर्द, कभी संगीत तो कभी बाग़-बगीचे बन जाते हैं।' यद्यपि प्रेमरंजन अनिमेष मानते हैं कि 'हमारे समय की आँखों में सच (या उसका खौफ़) इस तरह भर गया है कि सपने की समाई नहीं। यह भी है इस आपाधापी और तनाव के युग में ठीक से नींद भी मयस्सर नहीं तो सपने कहाँ रहेंगे।'¹⁴ आठवाँ राग के कवि राजेन्द्र मिश्र आम आदमी के उन स्वप्नों की बात करते हैं, जिन्हें विश्व के इस सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश में पूरा होना चाहिए था, लेकिन ये सपने आज तक पूरे नहीं हो सके। जब जनता अपना स्वप्न बुनती है, तब उसका कोई नेता नहीं होता। नेता यदि जनता बन जाएगा, तब न्याय होगा समाज में दहशत नहीं होगी। कवि प्रेरणा देता है कि अपना स्वप्न तुम खुद जियो। 'अगर तुम स्वप्न नहीं हो तो तुम ही नहीं हो। कोई ज़िंदगी स्वप्न के बिना नहीं होती। हर ज़िंदगी में स्वप्न होता है। हर स्वप्न में ज़िंदगी होती है। स्वप्न एक ऊर्जा है। स्वप्न संस्कार है।'¹⁵ दरअसल, राजेन्द्र मिश्र स्वप्न के बहाने से मनुष्य के अभ्यंतर जगत से लेकर बाह्य जगत तक की पूरी चीर-फाड़ करते हैं।

भविष्य कविता का आठवाँ और अंतिम राग है प्यार का राग। प्यार के बिना जीवन की कल्पना ही नहीं है। हमारे आदिजनक चाहे वे किसी एडम व ईव के रूप में जाने जाएँ, चाहे आदम और हव्वा, चाहे मनु या श्रद्धा हों उनके प्यार के ही परिणामस्वरूप इस सुंदर सृष्टि का जन्म हुआ। कबीर तो सारे संसार के ज्ञान का आधार ही प्रेम को मानते हैं और लिखते हैं—

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोय।

ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।

आज की इस आतंक-भरी दुनिया में, स्वार्थ और नफ़रत की दुनिया में प्यार ही है, जो दुनिया को सुरक्षित रखता है। राजेन्द्र मिश्र आज के बदलते वक्त में प्यार के बदलते रूप की नब्ज भी अच्छी तरह पकड़ते हैं। वे कहते हैं कि आज प्यार फेसबुक पर उतर आया है। प्यार ट्विटर

पर आ गया है। प्यार वैलेन्टाईन में है। प्यार जवानी के सौंदर्य में है। प्यार में धोखा होता है। प्यार की आड़ में ही दुष्कर्म किए जाते हैं। क्योंकि आज की दुनिया में लहनासिंह जैसे प्रेमी, देवसेना और मालविका जैसी प्रेमिकाएँ दुर्लभ हैं। आठवाँ सर्ग के अंत में कवि हम सभी से ये अपील करता है—हम यदि संपूर्ण मानवता से प्रेम करें तो संसार में युद्ध और आतंक नहीं होगा। सभी जगह अपनापन होगा। प्यार ही घर को संसार बनाता है और संसार को घर बनाता है।’

लगभग एक सौ आठ पृष्ठों में फैले ये आठों राग समग्र मानवता के राग हैं। कवि अपने और पूरे ग्लोबल परिवेश के प्रति चौकस है। इन आठों रागों में समाज के प्रति गहरी संपृक्ति के साथ सामाजिक विद्रूपताओं और सांस्कृतिक क्षरण के प्रति गहरी चिंता कवि के मन में दिखाई देती है। राजेन्द्र मिश्र की भविष्य कविता ‘आठवाँ राग’ मनुष्य की चेतना को झकझोरकर रख देनेवाली कविता है।

आठ खंडों में विभक्त लंबी कविता ‘आठवाँ राग’ गहन सामाजिक संपृक्ति से जन्मी है। इस कविता में कवि ऐसी भाषिक जटिलता से बचा है, जिससे भावतत्त्व असुरक्षित हो जाता है। भाषायी स्पष्टता और काव्यात्मकता का अभाव होने के कारण यह कविता सपाट और ठोस लगती है। ‘आठवाँ राग’ एक परिवर्तित शिल्प की कविता है, बहुत-कुछ मुक्तिबोध की ‘अँधेरे में’ कविता की भाँति प्रदीर्घ और समकालीन संदर्भों से जुड़ी हुई। ‘मैं उदास हूँ’, ‘मैं अकेला हूँ’, ‘मैं विरूप हूँ’, ‘मैं युद्ध हूँ’, ‘मैं खुशी हूँ’, ‘मैं स्वप्न हूँ’ और ‘मैं प्यार हूँ’ ये अलग-अलग आठ राग बृहत्तर सामाजिक संदर्भों से जुड़कर कविता की संरचना करते हैं, लेकिन प्रत्येक राग अपने आपमें पूर्ण है और अखंड है। कविता का वाचक मैं ‘मैं’ का यानी अकेले का प्रतीक न होकर पूरे समाज का, हम सबका प्रतीक है। इस कविता का नायक पढ़ा-लिखा बुद्धिजीवी है और यह भारत के प्रत्येक व्यक्ति की सोच, चिंता, आकांक्षा, भय और प्रेम को अभिव्यक्त कर रहा है। आठवाँ राग भविष्य से वर्तमान को देखने की दृष्टि का परिणाम है।

राजेन्द्र मिश्र ने आठवाँ राग की भूमिका में लिखा है—‘आठवाँ राग भविष्य की दुनिया है। कभी वर्तमान से भविष्य बनता था, अब भविष्य से वर्तमान रचा जाता है। हम जिस भविष्य का स्वप्न देखते हैं, वह वर्तमान का सच बनता है। कविता साहित्य की वह रचना है जिसमें संवेदना सबसे पहले मनुष्य के भीतर उस कल्पना का एक संसार रचती है, जिससे मनुष्य का कोई भी सच अलग नहीं होता।’ प्रख्यात समीक्षक शंभुनाथ सिंह ने ‘संस्कृति की उत्तरकथा’ में लिखा है कि ‘कवि अब समाज के प्रति तटस्थ नहीं रह सकता। वह उत्तर-आधुनिक परिदृश्य के प्रतिपूर्ण चौकस है और कविता के प्रति घटी सामाजिक उत्सुकता को फिर से जाग्रत करने के लिए नए उपायों की खोज में है।’ शंभुनाथ जी का यह कथन राजेन्द्र मिश्र की लंबी कविता आठवाँ राग के संदर्भ में समीचीन है। राजेन्द्र मिश्र वर्तमान परिवेश के प्रति पूर्णतः चौकस हैं। कवि ने उत्तर आधुनिकता और भूमंडलीकरण के खतरों को बहुत पहले से भाँप लिया है। इसलिए भूमिका में वे लिखते हैं—

भविष्य कविता साइबर कविता है
वह ब्लॉग से रची जाती है।
ट्विटर पर लिखी जाती है।
फेसबुक पर पढ़ी जाती है।

साइबर कविता भविष्य कविता है।⁷

1950 के बाद कविता ने अनेक रूप और अवतार बदले, नई कविता, अकविता, वीर कविता, भूखी कविता, युयुत्सु कविता आदि वादों ने कविताओं को विभिन्न दिशाओं की ओर मोड़ा। जनवादी कविता, समकालीन कविता और आज कविता के बाद कविता अब 'भविष्य कविता' के द्वार पर खड़ी दस्तक दे रही है। आठवाँ राग उदासी, अकेलेपन, विरूपता, संवेदनहीनता, यात्रिकता के खिलाफ एक प्रति ध्रुव रचता है। राजेन्द्र मिश्र ने इस संग्रह की भूमिका में लिखा है कि 'आज कविता के बाद भविष्य-कविता ही सृजन का सरोकार है। हम भविष्य में अपना अतीत जीते हैं। हमारे वर्तमान में भी भविष्य निरंतर बना रहता है।' इस संबंध में गुजराती के प्रसिद्ध नाटककार सितांशु यशश्चंद्र ने लिखा है—'अतीत से एक प्रकार की असंबद्धता आपको वर्तमान के संदर्भ में भविष्य तलाशने की नीरसता से बचने की छूट देती है। इस प्रकार आप अतीत और वर्तमान का नया ठिकाना भविष्य की बंजर-सी लगने वाली भूमि पर ढूँढ़ना आरंभ करते हैं। किसी भी साहित्यिक विधा की शायद यह भी एक बुनियादी गतिविधि है। साहित्य अतीत और वर्तमान को भविष्य की सीधी खड़ी सख्त दीवारों पर पैर रखने की जगह देता है। इस प्रकार यह संस्कृति की निरंतरता तथा अस्तित्व के प्रति आश्वस्त करता है। भविष्य की जगह वर्तमान को ढूँढ़ना एक खास प्रकार की आत्मपरकता तथा एक खास प्रकार के भविष्यबोध के बीच एक रिश्ता प्रस्तावित करता है। यह भविष्यबोध भविष्य को एक स्थान, एक घटना स्थल, एक आधार के रूप में देखता है।

भविष्य कविता का शिल्प निश्चित नहीं है। वह छंदों, अलंकारों के व्यामोहों से मुक्त है। इस कविता का संरचनात्मक रूप नहीं है। यह बोलचाल की भाषा में लिखी जा सकती है। राजेन्द्र मिश्र ने लिखा है—'आज कविता में भी विधाओं को नहीं माना गया है। सभी विधाएँ एक-दूसरे के साथ घुल-मिल जाती हैं, उनमें एक तरह का रासायनिक संविलियन होता है। भविष्य कविता में कविता किसी भी विधा में लिखी जा सकती है। वह एक से अधिक विधाओं में लिखी जा सकती है। इसके बावजूद वह कविता ही रहेगी। कविता की पहचान किसी भी रूप में लिखे जाने पर खत्म नहीं होती।'

आधुनिककाल में कविता के स्वरूप में बहुत अधिक परिवर्तन हुए हैं। भारतेंदुयुग से आज तक यानी विगत एक सौ चौदह वर्षों की कालयात्रा में कविता ने अनेक रूप बदले। भारतेंदुयुग में ब्रजभाषा के पुराने कलेवर के साथ विषयों में नवीनता आई। द्विवेदीयुग में कविता खड़ीबोली से संस्कारित होकर राष्ट्रीय भावधारा से संपृक्त हुई। छायावादी कविता में लाक्षणिकता, नूतन प्रतीकविधान, प्रकृति का मानवीकरण, कोमलता, उपचारवक्रता और अनुभूति की प्रधानता के साथ नए भावबोध उभरे। प्रगतिवादी कविता सीधे मनुष्य के साथ जुड़ी हो प्रयोगवादी कविता नये प्रयोगों के साथ अवतरित होकर नई राहों का अन्वेषण करने लगी।

राजेन्द्र मिश्र का कहना है कि भविष्य का साहित्य आज से अलग नहीं है। आज के साथ ही भविष्य जुड़ता है। कविता की पहचान किसी भी रूप में लिखे जाने पर खत्म नहीं हो सकती। इसकी आकृति किसी भी रूप में घुल-मिल नहीं सकती। आज हम जिस बोलचाल की भाषा में बात करते हैं, उसी में लिखी गई, यह लंबी कविता भविष्य कविता का प्रारंभ है। भाषा-विमर्श और गठन की दृष्टि से आठवाँ राग एक सार्थक और साहसी प्रयोग है। दरअसल यह

कविता न होकर हमारे समय का एक गंभीर समाजशास्त्रीय अध्ययन है। इस संग्रह ने कविता के बने बनाए साँचों को तोड़कर अपने शिल्प का एक नया साँचा तैयार किया है।

संदर्भ

1. राजेन्द्र मिश्र, आठवाँ राग, गीतिका का प्रकाशन, बिजनौर (उ०प्र०), प्रथम संस्करण 2013, पृ० 9
2. राजेन्द्र मिश्र, आठवाँ राग, पृ० 113
3. रामधारी सिंह दिनकर, कुरुक्षेत्र, द्वितीय सर्ग, पृ० 16
4. राजेन्द्र मिश्र, आठवाँ राग, पृ० 110
5. वही, पृ० 9
6. प्रभाकर श्रोत्रिय, वगमार्थ अंक 75, भारतीय भाषा परिषद्, भारतीय साहित्य का भविष्य, सितांसु यशश्चंद्र का लेख, पृ० 130
7. राजेन्द्र मिश्र, आठवाँ राग, पृ० 9
8. आलोचना, संपादक अरुण कमल, सहस्त्राब्द अंक, 49, पृ० 95

ए/16, पंचशीलनगर, जबलपुर (म०प्र०)

मो० 9993416937

रीतिकाव्य की मनोवैज्ञानिकता : कुछ नोट्स

डॉ० दीपक त्रिपाठी

मनोविज्ञान ने मनुष्य को विश्लेषणात्मक मनोचिकित्सक की मेज़ पर रखकर काफ़ी कौतुकपूर्ण सामग्री जुटाई है, जो मुख्यतः अनुमान पर आधारित थी और गौणतः रोगी के मस्तिष्क पर पड़े 'वातावरण' के असर को देखती थी।¹ यहाँ हम रीतिकाव्य के प्रेमत्व एवं इसकी सौंदर्य-चेतना का विश्लेषण करेंगे। यहाँ उद्देश्य यह नहीं कि पूरी तरह रीतिकाव्य के विभिन्न तत्त्वों और आयामों का कोईभी मनोवैज्ञानिक पक्ष अन्वेषित किया जाए; यहाँ प्रेम एवं सौंदर्य की अनुभूति के विभिन्न आधारों को वैयक्तिक तथा साहित्यिक स्तर पर जाँचने के उपरांत उसकी अभिव्यक्ति के माध्यमों और औचित्य पर विचार गया है। सौंदर्य की अनुभूति प्रेम की अनुभूति से पूर्व की है या उपरांत की है, इस पर कदाचित् स्पष्ट कुछ नहीं कहा जा सकता या कहा भी जा सकता है तो विभिन्न विद्वानों के अपने-अपने मतों के उपरांत इस उभयनिष्ठ निष्कर्ष की संभावना अधिक है कि प्रेम-चेतना और सौंदर्य-चेतना अतिनिकट की अनुभूतियाँ हैं। सौंदर्यबोध पर भारतीय साहित्यशास्त्र में विस्तार से चर्चा हुई है और इसकी परिभाषा का निर्धारण अद्यतन होता आ रहा है। सौंदर्यबोध की साहित्यिक व्याख्या, वैचारिक व्याख्या, दार्शनिक व्याख्या और वैज्ञानिक स्तर तक की व्याख्याएँ हमें इसके निरंतर-प्रवाह से परिचित कराती हैं।

'साहित्य और मनोविज्ञान के संबंधों, अभिव्यक्त सत्य और अनुभूत सत्य के संबंधों को अनेक स्तरों में अन्वेषित किया जा सकता है। इस अर्थ में मनोविज्ञान और साहित्य एक-दूसरे के बहुत करीब हैं। जब आज हम किसी समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए साहित्यिक सामग्री को आधार सामग्री और आँकड़े मानते हैं और उसी तरह काम भी करते हैं तथा समाजशास्त्रीय निष्कर्षों तक पहुँचते हैं, तब मनोविज्ञान को साहित्य से अलग मानने का काम साहित्य को सीमित, संकुचित करना होगा। साहित्य मनोविज्ञान को विषय बना सकता है। उसकी भावधारा को एक आवेगात्मक भाषा में रूपांतरित भी कर देता है। दूसरे आज का मनोविज्ञान बड़े पैमाने पर भीड़, समूह का अध्ययन कर सामूहिक कलासंवेदन का क्षेत्र भी छूता है। अतः प्रारंभिक मनोविज्ञान चाहे आज हमारे लिए अर्थहीन पड़ रहा हो, आधुनिक मनोवैज्ञानिक खोजें एक ऐसा आधार ज़रूर बना रही हैं जिससे हमारे लिए साहित्य की अगोचर कड़ियों को समझना आसान हो जाएगा।² इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आज के आधुनिक युग की जो कलात्मक जटिलताएँ हैं उन्हें समझने-परखने के लिए मनोविज्ञान की सहायता आवश्यक है।

प्रेमाभिव्यक्ति, अर्थात् अवस्थानुकूल मनःस्थिति

'प्रेम' शब्द एक व्यापक अर्थधारी शब्द है। हिंदी-काव्य-धारा में कबीर के निर्गुण-काव्य से लेकर अद्यतन इसकी विभिन्न पद्यात्मक परिभाषाएँ दी गई हैं। सबने अपने-अपने मत-अनुरूप

और मति-अनुरूप इसे परिभाषित किया है। रीतिकालीन काव्य के संदर्भ में प्रेमाभिव्यक्ति को विवेचित करने के क्रम में हम पहले एक साहित्यिक उपादान के रूप में प्रेम के परिप्रेक्ष्य को समझेंगे, तदुपरांत रीतिकाव्य और व्यक्तिगत स्तर पर प्रेम की अभिव्यक्ति का अन्वेषण करेंगे। यह समस्त अन्वेषण मनोवैज्ञानिक दृष्टि को ध्यान में रखकर ही किया गया है।

भक्तिकाल के पूर्व 'रासो-साहित्य' में प्रेम-प्रसंगों के विभिन्न वर्णन उल्लिखित हैं। भक्तिकाल में तो प्रेममार्गी या प्रेमाश्रयी (सूफ़ी-काव्य) काव्यधारा की एक स्वतंत्र प्रवृत्ति देखी जा सकती है। भक्ति की सभी काव्यधाराओं में प्रेम-तत्त्व को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है, यह अलग तथ्य है कि सबके प्रेम की निदर्शनाएँ भिन्न थीं। प्रवणता समान थी, किंतु कोटियाँ अलग थीं। 'सोलहवीं सदी या उससे कुछ आगे-पीछे भारत में भक्त कवियों की एक बाढ़-सी आ गई। न सिर्फ़ ब्रज, अवध आदि हिंदी-प्रदेशों में, बल्कि बंगाल, पंजाब, महाराष्ट्र आदि प्रदेशों में भी यह बाढ़ दिखाई दी। संत-साहित्य ने एक विराट् आंदोलन का रूप ले लिया। जनता की भाषा में ऐसी रचनाएँ होने लगीं जो गाँवों तक फैल गईं। इन रचनाओं में प्रेम को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया, वर्ण और धर्म का भेद प्रेम में बाधक न समझा गया, अक्सर इस तरह के भेद की कड़ी आलोचना भी की गई। इन प्रेममार्गी कवियों में हिंदू, मुसलमान, सवर्ण और अछूत, सभी तरह के लोग हुए। उनमें से कुछ सगुणवादी थे, कुछ निर्गुणवादी, कुछ कृष्ण उपासक थे, कुछ राम के, कुछ यह सब कुछ एक साथ थे। मूल बात यह थी कि वे उपासना में प्रेम को मुख्य चीज़ मानते थे।" यहाँ इस उद्धरण को उल्लिखित करने का उद्देश्य यही था कि डॉ॰ रामविलास शर्मा ने किस प्रकार प्रेम की अभिव्यक्ति को भक्तिकाल के सभी उपासक-कवियों में उपस्थित मान रहे हैं। जहाँ वो प्रारंभ में लिख रहे हैं कि 'भक्त कवियों की एक बाढ़-सी आ गई' वहीं अंत में लिखते हैं कि 'मूल बात ये थी कि वे उपासना में प्रेम को मुख्य चीज़ मानते थे'। यदि भक्तिकाल के प्रत्येक कवि में प्रेम का तत्त्व विद्यमान था तो क्या यह नहीं माना जा सकता कि रीतिकाल में इसी प्रेम का साहित्यिक विकास हुआ? क्या यह नहीं कहा जा सकता कि जिस प्रेम का निदर्शन भक्तकवियों ने किया था उसी को परवर्ती कवियों ने कुछ और स्थूल बना दिया, यथार्थपरक बना दिया या दैविक प्रेम एवं कल्पना को दैहिक अनुभूति का धरातल प्रदान कर दिया? कवियों के मन-मस्तिष्क के अचेतन स्तर पर अपने पूर्ववर्ती कवियों की विभिन्न भाव-भंगिमाएँ अंकित होती हैं, जिनका सकारात्मक, नकारात्मक अथवा प्रतिक्रियात्मक प्रतिफलन उनके काव्य में देखा जा सकता है। आखिर रीतिकालीन काव्य कोई प्रायोजित काव्य नहीं था। जिस प्रकार के भक्तिमय प्रेम का प्रमाण डॉ॰ शर्मा संकेतित कर रहे हैं उस प्रकार का प्रेम-काव्य (भक्ति-प्रेम-काव्य) रीतिकाल में भी उपस्थित था, परंतु यह कहना एकांगी होगा कि इस युग में दैहिक प्रेमाभिव्यक्ति ने दैविक प्रेमाभिव्यक्ति पर आवरण चढ़ा दिया।

वस्तुतः प्रेम का मनोविज्ञान ही कुछ ऐसा होता है कि हम चाहे भक्ति-क्षेत्र में इसका निरूपण करें चाहे काव्य-क्षेत्र में अथवा व्यक्तिगत स्तर पर निरूपण करें, कुछ शर्तों का पालन तो करना ही पड़ता है। जब हम 'दो' की चर्चा करते हैं तब 'प्रेम' की चर्चा स्वतः ही आती है और जब 'प्रेम' की चर्चा करते हैं तब 'दो' की चर्चा स्वाभाविक रूप से आ जाती है। ये 'दो' चाहे जीव-ब्रह्म, आत्मा-परमात्मा, नर-नारायण, ईश्वर-मनुष्य, भक्त-भगवान हों अथवा राधा-कृष्ण या साधारण जन-जीवन के नायक-नायिका हों। 'डॉ॰ भगवानदास ने प्रिय से प्रेमी की मिलनेच्छा

को प्रेम कहा है। यह प्रेम दो प्रेमियों को एक स्तर पर ला खड़ा करता है, जिससे वे परस्पर संबद्ध होकर एकात्म हो सकें। कार्लमेनिंगर ने भी दो व्यक्तियों के सम्मिश्रण से प्राप्त अनुभूत्यात्मक आनंद को प्रेम कहा है। हैवलॉक एलिस ने भी प्रेमी-प्रेमिका के शरीर, मन और आत्मा के तादात्म्य में ही प्रेम की सत्ता स्वीकार करते हुए अपने ढंग से लिखा है कि साधारणतः भोगवृत्ति (लस्ट) और मैत्री के संश्लेषण को ही प्रेम समझा जाता है, पर न तो सामान्य और अगूढ़ यौन-आकांक्षाओं को प्रेम कहा जा सकता है और न विविध प्रकार के मैत्री संबंधों को। यह ठीक है कि भोगवृत्ति विरहित यौन-प्रेम की कल्पना नहीं की जा सकती, पर जब तक यह मनस संघटनों को प्रभावित नहीं करता तब तक वह यौन-प्रेम के नाम से नहीं पुकारा जा सकता।⁴ 'यह ठीक है कि भोगवृत्ति विरहित यौन-प्रेम की कल्पना नहीं की जा सकती' जैसे कथनों से यौन-प्रेम की कोटि निर्धारित भी हो जा रही है और स्पष्ट भी हो जा रही है। 'प्रेम दो प्रेमियों को एक स्तर पर ला खड़ा करता है', यही एक स्तर पर आने अथवा लाने की प्रवृत्ति ही प्रेम की अवस्थाओं को निर्धारित करती है। हम जिससे प्रेम करते हैं या तो उस जैसा हो जाना चाहते हैं अथवा उसको अपने जैसा कर लेना चाहते हैं। हैवलॉक एलिस ने 'प्रेमी-प्रेमिका के शरीर, मन और आत्मा के तादात्म्य में ही प्रेम की सत्ता स्वीकार' की है। यह प्रेम-परिभाषा का व्यापक रूप है। रीति-साहित्य में यही 'शरीर, मन और आत्मा के तादात्म्य' का प्रेम ही अपेक्षित होता है।

हम रीतिकाव्य के संदर्भ में अक्सर 'स्वच्छंद प्रेम' जैसे पद का उल्लेख देखते हैं। यहाँ 'प्रेम' और 'स्वच्छंद प्रेम' में अंतर स्पष्ट होना आवश्यक है। यह अंतर कई स्तरों पर है, परंतु यहाँ उसका एक विशेष बिंदु जो रीतिकाल से संबद्ध है, उसी का उल्लेख किया जा रहा है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हम अपने जीवन में जिन विषयों को अथवा उपादानों को वैकल्पिक रूप में प्रस्तुत करते हैं, समय बदलने पर वही अनिवार्य हो जाते हैं। रीतिकाव्य से पूर्व प्रेम के जितने भी काव्य प्राप्त होते हैं उनमें विद्यापति को छोड़कर अन्य लगभग सभी हिन्दी-काव्य किसी विशिष्ट संदर्भ से जुड़े हैं, अर्थात् प्रेम-निरूपण कथाओं के माध्यम से हुआ है। नायकों के नाम, नायिकाओं के नाम तथा अन्य पात्रों के नाम प्रेम को एक विशिष्ट संदर्भ और प्रसंग भी प्रदान करते हैं। चाहे वह रासो-साहित्य की प्रेम-कथाएँ हों, चाहे राधा-कृष्ण विषयक प्रेम-समागम हो अथवा निर्गुण का प्रेमाख्यानक काव्य हो; सभी में सामान्य नायक-नायिका नहीं हैं। रीतिकाव्य में पहली बार इस बाध्यता को समाप्त किया गया। प्रसंग तो रहे परंतु संदर्भ न रहे, इसलिए इसे भाव-स्तर पर स्वच्छंद प्रेम कहा गया और कला-स्तर पर मुक्तक शैली। इस काव्य को व्याख्यायित करने के लिए हमें नायक और नायिका जैसी कल्पना को आधार मानकर व्याख्या करनी होती है। पाठक एवं श्रोता इस स्वच्छंद प्रेम में स्वयं का आरोपण करके व्यक्तिगत स्तर पर अतिरिक्त आनंद प्राप्त करते हैं। अपने अस्तित्व का बोध इस स्वच्छंद प्रेमकाव्य में अधिक होता है। चरित्रों में आबद्ध प्रेम को स्वच्छंद बनाने के प्रयास में ही उन्हें व्याख्याकार अथवा आलोचक-वर्ग प्रतीक मानने को कहते हैं।

प्रेम का भाव व्यक्ति-निरपेक्ष हो ही नहीं सकता, इसलिए भारतीय सगुण विचारधारा अपने हृदय के नैसर्गिक प्रेम-स्फुटन को व्यक्त करने के लिए ईश्वर के साकार रूप की कल्पना करती है। ईश्वर को व्यक्ति बनाकर उससे प्रेम करने की प्रवृत्ति मानव-मन का एक मनोविज्ञान भी तो हो सकता है, क्योंकि ईश्वर को बिना साकार माने और बिना व्यक्तिरूप में माने संसार

में बहुत-से धर्म विद्यमान हैं। वस्तुतः यह भारतीय प्रेम-चिंतन की विशिष्ट मनोवैज्ञानिक धारा है। प्रेम को 'जीवित-सत्य' माना गया क्योंकि, 'प्रेम वह अनुकूलवेदनीय मनोवृत्ति है जो किसी व्यक्ति, अन्य जीव, पदार्थ के सौंदर्य, गुण, शील, सामीप्य आदि के कारण उत्पन्न होती है। व्यापक अर्थ में मनोवृत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं—अनुकूलवेदनीय और प्रतिकूलवेदनीय। अनुकूलवेदनीय मनोवृत्ति के अंतर्गत सुखद अनुभूतियों की गणना होती है और प्रतिकूलवेदनीय मनोवृत्तियों की कोटि में जीवन की दुःखद अनुभूतियाँ आती हैं। अनुकूलवेदनीय मनोवृत्ति आकर्षणमूलक होती है तो प्रतिकूलवेदनीय मनोवृत्ति विकर्षणमूलक।⁵ यहाँ डॉ० बच्चन सिंह प्रेम को एक मनोवृत्ति मान रहे हैं—अनुकूलवेदनीय मनोवृत्ति। मनोवृत्ति के आधार पर समझने के इस प्रयास में 'आकर्षणमूलक' निष्कर्ष ही प्राप्त हो रहा है। वस्तुतः यह आकर्षण किसी अन्य के प्रति तो होता ही है, साथ में सबसे बड़ा आकर्षण स्वयं के जीवन के प्रति हो जाता है। जब हम किसी से प्रेम करते हैं तो उसके जीवन की कामना तो करते ही हैं, अप्रत्यक्षतः हम स्वयं के जीवन की भी कामना करते हैं क्योंकि यदि हम और हमारा शरीर ही शेष नहीं होगा तो हमारी आत्मा किस धरातल पर इस 'प्रेम' जैसी मनोवृत्ति का रूपायन करेगी? प्रेम स्वयं को बचाने का, मानव-जीवन को बचाने का एक उपक्रम है, एक अभियान है।

'जिस प्रकार ज्ञान की चरम सीमा ज्ञाता और ज्ञेय की एकता है उसी प्रकार प्रेमभाव की चरम सीमा आश्रय और आलंबन की एकता है। अतः भगवद्भक्ति की साधना के लिए इसी प्रेमतत्त्व को वल्लभाचार्य ने सामने रखा और उसके अनुयायी कृष्णभक्त कवि इसी को लेकर चले।⁶ इस कथन से संकेत मिल रहा है कि प्रेमतत्त्व, जो कि समाज में आदिकाल से उपस्थित है, का प्रयोग भक्ति-क्षेत्र में विशिष्ट प्रकार से वल्लभाचार्य ने किया। कहने का आशय, जिस माधुर्य प्रेम अथवा पुष्टिमार्गीय भक्ति के लिए वल्लभाचार्य जाने जाते हैं उसके मूल में प्रेमतत्त्व ही विद्यमान है। अब यह बात अलग है कि सांसारिक-शारीरिक प्रेम के रूपांतरण का प्रयास भक्तिधारा के कवियों और धर्मगुरुओं द्वारा विभिन्न-विभिन्न प्रकार से किया जाता रहा है। प्रेम की विशिष्ट प्रवृत्ति अथवा मनोवृत्ति के आधार पर ही भारतीय समाज से कुछ अपेक्षा की जा सकती है। दूसरी जो मुख्य बात आचार्य शुक्ल के उपर्युक्त कथन में है वह 'एकता' शब्द है। 'ज्ञाता और ज्ञेय' अथवा 'आश्रय और आलंबन' की 'एकता' का सामान्य अर्थ क्या हो सकता है। ज्ञान-क्षेत्र में तो इसका स्वरूप चाहे जो हो, परंतु प्रेम-क्षेत्र में इसका सामान्य आशय 'संयोग-शृंगार' से माना जा सकता है। 'एकता' अपने व्यापक अर्थों में शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक स्तर की हो सकती है। संयोग-शृंगार के काव्यांतर्गत भक्तिकाल में जब राधा-कृष्ण के प्रेम-प्रसंगों का चित्रण मिलता है तो नायक-विशेष कृष्ण और नायिका विशेष राधा का विभाव-अनुभाव वर्णित होता है। रीतिकाल में 'नायक-विशेष' का परिवर्तन 'नायक' में तथा 'नायिका-विशेष' का परिवर्तन 'नायिका' में हुआ। यह कवि का श्रोता अथवा पाठक के सम्मुख 'नायक-नायिका' का साधारणीकरण करने का प्रयास स्वच्छंद भाव कहलाया और इससे इनकी स्वयं केंद्र में आने की प्रवृत्ति का भी द्योतन हुआ। यह भक्ति-प्रेम से विचलन और विस्थापन नहीं था, अपितु प्रेम की एक नई शाखा का पल्लवन था। भारतीय प्रेम-परंपरा और पुष्ट हो रही थी। वल्लभाचार्य ने जिस प्रेम के माध्यम से भक्तिमार्ग पर चलने की दीक्षा दी उसका साधारणीकरण हो गया; परिणाम यह हुआ कि 'पुरुष आलंबन हुआ और स्त्री आश्रय। जनता के बीच प्रेम इस स्वरूप ने यहाँ तक

प्रचार पाया कि क्या नगरों में, क्या ग्रामों में सर्वत्र प्रेम के गीतों के नायक कृष्ण हुए और नायिका राधा। 'बनवारी' या 'कन्हैया' नायक का एक सामान्य नाम-सा हो गया।”

बहुत सीमा तक तो राधा-कृष्ण के प्रेम पर आधारित काव्य अपनी दार्शनिक पृष्ठभूमि (जिसमें वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत-दर्शन और पुष्टिमार्ग था) का पालन हुआ, परंतु उपरांत में जैसे समस्त जनमानस को अपने हृदयोद्गार-निःसरण का एक मार्ग मिल गया। धीरे-धीरे वल्लभ-संप्रदाय-निरपेक्ष कृष्णकाव्य भी कवियों और जनता में प्रचलित हो गया। यह प्रेम-तत्त्व की ही स्वीकार्यता थी। इसी सामान्य जन-प्रचलन से ही मीराबाई और रसखान जैसे कवि आते हैं।

‘प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रॉयड मूलप्रवृत्ति काम (Sex Instinct) को जीवन की सत्यानुभूति मानता है। उसके मतानुसार दमित कामवासना ही प्रेम का विविध रूप धारण करती है। यह दमित काम अनेक प्रकार की कुंठाओं का जनक है और साहित्य इन्हीं कुंठाओं की अभिव्यक्ति। वह साहित्य आदि कलाओं को काम का ही उन्नयन मानता है। फ्रॉयड ने प्रेम को इसी दृष्टिकोण से परखा है, पर फ्रॉयड का सिद्धांत आंशिक रूप से ही सच है।* यहाँ डॉ० बच्चन सिंह जिस बात को ‘आंशिक रूप से ही सच है’ कह रहे हैं, उसे थोड़ा परिवर्तित करके कहा जा सकता है कि भारतीय काव्यधारा अथवा भारतीय समाज के संदर्भ में यह सत्य नहीं है। फ्रॉयड ने मानव-मन के जिन सिद्धांतों को निर्धारित किया है वे पूरी तरह निरपेक्ष कैसे हो सकते हैं। देश-काल के अनुसार इन सिद्धांतों का बदलना वस्तुतः सिद्धांत का असफल होना नहीं, बल्कि मन की चंचलता और उसके अस्थायी होने का प्रतीक है। वस्तुतः भारतीय और पाश्चात्य काम-दृष्टिकोण में मूलभूत अंतर है। सुप्रसिद्ध दार्शनिक रजनीश ओशो ने फ्रॉयड के इस सिद्धांत पर लिखते हुए व्यापक रूप से भारतीय और पाश्चात्य काम-दृष्टिकोणों में अंतर स्पष्ट किया है। उनके कहने का संक्षिप्त आशय यह है कि—जब भारतीय काम-विषयक चिंतन प्रारंभ होता है तो यह मानकर होता है कि इससे मुक्ति संभव है; हम संपूर्ण रूप से काम की प्रवृत्ति को त्याग सकते हैं। यह पूर्व-परिकल्पना करने के बाद ही समस्त प्राच्य निष्कर्ष सामने आते हैं। पाश्चात्य काम-विषयक चिंतन जब प्रारंभ होता है तो यह मानकर होता है कि काम से मुक्ति संभव नहीं है। इस प्रकार जब दोनों चिंतन-धाराओं की परिकल्पना (Hypothesis) ही अलग है तो किसी भी स्थिति में हमें अलग-अलग ही निष्कर्ष प्राप्त होंगे।

जब भारतीय चिंतन में पुरुषार्थ चतुष्टय का उल्लेख होता है तो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में ‘काम’ का भी उल्लेख तीसरे स्थान पर होता है और जब जागतिक बंधनों से मुक्ति का उल्लेख होता है तो काम, क्रोध, लोभ, मोह में ‘काम’ का उल्लेख सबसे पहले स्थान पर होता है। आशय यह है कि इसे धारण भी किया जा सकता है और इसका त्याग भी किया जा सकता है। भारतीय मन ‘काम’ और ‘प्रेम’ की भावनाओं को अलग करके देखता है।

आधुनिक-युग में बहुत-सी वस्तुओं को देखने का हमारा दृष्टिकोण क्रांतिकारी ढंग से परिवर्तित हुआ है। सबसे बड़ा दृष्टिकोण-परिवर्तन तो यही हुआ है कि उन विषयों पर विचार प्रकट किया जाने लगा है जिन्हें हेय और उपेक्षित समझा जाता था। साहित्यिक बहसों में श्लील-अश्लील, समलैंगिकता, कामुकता तथा स्त्री-विमर्श के विभिन्न आयाम आज सहजता से पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों में स्थान पाने लगे हैं। यह विभिन्न व्यक्तिगत विषयों के प्रति परिवर्तित मानसिकता भी मनोविज्ञान का ही एक अंग है। अपनी पुस्तक ‘मतिराम’ में प्रभाकर श्रोत्रिय

प्रगतिशील कवि त्रिलोचन शास्त्री का एक कथन उद्धृत करते हुए लिखते हैं—‘जहाँ तक उक्त काव्य में अश्लीलता का सवाल है, प्रख्यात प्रगतिशील कवि त्रिलोचन की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं जो उन्होंने रीतियुग की सामाजिकता पर प्रश्नचिह्न लगाने के बावजूद लिखी हैं—‘रीतियुग में रचित प्रेम-काव्य पर भी यहाँ कुछ कहना उचित होगा। कुछ लोगों ने इस काव्य पर अश्लीलता का आरोप लगाया है।’ मेरे विचार से यह आरोप अनुचित है। शृंगार के संयोग-पक्ष के वर्णन को अश्लील मानना अस्वस्थ मानसिकता है, क्योंकि शृंगार के सर्वांगीण और चारु विवरण संस्कृत के महाकवियों ने भी दिए हैं, फिर भी द्विवेदी-युग में रीतिकाव्य की अश्लीलता पर ध्यान दिया जाने लगा। लोगों में नैतिकता के स्थूल रूप का आग्रह इतना बढ़ गया कि कहीं भी नर-नारी जीवन का संगुम्फित विवरण दिखाई नहीं दिया कि अश्लील-अश्लील की गुहार लगाने लगे। शृंगार का स्थायी भाव रति है। इसको अन्य शब्दों में प्रेम कह सकते हैं। प्रेम का प्रभाव मानव-जीवन में विशेष है। यह प्रेम समाज-स्वीकृत हो तो क्या कहना? और समाज मान्य नहीं है तो कुछ को छोड़कर बहुत-से हृदयों को आघातकारी लगेगा। सामाजिक जीवन के संदर्भ में ही प्रेम को प्रतिष्ठा मिलती है, अर्थात् उत्तरदायित्वपूर्ण प्रेम ही भव्य और उत्तम है।”

उपर्युक्त उद्धरण अपेक्षाकृत बड़ा है, परंतु आवश्यक था। इसमें कवि त्रिलोचन शास्त्री ने कई महत्त्वपूर्ण शब्दों का प्रयोग करते हुए रीतिकालीन प्रेम को अपने ढंग से व्याख्यायित किया है। उन्होंने रीतिकालीन प्रेम को एक नया दृष्टिकोण देते हुए लिखा कि—‘नर-नारी जीवन का संगुम्फित विवरण।’ इस ‘संगुम्फित’ शब्द के माध्यम से उन्होंने रीतिकाव्य के प्रेम को विशेष वैधानिकता प्रदान करते हुए इसके अर्थ को और व्यापक बना दिया है। यहाँ यह भी स्पष्ट है कि त्रिलोचन का ‘नर-नारी’ से आशय ‘पति-पत्नी’ से बिल्कुल नहीं है, क्योंकि आगे वे कहते हैं कि यदि यह प्रेम समाज-स्वीकृत और समाज-मान्य नहीं है तो ‘कुछ को छोड़कर बहुत-से हृदयों को आघातकारी लगेगा’। इसका कारण बताते हुए वे आगे कह रहे हैं—‘सामाजिक जीवन के संदर्भ में ही प्रेम को प्रतिष्ठा मिलती है, अर्थात् उत्तरदायित्वपूर्ण प्रेम ही भव्य और उत्तम है।’ ‘सामाजिक जीवन के संदर्भ’, अर्थात् ‘उत्तरदायित्वपूर्ण प्रेम’ का आशय यही हुआ कि दोनों एक ही बातें हैं। प्रश्न यह उठता है कि ‘सामाजिक संदर्भ’ क्या है? क्या धर्म और जाति को दृष्टि में रखकर किया जाने वाला प्रेम ही ‘सामाजिक संदर्भ’ रखता है या वैवाहिक जीवन का प्रेम ही ‘उत्तरदायित्वपूर्ण प्रेम’ है? यहाँ यह माना जा सकता है कि उत्तरदायित्वपूर्ण प्रेम जहाँ एक ओर सामाजिक संदर्भ रखता है, वहीं दूसरी तरफ़ प्रेम-जगत के कुछ अपने भी दायित्व हैं जिनका निर्वहन उसे करना पड़ता है। भारतीय समाज में प्रेम-भावना मात्र व्यक्तिगत स्तर तक सीमित नहीं है। रीतिकाव्य मनःस्तर पर तथा हृदय-स्तर पर भले ही काव्य-जगत् और प्रेम-जगत् की नवीन ऊँचाइयों को स्पर्श कर रहा हो, परंतु सामाजिकता को तोड़ देने की आकांक्षा उसमें कदापि नहीं है। समष्टिगत प्रेम-नियमों के स्थापन पर व्यष्टिगत प्रेम को प्राथमिकता देना आधुनिक विचारों में से एक है। यह रीतिकाव्य का प्रेम-संबंधी आधुनिकबोध है। यह प्रेम सामाजिक दायरे में रहकर, उसे सुरक्षित रखते हुए प्रेम के नए मानदंडों की तलाश करता है।

वस्तुतः हमारे मन में प्रेम का मनोविज्ञान समाज से काफ़ी हद तक चालित-संचालित होता है। ‘मनोवैज्ञानिक और दार्शनिकों की बौद्धिक परिभाषाओं और विश्लेषणों को छोड़कर शैंड ने साहित्यकारों की कृतियों में उल्लिखित प्रेम-प्रसंगों के आधार पर प्रेम का स्वरूप स्पष्ट करने

का प्रयास किया है। उसका कहना है कि ये साहित्यकार जो इस अर्थ में, अधिक बड़े मनोवैज्ञानिक हैं, वे मनोवैज्ञानिकों और दार्शनिकों के तर्कों का समर्थन करते नहीं पाए जाते। उनके वर्णनों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। इनके अतिरिक्त उसमें और भी ऐसे उपादानों का सन्निवेश देखा गया है जिनका अनुसंधान अभी तक नहीं हो पाया है। शैड ने अपने सिद्धांत को पुष्ट करने के लिए चासर, कॉलरिज और स्विफ्ट की रचनाओं से कुछ अंश उद्धृत किए हैं। स्विफ्ट के उद्धरण का अभिप्राय है कि हम लोग प्रेम को एक वासना क्यों कहते हैं? जबकि इसमें अनेक वासनाओं का मिश्रण है। इसमें दुःख-सुख, आशा-निराशा, आनंद-क्लेश-सभी प्रकार की अनुभूतियाँ सम्मिलित हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि स्विफ्ट प्रेम को एक संवेग (सिंगल इमोशन) नहीं मानता। उसने प्रेम में सुख, दुःख, आशा और भय ये चार संवेग सन्निविष्ट किए हैं।¹⁰ शैड, फ्रॉयड के अनुवर्ती मनोवैज्ञानिकों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। वे स्पष्ट रूप से लिख रहे हैं कि 'ये साहित्यकार जो इस अर्थ में, अधिक बड़े मनोवैज्ञानिक हैं, वे मनोवैज्ञानिकों और दार्शनिकों के तर्कों का समर्थन करते नहीं पाए जाते। यह एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष है। वस्तुतः हम जिस भी सिद्धांत के आधार पर साहित्य की व्याख्या करते हैं, वही सिद्धांत साहित्य के मात्र एक पक्ष को समझा पाता है। मार्क्सवादी, अस्तित्ववादी, मिथकीय, फ्रॉयडियन, संरचनावादी, विखंडनवादी, उत्तर-आधुनिकता आदि सामाजिक-राजनीतिक और दार्शनिक विचारधाराएँ साहित्य की संपूर्ण व्याख्या नहीं कर पातीं। इसका यह अर्थ नहीं है कि ये समस्त विचारधाराएँ त्रुटिपूर्ण हैं अथवा असफल हो गई हैं; इसका आशय यह है कि जिस शीघ्रता-तीव्रता से साहित्य परिवर्तित होता है उतनी शीघ्रता-तीव्रता से ये सिद्धांत नहीं परिवर्तित किए जा सकते। 'मानव-स्वभाव' का अध्ययन तो मनोविज्ञान में लगभग सफलतापूर्वक किया जा सकता है, परंतु 'मानव-मन' का अध्ययन एक दुष्कर कार्य है। स्विफ्ट के उदाहरण से शैड ने एक नया निष्कर्ष यह प्रस्तुत किया है कि 'प्रेम में सुख, दुःख, आशा और भय ये चार संवेग' एक साथ उपस्थित रहते हैं। यहाँ 'सुख' को संयोग-शृंगार भी ठीक-ठीक नहीं माना जा सकता और 'दुःख' को वियोग-शृंगार भी नहीं माना जा सकता है।

अब यहाँ 'साहित्य के अपने मनोविज्ञान' के कुछ सिद्धांतों को समझने के लिए उद्धरण उद्धृत किए जा रहे हैं। 'साहित्य के अपने मनोविज्ञान' का आशय यह है कि काव्यशास्त्र में मन के विभिन्न कार्य-व्यापार को समझने के लिए बहुत-से वर्गीकरण किए गए हैं। शृंगार रस में ही मुख्यतः प्रेम-भावनाओं का वर्णन माना जाता है। इसी प्रेम-भावना को विवेचित-विश्लेषित करने के लिए काव्यशास्त्रियों ने शृंगार के भेद-उपभेद आदि बहुत व्यापक रूप में किए हैं। ये सारे भेद वस्तुतः मन के स्वभाव और उसके विज्ञान को समझने के लिए हैं। प्रेम की सारी दशाएँ प्रकारांतर से मन की ही दशाएँ हैं। पहले हम संयोग-शृंगार का वर्गीकरण उद्धृत करेंगे—'संयोग के समय प्रेमानुभूति अपेक्षित है। पंडितराज ने इस तथ्य को स्पष्ट किया है। वे कहते हैं कि 'संयोग' का अर्थ 'स्त्री-पुरुष का एक स्थान पर रहना' नहीं है, क्योंकि एक पलंग पर सोते रहने पर भी, यदि ईर्ष्या आदि हो तो वह विप्रलंभ या वियोग रस ही माना जाएगा। उनके अनुसार 'संयोग' का इस मानसिक ज्ञान किंवा चित्तवृत्ति का पर्याय है कि 'मैं मिला हुआ हूँ' और वियोग यह ज्ञान है कि 'मैं बिछड़ा हुआ हूँ'। अतएव स्त्री-पुरुष के संयोग के समय में प्रेम रहे तो वह 'संयोग' अथवा 'संभोग-शृंगार' कहलाएगा। हिंदी में चिंतामणि की यह परिभाषा अत्यंत सटीक

है—‘जहाँ दंपती प्रीति सों बिलसत रचत बिहार, चिंतामणि कबि सो कहत यों तहँ संयोग-शृंगार।’ (क०क०त०) ¹¹ यहाँ रीतिकाल के आचार्य चिंतामणि त्रिपाठी के लक्षण-ग्रंथ ‘कविकुल-कल्पतरु’ के उदाहरण के माध्यम से पंडितराज के कथन को स्पष्ट किया गया है। ‘परस्पर अवलोकन, आलिंगन, अधरपान, परिचुंबन, प्रभृति नायक-नायिका के पारस्परिक व्यवहार-भेद से संभोग-शृंगार के अगणित भेद होते हैं, लेकिन आचार्यों ने उनका अंतर्भाव इसी एक ‘संभोग’ शृंगार में कर दिया है।’ ¹² भरत ने संयोग-शृंगार के विभावो-अनुभावों के संबंध में यह कहा है—‘संभोग ऋतुरमणीयता, माल्य, अनुलेपन, अलंकार, इष्टजनों का संसर्ग, इंद्रियों के विषय, रम्य भवन, उपवन-गमन, प्रिय के वचनों का श्रवण, उसका दर्शन, उसके साथ क्रीड़ा-लीला इत्यादि विभावों से उत्पन्न होता है, अथच, नयनचातुर्य, भ्रू-विक्षेप, कटाक्ष, ललित एवं मधुर अंग-चेष्टा, आकर्षक वचन इत्यादि अनुभावों से व्यंजित होता है।’ ¹³ इस प्रकार हम देख रहे हैं कि ये समस्त क्रियाएँ-चेष्टाएँ प्रेम के आकांक्षी मन की ही तो हैं। साहित्य में हृदय को प्रेमस्थली माना जाता है और मन जैसी कोई वस्तु मानव-शरीर में नहीं प्राप्त होती। इसी मस्तिष्क से ही सबकुछ नियंत्रित होता है। मन इसी मस्तिष्क की ही दशा-विशेष का नाम है। संयोग की स्थिति में क्या होता है या क्या हो सकता या क्या होना चाहिए? इन सबको सीमांकित करना इस रस-विशेष के लिए एक परिधि निर्धारित करना है। काव्य-रचना में भले ही इन वर्गीकरणों का ध्यान रखा जाए परंतु कवि-हृदय के उन्मुक्त प्रवाह में ये शास्त्रीय अधिनियम बह भी तो सकते हैं।

अब ज़रा प्रेमाधारित इस शृंगार-रस के दूसरे पक्ष वियोग-शृंगार में मन की दशाओं के कुछ उदाहरण से इस साहित्यिक मनोविज्ञान को और विस्तार से समझा जाए। भानुदत्त का कथन है—‘युवा और युवती की परस्पर मुदित पंचेंद्रियों के पारस्परिक संबंध का अभाव अथवा अभीष्ट की अप्राप्ति विप्रलंभ है।’ ¹⁴ यहाँ पंचेंद्रियों शब्द विशेष अर्थ प्रदान कर रहा है। मन इन्हीं पंचेंद्रियों (रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द) का ही केंद्र माना जाता है। ¹⁵ इस प्रकार यदि इन इंद्रियों से संबद्ध कोई भी कार्य-व्यापार होता है, तो वह मनोविज्ञान के रूप में समझा जा सकता है। विप्रलंभ-शृंगार के यूँ तो बहुत भेद शास्त्रों में वर्णित हैं, परंतु यहाँ मात्र उन्हीं का उल्लेख अपेक्षित है जिनका कोई ऐंद्रिक संदर्भ हो। साहित्य के परिभाषागत उद्भरण यहाँ अधिक उपादेय नहीं हैं। ‘वियोग से संबंधित दस कामदशाएँ भी मानी गई हैं—अभिलाष, चिंता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मृति या मरण। कितने ही लोग नौ काम-दशाएँ ही मानते हैं, मरण को नहीं। कितने मूर्च्छा को भी मिलाकर एकादश काम-दशाएँ स्वीकार करते हैं। प्रिय से तन से मिलन की इच्छा अभिलाष है; प्राप्ति के उपायों की खोज चिंता है; सुखदाई वस्तुएँ जब दुःखदाई बन जाएँ तो उद्वेग है; चित्त के व्याकुल होने से अटपटी बातें करना प्रलाप है; जड़-चेतन का विचार न रहना उन्माद है; दीर्घ निःश्वास, पांडुता, दुर्बलता इत्यादि व्याधि है; अंगों का तथा मन का चेतना शून्य होना जड़ता है। अन्य दशाओं के अभिप्राय स्वतः स्पष्ट हैं।’ ¹⁶ अन्य दशाओं में स्मृति, गुणकथन और मरण हैं, यदि मूर्च्छा को भी मानें तो इन चारों का अर्थ अपने अभीष्ट को याद करना, उसके गुणों को कहना, वियोग में ही मृत्यु हो जाना और विरह पीड़ा से मूर्च्छित हो जाना निर्धारित किया जा सकता है।

इस प्रकार हम लोग आधुनिक-युग के मनोविज्ञानी शैंड के द्वारा व्याख्यायित प्रेम-संवेग को समझने के क्रम में भारतीय काव्यशास्त्र के सूक्ष्म वर्गीकरणों के जायजा तक पहुँच गए। शृंग

ने स्विफ्ट के उदाहरण से समझना चाहा था कि 'स्विफ्ट प्रेम को एक संवेग (सिंगल इमोशन) नहीं मानता। उसने प्रेम में सुख, दुःख, आशा और भय—ये चार संवेग सन्निविष्ट किए हैं।' प्रेम के इन चार संवेगों के अतिरिक्त संवेगों की प्राप्तियाँ हमें भारतीय काव्यशास्त्र में होती हैं जैसा कि हमने संयोग और वियोग-शृंगार के उपर्युक्त उदाहरणों से देखा भी। यह साहित्य के मनोविज्ञान का मात्र प्रेमाधारित अति संक्षिप्त विवेचन है। इससे हमें रीतिकालीन प्रेमाभिव्यक्ति को समझने में सहायता मिल सकती है।

कुछ आलोचकों का यह भी मानना है कि एकतरफ़ा प्रेम की प्रवृत्ति भारतीय नहीं है। 'भारतीय काव्य-परंपरा के साथ ही सामाजिक परंपरा की दृष्टि से भी विषम या एकतरफ़ा प्रेम की स्वीकृति नहीं मिली है। हमारी काव्यशास्त्रीय परंपरा में परकीया प्रेम को अत्यधिक विस्तार मिलने के बावजूद एकतरफ़ा प्रेम को असामाजिक मानकर निषिद्ध ठहराया गया है। प्रिय की निर्मम उपेक्षा के बाद भी उससे एकनिष्ठ भाव से प्रेम किए जाना भारतीय प्रेम-पद्धति के नितान्त विरुद्ध है। फ़ार्सी-काव्य में सूफ़ी प्रभाववश इस प्रकार के प्रेम को आदर्श के रूप में स्वीकार किया गया है। घनानंद के साथ ही अधिकांश रीतिमुक्त कवियों पर भी इस प्रेम-पद्धति का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।'¹⁷ यहाँ लल्लन राय स्पष्ट रूप से इस प्रकार की प्रेम-प्रवृत्ति को भारतीय नहीं मान रहे, बल्कि फ़ार्सी-काव्य-परंपरा की प्रवृत्ति मान रहे हैं। ऊपर के विश्लेषण में इस प्रकार के प्रेम की जड़ें भक्ति-प्रेम में तलाश की जा रही थीं। अब जबकि लल्लन राय कुछ अन्य ही मत प्रकट कर रहे हैं तो उपर्युक्त विश्लेषण पर पुनर्विचार करते हुए उसमें किंचित संशोधन की आवश्यकता है। वस्तुतः यदि हम विचार करें कि फ़ार्सी-काव्य-परंपरा में यह प्रवृत्ति कैसे आई होगी तो हमें इसकी जड़ें पुनः भक्ति में दिखाई देंगी। भक्ति के दो प्रमुख मार्गों में निर्गुण और सगुण-मार्ग हैं। निर्गुण में जब अपने अभीष्ट को निराकार मान लिया जाता है तो उससे प्रेम में कोई प्रत्यक्ष उम्मीद नहीं रह जाती। निराकार के प्रति एकतरफ़ा प्रेम ही सम्भव है। फ़ार्सी-काव्य की पृष्ठभूमि में धर्म के नाम पर इस्लाम धर्म और यहूदी इत्यादि में निर्गुण-निराकार का ही आलंबन है, इसलिए फ़ार्सी-काव्य में यह परंपरा निर्गुण-भक्ति से आई होगी। यह निर्गुण-मार्ग भारतीय भक्ति-पद्धति में भी है। इस प्रकार निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है जहाँ भी इस प्रकार की एकपक्षीय प्रेम-प्रवृत्ति का प्राकट्य हो वहाँ इसकी जड़ों को निर्गुण-भक्ति से ही उद्भूत मानना चाहिए।

अस्तित्ववादी दर्शन की यह उक्ति कि—'व्यक्तित्व की जिस स्वाधीनता से प्रेम के आकर्षण और भावावेग का जन्म होता है, प्रेम अपनी अंतिम परिणति में उसकी बलि चाहता है, इस तरह वह एक अंतर्विरोधी संवेदना है।'¹⁸ इस उक्ति से स्पष्ट हो रहा है कि प्रेम का प्रारंभ स्वतंत्र व्यक्तित्व में होता है; यहाँ प्रेम का अर्थ व्यक्तिगत स्तर के दैहिक प्रेम के संदर्भ में ही है। किसी प्रकार से स्वयं को परतंत्र समझनेवाला, स्वयं को रूढ़ियों और परंपराओं में जकड़ा हुआ अनुभव करने वाले व्यक्ति एवं समाज कभी प्रेम नहीं कर सकते। यदि किसी व्यक्ति अथवा समाज में प्रेम का उद्रेक होता है तो यह उसके दासता-भाव से मुक्ति का संकेत है। अस्तित्ववाद का संकेत इसी ओर है कि हमारे व्यक्तित्व में निहित स्वतंत्रता की प्रवृत्ति हमें प्रेम-मार्ग पर ले जाती है और उपरांत में हम अपने प्रिय की स्वतंत्रता का अतिक्रमण करते हैं अथवा हम स्वयं अपनी स्वतंत्रता की 'बलि' चढ़ा देते हैं। यह प्रेम का अंतर्विरोध है। वस्तुतः जिसे हम स्वतंत्रता

समझते हैं, वह हमारी एकांतिक व्याकुलता है। प्रेम 'दो' को 'एक' करने की प्रक्रिया है, जैसा कि ऊपर के विवेचनों में इस तथ्य को स्पष्ट किया जा चुका है। 'प्रेम अपनी अंतिम परिणति में उसकी बलि चाहता है', जैसे निष्कर्षों पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। स्वतंत्रता की बलि प्रकारांतर से प्रिय का अपने में ओर अपने का प्रिय में एकमेव होना है। यह आत्म-समर्पण जैसा है।

उत्तर-आधुनिक विचारों के प्रसिद्ध व्याख्याकार सुधीश पचौरी का एक कथन उद्धृत किया जा रहा है। इन्होंने अपने एक विस्तृत लेख में मिशेल फूको के सेक्सुअलिटी-सिद्धांतों से रीतिकाल को पुनर्व्याख्याति किया है। लेख का नाम है—'रीतिकाल में फूको विचरण-2, (रीतिकाल का नया नाम—'यौनता निर्माण' का काल)' इसमें वे लिखते हैं—'रीति के केंद्र में शृंगार का होना सिर्फ रससिद्धांत के शृंगार का अध्ययन नहीं कहा जा सकता, बल्कि 'यौनता का अध्ययन' भी कहा जा सकता है। शृंगार के भेदों में संभोग-शृंगार को संयोग-शृंगार कहना वियोग की तुलना में उतना नहीं जितना संभोग से निकलनेवाली यौनता को बचाने में निहित है। संभोग-शृंगार को हल्का मानना, शृंगार की बहुत-सी चेष्टाओं को अश्लील कह डालना और विरह को महान् बताना भी यौनता को दबाने का तरीका है, जो कविता में रस-सिद्धांत के बाद के विमर्शों में और इतिहास में एक साथ मिलता है। यदि शृंगार में हम यौनता का प्रवेश करें तो शायद बेहतर नतीजे पर पहुँच सकते हैं; तभी शृंगार पर आया बलाघात नए अर्थ से मंडित हो सकता है। शृंगार की शिक्षा को यौनता की शिक्षा कहा जा सकता है। कई मानी में रीतिकाल ने यह काम किया। इस तरह यौनता की शिक्षा के लिए वह एक पृष्ठभूमि का पाठ्यक्रम जैसा नज़र आता है।'¹⁹ सुधीश पचौरी के उपर्युक्त विचारों से सहमत और असहमत होना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना महत्वपूर्ण यह है कि रीतिकाव्य को इन दृष्टियों से देखने की संभावनाएँ इसी के अंदर विद्यमान हैं। हम जिस दिशा में रीतिकाव्य को लेकर यहाँ विमर्शरत हैं, सुधीश पचौरी उसे पूरे 'पाठ्यक्रम' की संज्ञा से अभिहित कर रहे हैं। यद्यपि कि सुधीश पचौरी विचारों से सहमत होना कुछ जल्दबाज़ी होगी, लेकिन इसका आशय यह भी नहीं हुआ कि असहमति प्रकट की जाए। असहमति प्रकट करने पर तो इस दिशा में सोचना ही बंद हो जाएगा। सुधीश पचौरी ने रीतिकाल के संदर्भ में इस नए आयाम का जो सूत्रपात किया है, उस पर आगे भी सोचा जाना चाहिए।

सौंदर्यानुभूति अर्थात् हृदयोन्मुखी जागरूकता

सौंदर्य की अनुभूति करना भी मन ही का कार्य-व्यापार है। जिस प्रकार प्रेम का धरातल मन की विविध रंगी भावभूमि होती है, उसी प्रकार सौंदर्य का उद्भावन-उद्भासन मन के ही नैसर्गिक उपवन से होता है। सौंदर्यबोध का क्षेत्र अतिव्यापक है; इसका हस्तक्षेप जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में है। हम हर स्थान पर, हर विषय में, हर कार्य में अपने सौंदर्यबोध और चेतना के कारण ही स्थान पाते हैं, पहचाने जाते हैं। यहाँ सौंदर्य के काव्य-संदर्भ का मनोविज्ञान के आधार पर विचार-विमर्श अपेक्षित है, वह भी रीतिकाव्य के विशेष संदर्भ में। 'काव्य विषयक सौंदर्य और साधारणीकरण की अवधारणाओं की समीक्षा' नामक अपने लेख में सुप्रसिद्ध दर्शन-विचारक यशदेव शल्य लिखते हैं—'काव्य और सौंदर्य' को पर्यायवाची के रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है, कम-से-कम सौंदर्य को काव्य का सर्वस्व तो माना जाता ही है।'²⁰ यह विचार 'काव्य' शब्द को एक नवीन अर्थ-विस्तार प्रदान कर रहा है और 'सौंदर्य' शब्द की नई परिभाषा निर्धारित कर

रहा है। अगर हम इस पर्यायवाची-निर्धारण को स्वीकार कर लें तो हम साहित्येतर और काव्येतर किसी भी विषय-वस्तु की सौंदर्य-प्रशंसा के क्रम में कहेंगे कि अमुक वस्तु बहुत 'काव्यात्मक' है न कि 'सौंदर्ययुक्त' है या 'सुंदर' है। हम इस पर्यायवाची से यह संकेत भी पा रहे हैं कि काव्य से सदैव सौंदर्ययुक्त होने की अपेक्षा की जाती है—चाहे वह सौंदर्य भाव-स्तर पर हो, चाहे कला-स्तर पर।

सौंदर्य की अभिव्यक्ति के संबंध में कुछ और भी स्थितियाँ बनती हैं। जब कवि अथवा कलाकार सृजन को प्रस्तुत करता है तो उसमें निहित सौंदर्यानुभूति अलग-अलग स्तरों की होती है। 'सौंदर्यानुभव कलाकार तथा निरीक्षक, दोनों को ही भिन्न-भिन्न अवस्थाओं, भिन्न-भिन्न समयों, भिन्न-भिन्न स्तरों पर होता है, जितनी तीव्र हमारी संवेगात्मक अनुकूल अनुक्रिया (रेस्पांस) होगी, उतना ही महत्तर सौंदर्यबोधात्मक मूल्य होगा। सौंदर्यानुभव में संवेग के प्रवेश से अक्सरहा सौंदर्यात्मक मूल्य और सुख (प्लेज़र) में तादात्म्य होने की ग़लतफ़हमी फैल गई है। यह सत्य है कि सौंदर्य हमारी इच्छाशक्ति को भी प्रभावित करता है, किंतु (जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं कि) सुख तो मूल्यानुभव तथा सृजन-तीव्रता द्वारा संचारित समलय (हार्मोनियस) और जीवंतता की प्रक्रियाओं के परिणाम हैं। इसलिए सुख सौंदर्यबोधात्मक मूल्य का साध्य न होकर एक साधन मूल्य है और यह मान लेना ही—कि सभी कलाओं का लक्ष्य केवल सुखभोग है—असंख्य भ्रांतियों में उलझना है।²¹ इस प्रकार रमेश कुंतल मेघ का मानना है कि 'सुख सौंदर्यबोधात्मक मूल्य का साध्य न होकर एक साधन मूल्य है।' हमें सुखानुभूति को सौंदर्यानुभूति से नहीं जोड़ना चाहिए। सौंदर्यबोध का होना सुख के साधन के रूप में है, न कि साध्य रूप में। उपर्युक्त कथन के प्रारंभ में कहा जा रहा है 'सौंदर्यानुभव कलाकार तथा निरीक्षक दोनों को ही भिन्न-भिन्न अवस्थाओं, भिन्न-भिन्न समयों व भिन्न-भिन्न स्तरों पर होता है।' इसमें यह ध्वनित हो रहा है कि सौंदर्य का अनुभव कोई निरपेक्ष अनुभव नहीं है। स्थान और समय के अनुसार इसका बोध परिवर्तित हो सकता है। यहाँ कलाकार और निरीक्षक की अवस्थाओं और समय का उल्लेख हो रहा है। कलाकार किसी समय-विशेष और किसी अवस्था-विशेष में सृजन करता है, जबकि निरीक्षक दूसरे समय और दूसरी अवस्था में उसका निरीक्षण करता है जिसके आधार पर वह विषय-वस्तु की अनुभूति करता है। यहाँ एक और प्रश्न उठता है कि कलाकार जिस सौंदर्य की अनुभूति करता है, आवश्यक नहीं कि उसी क्षण उसको कला-रूप में अथवा सृजन-रूप में परिवर्तित ही कर दे। वह अनुभूति दिनों, महीनों अथवा वर्षों बाद कृति रूप धारण कर सकती है। इस प्रकार मूल अनुभूति की अवस्था और समय, परिवर्तित अवस्था और समय में कृति का रूप धारण करते हैं। क्या इस प्रक्रियात्मक अंतराल का कोई प्रभाव अनुभूति की अभिव्यक्ति में होता है? दूसरा प्रश्न यह भी है कि एक कलाकार अपनी ही किसी कृति को समय व्यतीत होने पर परिवर्तित दृष्टिकोण से मूल्यांकित करने लगता है, मानो कुछ दिन बाद कलाकार स्वयं ही निरीक्षक की भूमिका में आ जाता है। इसी प्रकार निरीक्षक भी हो सकता है; एक ही कृति का मूल्यांकन अलग-अलग समय में अलग-अलग प्रकार से करे। हम एक ही कविता को कई बार पढ़ते हैं और प्रत्येक बार उसके पाठ में कुछ नया प्राप्त करते हैं। रीतिकालीन कविता में निहित सौंदर्यबोध का मूल्यांकन करने में अथवा उसका अवगाहन करने के क्रम में हमारे समक्ष भी यही अवस्था और समय का अंतर व्यतिरेक उत्पन्न करता है। निरीक्षक की कल्पनाशीलता यदि प्रबल

हुई तो वह कवि अथवा कलाकार के स्तर तक पहुँच सकता है। कभी-कभी तो सृजन के उपरांत कवि अथवा कलाकार चमत्कृत हो जाता है कि यह मेरा ही सृजन है अथवा किसी और का है? रूपवादी आलोचना तो यहाँ तक सौंदर्यानुभूति का वर्गीकरण करती है कि एक ही समय में, एक ही नाटक के मंचन को थियेटर में बैठे दो दर्शक देख रहे हैं—एक दर्शक-दीर्घा के बाएँ किनारे पर बैठा है और दूसरा दाएँ किनारे पर है—तो दोनों के अनुभव में अंतर होगा। हम जब सौंदर्य का अनुभव करते हैं तो हमारे भीतर विभिन्न प्रकार के संवेग उत्पन्न होते हैं। हमें इन संवेगों से यदि सुखानुभूति होती है तो इस 'गलतफ़हमी' में नहीं आना चाहिए कि सौंदर्यानुभूति सुख प्राप्त करने हेतु है।

'सौंदर्य के साथ कांट ने सौंदर्यबोधजन्य की चर्चा भी की है। आनंद दो प्रकार का होता है—प्रयोजन सापेक्ष तथा प्रयोजन निरपेक्ष। कांट सर्वप्रथम आनंद को वैयक्तिक अनुभूति स्वीकारते हैं। एक आनंदानुभूति सुंदर वस्तु की अनुभूति से उत्पन्न होती है। यह अनिवार्य रूप से व्यक्तिगत होता है। वस्तु के रूपों एवं मस्तिष्क के तादात्म्य से उत्पन्न यह आनंद एकतरफ़ा होता है। इससे हमारी तृष्णाओं की पूर्ति होती है जबकि एक आनंद वह भी होता है जो हमारी इच्छा से स्वतंत्र हो, अर्थात् कोई वस्तु हमारे आनंद का कारण होकर भी हमारी तृष्णा नहीं जगाती। यहाँ आकर कांट ने कहा है कि सौंदर्यानुभूति का आनंद पशु-जगत् से भिन्न होता है। स्वतंत्र आनंद मनन के द्वारा प्राप्त होता है जैसे—संगीत-श्रवण आदि। कांट के अनुसार यह आनंद निष्पक्ष होता है, उसका वास्तविक वस्तु से संबंध नहीं होता, इसलिए यह निःस्वार्थ होता है। इच्छायुक्त आनंद में स्वामित्व एवं मेरा की कामना उत्पन्न होती है, इसलिए वह स्वतंत्र आनंद नहीं है। कांट की चिंतन-प्रक्रिया आनंदानुभूति की निष्प्रयोजनता को ही सिद्ध करती है।²² इस उद्धरण में एकसाथ कई महत्वपूर्ण तथ्य और कथ्य हैं। 'आनंद दो प्रकार का होता है—प्रयोजन सापेक्ष और प्रयोजन निरपेक्ष। जब आनंद की अनुभूति प्रयोजन सापेक्ष होती है तब उसे ही हम व्यक्तिगत स्तर का आनंद कह सकते हैं। जब आनंद प्रयोजन निरपेक्ष होता है तब स्थिति अलग होती है। कांट के अनुसार—'यह आनंद निष्पक्ष होता है, उसका वास्तविक वस्तु से संबंध नहीं होता, इसलिए यह निःस्वार्थ होता है।' यहाँ विचारणीय बिंदु यह है कि क्या एक ही व्यक्ति में ये दोनों प्रकार के सौंदर्यबोध नहीं हो सकते? अथवा एक ही विषय-वस्तु के प्रति ये दोनों अलग-अलग पक्ष नहीं प्रस्तुत कर सकते? जैसे, जब कलाकार किसी प्रयोजन में आबद्ध होकर कृति का सृजन करता है तो उसे प्रयोजन सापेक्ष सौंदर्यबोध का आनंद माना जा सकता है। यहाँ प्रयोजन का अर्थ 'वस्तु के रूपों एवं मस्तिष्क के रूपों के तादात्म्य से उत्पन्न एकतरफ़ा आनंद' है। किस रूप की वस्तु और किस प्रकार के विषय का तादात्म्य किस प्रकार के मस्तिष्क से होगा, यह कहा नहीं जा सकता। कांट इसी व्यक्तिगत तादात्म्य की प्रक्रिया को ही 'आनंद की वैयक्तिक अनुभूति' मानते हैं। हम इस बिंदु पर विचार कर रहे थे कि एक ही व्यक्ति में आनंद की दोनों स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। कोई भी रचनाकार जब तक सृजन-प्रक्रिया में रहता है, तब तक भले ही 'आनंद की वैयक्तिक अनुभूति' के स्तर पर रहे, परंतु एक बार सृजन-प्रक्रिया से बाहर होने पर वह स्वयं भी अपनी कृति से प्राप्त होनेवाले आनंद के प्रति प्रयोजन निरपेक्ष हो जाता है। जिस अन्य प्रकार (प्रयोजन निरपेक्ष) के आनंद का उल्लेख कांट कर रहे हैं वह 'स्वतंत्र आनंद मनन के द्वारा प्राप्त होता है। कांट सौंदर्य से प्राप्त होनेवाले उसी आनंद को अधिक महत्त्व देते हैं जो निष्प्रयोजन हो।

‘शॉपेनहॉवर (1788-1860) का मत था कि प्रकृति और कला-दोनों ही हमें आनंद प्रदान करती हैं, पर अंतर यह है कि कला और काव्य हमें प्रकृति के रहस्यों को समझाने में सहायता पहुँचाते हैं। कलाकार हमें वस्तुओं को देखने की दृष्टि प्रदान करता है। वह एक प्रकार से सौंदर्यानुभूति प्रदान करता है और हमारा सुंदर वस्तु के साथ तादात्म्य हो जाता है। हम अपना व्यक्तित्व खो देते हैं। यह सौंदर्यानुभूति रसानुभूति ही है जिसमें भारतीय काव्यशास्त्रियों ने साधारणीकरण की स्थिति मानी है, जिसके होने पर ही रस का आस्वादन होता है।²³ शॉपेनहॉवर के अनुसार ‘कलाकार हमें वस्तुओं को देखने की एक दृष्टि प्रदान करता है’। इस कथन के उदाहरण में यदि हम रीतिकाव्य को प्रस्तुत करें तो एक नवीन निष्कर्ष की आशा की जा सकती है। यदि हम उसे दरबारी व्यवस्था और सामंती समाज से जोड़कर बिल्कुल न देखें; उसे नारी-सौंदर्य और शृंगार-विषयक काव्य-परंपरा का एक मौलिक अध्याय मानते हुए पढ़ें, प्रेम काव्य की परंपरा नवीन उपलब्धि मानकर पढ़ें; तो क्या उसका आनंद कम हो जाएगा? हमें कवि की कल्पना में निहित सौंदर्य का निरीक्षण करना चाहिए। जैसा कि ऊपर विवेचन किया जा चुका है कि सौंदर्य तो कल्पना में ही है। रीतिकाव्य में जिस प्रकार प्रेम-दशाओं एवं रूप-सौंदर्य के वर्णन देखने को मिलते हैं, उनका एक अपना मूल्य है। हम बिना किसी धार्मिक प्रयोजन के; बिना किसी विचारधारा विशेष से आक्रांत हुए विशुद्ध प्रेम-चेतना और सौंदर्य का आनंद प्राप्त कर सकते हैं और यह निष्प्रयोजन आनंद होगा। यहाँ एक अन्य उदाहरण भी विषय-वस्तु को समझने में सहायक हो सकता है। भक्तिकाल में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित ‘रामचरितमानस’ का सर्वाधिक उल्लेख किया जाता है। सूरदास के काव्य में धर्म-तत्त्व उतने नहीं हैं जितने कि तुलसी-साहित्य में हैं। कबीरदास के काव्य में धर्म-निरपेक्ष ज्ञान और जायसी के काव्य में अन्योक्ति के तहत हम भले ही भक्ति अथवा आस्था के कोई सूत्र तलाश करें अन्यथा उनका प्रमुख महाकाव्य ‘पद्मावत’ अपनी समासोक्ति में प्रेम-काव्य ही है। यदि हम सूरदास और तुलसी के काव्य में निहित कथावस्तु को सत्य पर आधारित न भी मानें तो भी उसका साहित्यिक मूल्य कम नहीं हो जाता। तुलसीदास ने जिस प्रकार की शैली में कल्पना को प्रस्तुत किया है, वह अधिक महत्त्वपूर्ण है। यहाँ कल्पना की सुंदरता अधिक महत्त्वपूर्ण है। कोई भी काव्य मात्र अपनी धार्मिक विषय-वस्तु के ही कारण साहित्य-परंपरा में स्थान नहीं पा सकता। यदि ऐसा होता तो जायसी को कबीर और सूर-तुलसी की परंपरा में मानते हुए भक्तिकाल का एक प्रमुख स्तंभ माना जाता। सूरदास और तुलसीदास कवि पहले हैं, भक्त बाद में हैं। उनकी कल्पना-प्रवणता उनकी भाव-प्रवणता से अधिक है।

शॉपेनहॉवर कह रहे हैं ‘कलाकार हमें वस्तुओं को देखने की एक दृष्टि प्रदान करता है। वह एक प्रकार से सौंदर्यानुभूति प्रदान करता है और हमारा सुंदर वस्तु के साथ तादात्म्य हो जाता है। हम अपना व्यक्तित्व खो देते हैं।’ प्रत्येक सौंदर्य बोध-युक्त व्यक्ति में अपने व्यक्तित्व के तिरोहित हो जाने का यह भाव निहित होता है। जिस व्यक्ति में सौंदर्यबोध-जन्य आनंद को प्रयोजन निरपेक्ष होकर ग्रहण करने की पात्रता होती है उसका व्यक्तित्व कलाकार के दृष्टिकोण से तादात्म्य स्थापित करते हुए खो जाता है। हम जिस प्राकृतिक वातावरण में रहते हैं उसी को जब कवि-दृष्टि से देखते हैं तो उसके सौंदर्य से हमें आनंद की प्राप्ति होती है क्योंकि-‘प्रकृति स्वयं भी सौंदर्यरूपा होती है। इसलिए कवियों ने उसका आलंबन रूप ग्रहण किया, चित्रकारों ने

भूचित्र बनाए। चित्रकला में जो 'कोण' था, काव्य में वही 'दृष्टिकोण' हो गया। वाल्मीकि, कालिदास और श्रीधर पाठक ने विशिष्ट दृष्टिकोणों से प्रकृति को देखा है तो सेनापति, प्रसाद, निराला और नागार्जुन ने भिन्न दृष्टिकोणों से। इसी प्रकार वॉन गाग, टर्नर, रैंब्रा, रुइसाडेटल, मेनेट, पाल क्ली के भूचित्रों में कोणों का अंतर है और ये सभी मिलकर प्रकृति के सौंदर्यशीलनकारी रूप को प्रस्तुत करते हैं।²⁴ प्रकृति का अपना एक सौंदर्य है। चित्रकार उसे अपने ढंग से चित्रित करता है और काव्यकार उसे अपने ढंग से चित्रित करता है। यदि हम यह कहें तो कदाचित् असत्य न होगा कि सौंदर्य-चेतना की प्राथमिक शिक्षा प्रकृति की सौंदर्यानुभूति से ही प्राप्त होती है। ऐसा वैश्विक स्तर पर भी माना जा सकता है, क्योंकि प्रकृति का विस्तार तो सर्वत्र है और चिरनवीन भी है। एक बालक सर्वप्रथम प्राकृतिक उपादानों को ही देखकर विस्मित होता है, चाहे वे पशु-पक्षी हों, चाहे फूल-पौधे हों, चाहे तारे-चाँद-सूरज हों। यदि किसी कवि ने अपने काव्य में प्रकृति का वर्णन नहीं किया है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि उसने प्रकृति का अवलोकन ही नहीं किया है। उसके अन्तर्मन पर कहीं-न-कहीं प्रकृति का प्रभाव तो रहता ही है। कोई भी कवि प्रकृति को उपेक्षित करके बड़ा कवि नहीं बन सकता।

'सौंदर्य मानव-मस्तिष्क के लिए प्रमुख भोग्य पदार्थ है। पेट की भूख से तृप्त हो मानव सौंदर्य की ओर दौड़ता है और मानसिक क्षुधा की तृप्ति करना चाहता है। मानस की भूख पेट की भूख से किसी प्रकार कम नहीं है। इसकी तृप्ति के अभाव में वह या तो पशु की उपाधि से भूषित करने योग्य होता है या जड़ अथवा पागल कहलाने का अधिकारी। सौंदर्य-दृष्टि मानव और पशु का विभेदक गुण है। यदि सौंदर्य की ओर किसी का मन आकर्षित नहीं हुआ तो समझना चाहिए कि इस मनुष्य के मन में विकार है। उसका मन या तो क्रियाशील नहीं या रुग्ण है। रुग्ण मनुष्य भी सौंदर्य से प्रभावित होता है और उसको आस्वादता देता है। सौंदर्य रोग का कभी-कभी उपचार भी बन जाता है।²⁵ यह स्वाभाविक-सी बात है कि मनुष्य अपनी आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के उपरांत अपने मानस में सौंदर्य की भी तृप्ति चाहता है। पेट की भूख के अतिरिक्त मनुष्य की मानसिक भूख भी होती है। हमें सौंदर्य को इस आवश्यकता के रूप में भी देखना चाहिए। डॉ० दुर्गाप्रसाद ओझा के अनुसार—'सौंदर्य के प्रति आकर्षण मानव-मन की मूल वृत्ति है।'²⁶ सौंदर्य की कामना हमारे मन की भी वृत्ति है और मस्तिष्क की भी प्रवृत्ति है। यह एक शारीरिक आवश्यकता की तरह है। जिस प्रकार मनुष्य अपनी भूख पर नियंत्रण नहीं कर सकता उसी प्रकार अपने मस्तिष्क की सौंदर्य-पिपासा को भी तृप्त किए बिना नहीं रह सकता। इस दृष्टिकोण से यदि हम देखें तो भक्तिकाल के कवियों ने अपनी भक्ति-भावना के साथ-साथ सौंदर्य-तत्त्वों का भी पर्याप्त ध्यान रखा है। हम उन्हीं भक्त-कवियों को अधिक महत्त्व देते हैं जिनके काव्य में विषय-वस्तु सौंदर्य-समृद्ध होकर प्रस्तुत हुई है। ऐसा भक्त-कवियों द्वारा स्वाभाविक रूप से हुआ है। वस्तुतः यहाँ फिर क्रोचे का ही सिद्धांत प्रासंगिक हो रहा है और हम कह सकते हैं कि ईश्वर-भक्ति विषयक काव्य अपनी सौंदर्यचेतना के कारण ही जनमानस को स्वीकार हो पाता है। रीतिकवियों ने भी प्रेम और सौंदर्य के उन्हीं विषयों को स्पर्श किया है जो काव्य-परंपरा में युगों-युगों से चले आ रहे थे, परंतु इनका प्रस्तुतीकरण भिन्न था। 'पेट की भूख से तृप्त मानव सौंदर्य की ओर दौड़ता है', कदाचित् इसलिए राजाश्रयों में रहने वाले कवियों ने सौंदर्य-समस्या, शृंगार-निर्णय, रस-विमर्श, अलंकार-निर्णय पर विमर्श किया है। यह एक

मनोवैज्ञानिक घटना भी है। हमारा मन अपने बहुआयामी स्वरूप की बहुभाँति तृप्ति चाहता है।

‘प्रायोगिक मनोविज्ञान के अनुसार कभी-कभी ‘सुंदर’ रुचि-निर्भर होता है, अर्थात् कौन वस्तु सुंदर है—यह दृष्टा की रुचि पर निर्भर करता है। इस तथ्य को हम दो दृष्टियों से समझ सकते हैं। पहली बात यह है कि किसी वस्तु के प्रति व्यक्ति की प्रत्यर्थता (रेस्पॉस) उसके आसंग, संगति, वातावरण और अभ्यास पर निर्भर करती है। इसलिए एक ही वस्तु के प्रति विभिन्न आसंग, संगति, वातावरण और अभ्यास में पले हुए व्यक्तियों की प्रत्यर्थताएँ भी भिन्न होती हैं। व्यक्ति की यह प्रत्यर्थता ही वस्तु के प्रति नंदतिक आकर्षण अथवा सौंदर्यानुभूति पैदा करती है। इसलिए यह सिद्ध होता है कि ‘सुंदर-असुंदर’ की परख व्यक्ति के उस रुचि-परिवेश पर निर्भर करती है, जो आसंग, संगति, वातावरण और अभ्यास की सापेक्षता में उसकी प्रत्यर्थता का निगमन करता है, अर्थात् कौन वस्तु सुंदर है—यह दृष्टा की प्रत्यर्थता की प्रणाली पर निर्भर करता है।²⁷ यहाँ प्रायोगिक मनोविज्ञान के माध्यम से डॉ० कुमार विमल सौंदर्य को दृष्टा की रुचि पर निर्भर मान रहे हैं। आगे वे इस रुचि-निर्धारण की स्थितियों-परिस्थितियों को भी स्पष्ट कर रहे हैं और उसके घटकों को चिह्नित कर रहे हैं। किसी भी दृष्टा की रुचि उसके आसंग (अर्थात् लगाव, आसक्ति, साथ आदि)²⁸ संगति, वातावरण और अभ्यास पर निर्भर होती है। हम जिस प्रकार की पृष्ठभूमि से आते हैं, उसी प्रकार की प्रतिक्रिया देते हैं। कोई भी इतिहासकार अथवा आलोचक अपने संस्कारों से मुक्ति नहीं पा सकता। ‘एक आलोचक के रूप में मेरी सबसे बड़ी मुश्किल अपने संस्कारों से संघर्ष करना है’ नामक साक्षात्कार में सुप्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह जी कहते हैं—‘मुझे खास तरह का साहित्य पढ़ने से बने हुए पूर्व निर्धारित संस्कारों से निरंतर लड़ना पड़ा।²⁹ प्रकाश मनु को दिए इस साक्षात्कार में आगे वे कहते हैं—‘मेरे लिए सबसे बड़ी मुश्किल यह थी कि मुझे अपने-आप से, अपनी साहित्यिक अभिरुचियों से गहरा संघर्ष करना पड़ा।³⁰ इस प्रकार जब एक आलोचक जो कि प्रबुद्ध चेतना से युक्त है, उसके अंदर अपने ‘पूर्व निर्धारित संस्कारों’ को लेकर निरंतर लड़ाई चलती रहती है और अपनी ‘साहित्यिक अभिरुचियों’ को लेकर संघर्ष करना पड़ता है तो सामान्य भावक में क्या स्थिति होती होगी। प्रबुद्ध होने के कारण नामवर सिंह जैसे आलोचक अपने भीतर चलनेवाले इस द्वंद्व और संघर्ष को पहचान लेते हैं जबकि अन्य प्रत्यर्थक अपने आभ्यंतरिक संघर्षों से अनजान जल्द ही कोई निर्णय प्रस्तुत कर देते हैं। ‘सुंदर-असुंदर की परख व्यक्ति के उस रुचि-परिवेश पर निर्भर करती है, जो आसंग, संगति, वातावरण और अभ्यास की सापेक्षता में उसकी प्रत्यर्थता का नियमन करता है।’ इसके अतिरिक्त सौंदर्य के निर्धारण में यह भी बात महत्वपूर्ण होती है कि हमारी प्रतिक्रिया की प्रक्रिया क्या है। रीतिकाव्य के कलात्मक तत्त्वों के सौंदर्य-निर्धारण में अथवा रीतिकाव्य के भावात्मक पक्ष का मूल्यांकन करने के क्रम में हम जो भी निर्णय देते हैं वह हमारी व्यक्तिगत राय भी हो सकती है अथवा एक वर्ग-विशेष की राय भी हो सकती है।

अनुभूतिपरक अभिव्यक्ति अर्थात् परिधिबद्ध केंद्रीयता

अभिव्यक्ति की क्षमता एवं साधनों की सीमा निर्धारित होती है। यद्यपि कि यह स्थान-स्थान पर परिवर्तित एवं नवीन प्रतीत होती है, परंतु उसका यह नवीन दिखना किसी वृत्त की परिधि पर चलने के समान होता है। एक केंद्र-बिंदु के चारों ओर ही हमारी प्रेम-चेतना और सौंदर्य-चेतना गतिशील होती है। इस अभिव्यक्ति की परिधि पर कवि की मानसिकता, उसकी

स्थिति-परिस्थिति, साहित्य की बाध्यताएँ तथा विषय-वस्तु की अपनी सीमाएँ प्रमुख रूप से आती हैं।

अपने लेख 'देह की तरफ़ झुकी हुई आत्मा' में नंदकिशोर नवल लिखते हैं—'कविता पर कई तरफ़ से ख़तरे आते रहे हैं, कभी नीतिज्ञों की तरफ़ से और कभी राजनीतिज्ञों की तरफ़ से। नीतिज्ञ कविता को धर्म और नीतिशास्त्र का अनुचर बना देना चाहते हैं और राजनीतिज्ञ राजनीति का। इनकी दृष्टि में कविता का कोई अपना अस्तित्व नहीं। उसकी कोई अपनी दुनिया नहीं।'³¹ नंदकिशोर नवल यहाँ कविता के 'अपने अस्तित्व' और उसकी 'अपनी दुनिया' का संकेत कर रहे हैं। नीतिज्ञ कविता में उन तत्त्वों की तलाश करते हैं जो धर्म इत्यादि परंपरागत विषयों से संबंध रखते हैं। इसके विपर्यय में राजनीतिक विचारधारा से अनुप्राणित आलोचक कविता में राजनीति का पुट चाहते हैं, भले ही वह लक्षणा और व्यंजना में ही क्यों न हो। यहाँ नीतिज्ञ के विचार कविता को किस ओर ले जाना चाहते हैं यह तो स्पष्ट हो रहा है, परंतु राजनीतिज्ञों की मनशा थोड़ा और स्पष्ट होने की अपेक्षा कर रही है। इतना तो स्पष्ट है कि नंदकिशोर नवल का राजनीतिज्ञों से आशय यहाँ कविता में राजनीतिक विचारों के समावेश कराने की अपेक्षा रखनेवालों से है। आज की समकालीन हिंदी-कविता में जो राजनीतिक पक्षधरता अथवा विचारधारा दिखाई देती है उसका मुख्य रूप से प्रगतिवादी विचारधारा के विधिवत् प्रारंभ 1936 ई० के उपरांत समावेश हुआ। यहाँ यह स्पष्ट करना इसलिए भी आवश्यक था कि रीतिकाव्य को भी राजनीतिक संरक्षण प्राप्त था। दोनों ही युग (रीतिकाव्य एवं प्रगतिवादोत्तर) राजनीति से जुड़े रहे, लेकिन दोनों का स्वरूप अलग-अलग है। रीतिकाव्य में राजनीतिक संरक्षण प्राप्त होते हुए भी कविता का विषय सुरक्षित रहा (यहाँ रीतिकाव्य से आशय लक्षणग्रंथों और रीतिबद्ध-रीतिमुक्तकाव्य से है, न कि प्रशस्ति-काव्य से है)। इधर प्रगतिवाद से काव्य में जो राजनीतिक चेतना आई, उसमें कवि तो राजनीतिक संरक्षण में नहीं थे, परंतु कविता का विषय परिवर्तित हो गया। यदि सीधे-सीधे कहें तो रीतिकाल में कवि राजनीति से संबंधित था और आधुनिक-काल में कवि और कविता दोनों हो गए, बल्कि कविता कुछ अधिक ही राजनीति के प्रभाव में आ गई। यहाँ यदि विचार किया जाए तो लगभग दो विरोधी निष्कर्ष निकल रहे हैं। पहला निष्कर्ष तो यह कि आधुनिक-युग में हम जिस प्रकार कवि और कविता दोनों को ही राजनीतिक चेतना से युक्त देख रहे हैं, इसका सूत्रपात रीतिकाल में हो चुका था। जब कवि राजनीति के सान्निध्य में रहने लगे थे तो कितने दिन कविता विलग रह पाती। जब राजनीति का स्वरूप राजतंत्र से लोकतंत्र हुआ तो कवि के सान्निध्य का प्रकार भी बदल गया। दूसरा निष्कर्ष जो इसके बरअक्स माना जा सकता है कि प्रगतिवाद के राजनीति-सान्निध्य से कविता का नुकसान हुआ। रीतिकाल में तो कविता राजनीति से विलग थी इसलिए वह तत्कालिक प्रतिक्रिया मात्र बनकर नहीं रह गई। कवि जब तक राजनीति से संबद्ध रहता है, वह कविता के स्तर या अन्य रूपों में अपनी राजनीतिक सक्रियता जारी रख सकता है, लेकिन उसकी मृत्यु के उपरांत कवि का व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है और मात्र 'कविता का व्यक्तित्व आगे बढ़ता है'। रीतिकवि समाप्त हो गए मगर उनकी कविता जीवति है। उनके आश्रयदाताओं के साथ ही प्रशस्ति-काव्य भी समाप्त हो गया। जो काव्य राजनीति से इतर था वही ठोस रूप में बचा रहा, बाक़ी सब समय के साथ बह गया। इसके विपरीत आधुनिक युग के कवि जो पूर्णतः राजनीति आधारित काव्य-सृजन करते हैं, वह काव्य राजनीति समीकरण परिवर्तित होने पर अपना अस्तित्व खो बैठता है। यही नहीं, कविता

का विषय राजनीति हो जाने से उसके सौंदर्य-तत्त्वों में कमी आ जाती है, क्योंकि विचार-स्तर की राजनीति और काव्य-सौंदर्य का निर्वहन एक साथ बहुत दुरूह भी है।

कवि में एक शाश्वत दृष्टि होनी चाहिए, जिससे इस प्रकार का काव्य सृजित हो जो कवि के उपरांत भी जीवित रह सके। 'कवि के लिए जीवन एवं सत्य का दर्शन दो भिन्न वस्तुएँ नहीं रहतीं। जीवन-दर्शन की यह शाश्वतता उसकी कविता को सजीव बनाती है। यदि साहित्य में प्रतिबिंबित जीवन-दर्शन शक्तिवान नहीं होता तो साहित्य की सत्ता कुछ रह ही नहीं जाती। सत्य पर आधारित कवि का जीवन-दर्शन ही उसके साहित्य को प्राणवान एवं समाजोपयोगी बनाता है। किसी भी साहित्य की रचना का महत्त्व उसमें स्थापित जीवन-दर्शन के महत्त्व के कारण ही होता है। सच तो यह है कि साहित्य में जीवन-दर्शन का वही स्थान है जो शरीर में आत्मा का।⁷³² अलग-अलग व्यक्तियों का जीवन अलग-अलग होता है, इसीलिए जीवनदृष्टि में अंतर हो सकता है। कवि के लिए उसके जीवन में प्राप्त सत्य, जो कि निजी सत्य होते हैं, वही महत्त्व रखते हैं जो दर्शन के क्षेत्र में विभिन्न तर्क-वितर्क के उपरांत होनेवाले सत्य रखते हैं। कवि अपने जीवन-दर्शन को, जीवन-दृष्टि को साहित्य में उतारता है। जब एक वास्तविक जीवन का सत्य काव्य के माध्यम से अभिव्यक्ति पाता है तो वह काव्य अत्यंत शक्तिवान बन जाता है। रीतिकवियों ने अपने काव्य के माध्यम से जो जीवन-दर्शन एवं जीवन-सत्य प्रस्तुत किया है, वह उनके व्यक्तिगत जीवन का भी सत्य है। उन्होंने लक्षण-ग्रंथों से काव्य-शिक्षा प्रदान की, परंतु इनसे इतर जो प्रेम और सौंदर्य का प्रस्फुटन हुआ वह उनके 'जीवन-ग्रंथ' से निःसृत हुआ सत्य था। भक्तिकाल के भक्त-कवि अपनी श्रद्धा, अपनी आस्था और भक्ति के स्तर पर सच्चे थे। यद्यपि कि जिन कथानकों और घटनाओं का वर्णन सूरदास और गोस्वामी जी अपने काव्य में करते हैं, वे उनके जीवन का सत्य नहीं है, यथार्थ स्तर पर तो बिल्कुल नहीं हैं, किंतु उनकी आस्था, श्रद्धा और भगवद्-भक्ति सच्ची है, इसलिए उनका काव्य स्वीकार किया गया। इसी प्रकार रीतिकाव्य के प्रणेताओं ने स्वयं प्रेम और सौंदर्य का अनुभव किया, तभी इस प्रकार का प्रभावशाली काव्य हृदय और मस्तिष्क से निकलकर कागज़ पर उतर पाया। जीवन के भोगे हुए यथार्थ को व्यक्त करना कवि की एक नैतिक जिम्मेदारी भी है क्योंकि सत्य पर आधारित कवि का जीवन-दर्शन ही उसके साहित्य को प्राणवान एवं समाजोपयोगी बनाता है।

एक कवि जब काव्य-सृजन करता है तो बहुत-से विषय तो ऐसे हैं जो उसे प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं, जैसे-व्याकरणिक नियम, भाषा, छंदशास्त्र तथा अन्य कला स्तर के तत्त्व, परंतु बहुत-से विषय उसे अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं, जिनकी कवि को जानकारी ही नहीं होती। ये तत्त्व उसके संस्कार और आस-पास के वातावरण से अनजाने ही आ जाते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी बिंदु होते हैं जो मानव-मन की उपज होते हैं। मन की चेतना के विभिन्न स्तर (अचेतन-अचेतन-अर्द्धचेतन आदि) पर अथवा मन की विभिन्न अवस्थाओं से चालित-संचालित विभिन्न बिंदु काव्य में स्वतः ही आ जाते हैं। 'मनोविज्ञान ने जब कला के क्षेत्र में पदार्पण किया तो उसने प्रश्न उठाया मन की किन क्रियाओं के द्वारा 'रस' का प्रादुर्भाव होता है? यदि हम मान लें कि 'रस' का स्वरूप दर्शन ने विवेचित किया तो मनोविज्ञान ने 'रसास्वादन' की क्रिया को स्पष्ट किया। दोनों का यह सहयोग कला के लिए हितकर हुआ। मनोविज्ञान के लिए 'प्रत्यक्ष' (Perception) अनुभूति के विश्लेषण का प्रश्न उपस्थित हुआ। 'प्रत्यक्ष' में एक ओर वस्तु से

निःसृत होनेवाली संवेदनाएँ (Sensations) रहती हैं जो मस्तिष्क के ज्ञान-केंद्रों में इंद्रिय-प्रणालिकाओं के द्वार से उपस्थित होती हैं। इसे उपस्थितिकरण (Presentation) कहा जाता है, परंतु उपस्थित संवेदनाओं (Presentations) को व्यवस्थित करके ही वस्तु का प्रत्यक्ष स्वरूप अवगत होता है। जैसे जब मैं सरोवर में एक कमल-पुष्प को 'प्रत्यक्ष' देखता हूँ तो सरोवर, जल-पुष्प आदि अनेक वस्तुओं से निकलनेवाली संवेदनाएँ, स्मृति, कल्पना, विचार आदि बुद्धि की क्रियाओं द्वारा व्यवस्थित होकर अपना-अपना स्वरूप ग्रहण करती हैं।³³ यहाँ महत्त्वपूर्ण बिंदु यह है कि 'मनोविज्ञान के लिए प्रत्यक्ष अनुभूति (Perception) के विश्लेषण का प्रश्न उपस्थित हुआ।' 'रस का स्वरूप दर्शन ने विवेचित किया', परंतु 'मनोविज्ञान ने 'रसास्वादन' की क्रिया को स्पष्ट किया'। मनोविज्ञान रसास्वादन की क्रिया को स्पष्ट करने के लिए प्रत्यक्ष दर्शन का सहारा लेता है। वस्तुओं से उत्पन्न होनेवाली संवेदनाएँ ही कवि द्वारा व्यक्त होती हैं, परंतु इस क्रम में यह भी आवश्यक होता है कि वस्तु से उत्पन्न 'उपस्थित संवेदनाओं (Presentations) को व्यवस्थित करके ही वस्तु का प्रत्यक्ष स्वरूप अवगत होता है।' रीतिकाव्यकार मनोविज्ञान के इस सिद्धांत पर अपेक्षाकृत अन्य कवियों, अपने प्रत्यक्षबोध के कारण खरा उतरता है। उसने जो भी प्रत्यक्ष ढंग से देखा उनसे उत्पन्न संवेदनाओं को क्रमबद्ध ढंग से व्यवस्थित किया। इस आधार पर रीतिकाव्य यथार्थ के अधिक निकट है। इसने प्रत्यक्ष विषयों को काव्य-विषय बनाया और प्रत्यक्ष वस्तुओं से अपनी संवेदनाओं को निर्धारित किया। ऐसा जान-बूझकर हुआ या स्वतः हुआ, यह बात उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितनी यह कि ऐसे तत्त्व रीतिकाव्य में उपस्थित हैं। यह प्रत्यक्षदर्शिता के आधार पर संवेदनाभिव्यक्ति आधुनिक-काव्य की एक विशेषता भी है और एक सीमा भी है।

'मनोविज्ञान के पंडितों में भाव के मानसिक और शारीरिक रूप के पूर्वापर कार्यक्रम को लेकर बहुत-कुछ विवाद चला है। जेम्स, मैक्डूगल आदि का कहना है कि भाव का मानसिक रूप शारीरिक रूप का परिणाम है। स्टाउट आदि का विचार है कि ऐसा शारीरिक संवेदना के लिए तो अवश्य कहा जा सकता है, परंतु सभी भावों के विषय में यह क्रम नहीं माना जा सकता। उनके मत में प्रायः इसका विपरीत क्रम ही स्वीकार्य है। हम इस विवाद में न पड़कर यही कह सकते हैं कि भारतीय दर्शन में यह दूसरा मत ही ग्रहण किया गया है। चेतना पृथक् सत्ता स्वीकार करनेवाले के लिए यही मत ग्राह्य हो सकता है।'³⁴ स्पष्टरूप से डॉ॰ नगेंद्र का मत है कि 'भारतीय दर्शन में यह दूसरा मत ही ग्रहण किया गया है।' मनोविज्ञान में इस पर विचार किया गया है भाव में मस्तिष्क पहले कार्य करता है अथवा शरीर पहले कार्य करता है? इस पूर्वापर (आगे-पीछे, आगे और पीछे का, आगा-पीछा)³⁵ मनोविज्ञानियों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं। जेम्स, मैक्डूगल जैसे मनोविज्ञानी मानते हैं कि भाव का शारीरिक रूप पहले आता है और मानसिक रूप बाद में प्रस्तुत होता है; उदाहरण के लिए पहले हम किसी को देखते हैं, फिर उससे प्रेम होता है। इस मत में संशोधन करते हुए स्टाउट जैसे मनोविज्ञानी कहते हैं कि ऐसा मात्र उन्हीं भावों के प्रति कहा जा सकता है जिनका संबंध शारीरिक स्तर की भावनाओं से है; जैसे ऊपर के उदाहरण में संशोधन करके समझें तो प्रत्यक्ष देखकर प्रेमभाव का उमड़ना यदि व्यक्ति के संदर्भ में है तो इसे सत्य माना जा सकता, परंतु यदि ईश्वर के प्रति प्रेम-भाव का प्रस्फुटन है, जिसे हमने देखा नहीं है तो वह मानसिक स्तर पर पहले घटित होगा और शारीरिक स्तर पर बाद में

घटित होगा। डॉ० नगेंद्र के अनुसार यही 'दूसरा मत', अर्थात् भाव पहले मानसिक स्तर पर कार्य करता है उपरांत में शारीरिक स्तर पर कार्य करता है, भारतीय दर्शन में ग्रहण किया गया है। 'चेतना की पृथक् सत्ता स्वीकार करने वालों के लिए मत ग्राह्य हो सकता है' जैसे वाक्य 'दूसरे मत' के समर्थन में प्रस्तुत किए जा रहे हैं। रीतिकाव्य में जिस प्रकार के प्रेम-भाव और सौंदर्य का निरूपण हुआ है, वह शारीरिक पहले और मानसिक उपरांत में प्रतीत होते हैं। हमारे मस्तिष्क में किसी भी प्रकार का भाव देखने, सुनने और स्पर्श इत्यादि से ही तो प्रारंभ होता है और ये सारे उपकरण शारीरिक हैं। 'चेतना की पृथक् सत्ता' होने के बावजूद भी यह शारीरिक कार्य पर ही प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से आधारित है, आश्रित है।

'काण्ट (1724-1804) ने वैज्ञानिक प्रतिभा और कलाकार की प्रतिभा में अंतर किया है। वैज्ञानिक के सिद्धांतों को प्रयत्न द्वारा समझा जा सकता है और परिश्रम के द्वारा वैज्ञानिक बना भी जा सकता है, पर परिश्रम के द्वारा, प्रतिभा न होने पर कोई कवि या कलाकार नहीं बन सकता, क्योंकि कलाकार की रचना-प्रक्रिया गूढ़ और जटिल होती है जिसकी व्याख्या स्वयं कलाकार भी नहीं कर सकता। वह प्रतिभा को सिखा भी नहीं सकता है। हाँ, कलाकार की कृति दूसरे के लिए आदर्श बन सकती है। प्रतिभा सौंदर्यमूलक धारणाओं की कोष होती है, जिस कोष की समृद्धि का ज्ञान कलाकार को स्वयं भी नहीं होता। इन सौंदर्यमूलक धारणाओं और प्रत्ययों को बुद्धि द्वारा नहीं समझा जा सकता, उन्हीं को रूपायित करना कलाकार का कार्य होता है।¹³⁶ यहाँ काण्ट के संदर्भ में डॉ० भगीरथ मिश्र स्पष्ट कर रहे हैं कि कवि और कलाकार अपनी प्रतिभा की परिधि में रहकर किसी भी सृजन-कार्य में कुछ उल्लेखनीय कर पाते हैं। हम विज्ञान के सिद्धांतों को अध्ययन के आधार पर समझ सकते हैं और वैज्ञानिक भी बन सकते हैं, लेकिन कवि और कलाकार को समझने के लिए कोई सिद्धांत नहीं है। कदाचित् यही कारण है कि प्रतिभा को श्रेणियों में विभक्त किया जाता है। राजशेखर ने प्रतिभा दो प्रकार की बताई है—कारयित्री और भावयित्री।¹³⁷ कारयित्री प्रतिभा कवि में होती है, जबकि भावयित्री प्रतिभा उन भावों को ग्रहण करने वाले में होती है। इसलिए पाठक-श्रोता, आलोचक-समीक्षक को भावयित्री प्रतिभा से युक्त माना जाता है। इसलिए जब काण्ट के संदर्भ से डॉ० भगीरथ मिश्र लिखते हैं 'प्रतिभा न होने पर कोई कवि या कलाकार नहीं बन सकता' और 'प्रतिभा सौंदर्यमूलक धारणाओं की कोष होती है', लेकिन 'इन सौंदर्यमूलक धारणाओं और प्रत्ययों को बुद्धि द्वारा नहीं समझा जा सकता' तो यह भी सिद्ध होने लगता है कि प्रतिभाहीन व्यक्ति काव्य अथवा कला का भावक भी नहीं बन सकता। 'कलाकार की रचना-प्रक्रिया गूढ़ और जटिल होती है जिसकी व्याख्या स्वयं कलाकार भी नहीं कर सकता', परंतु कभी-कभी भावयित्री प्रतिभा से युक्त आलोचक कविता की ऐसी व्याख्या प्रस्तुत करता है, जहाँ कदाचित् कवि भी न पहुँचा रहा हो और कभी-कभी वह आलोचक कविता के मर्म तक पहुँचने में भी असफल हो जाता है। यह सब प्रतिभा-जन्य परिणतियाँ हैं। प्रतिभा को परिभाषित करते हुए डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा लिखते हैं—'मनुष्य की नवोन्मेषशालिनी शक्ति को प्रतिभा कहते हैं। 'पूर्व' अनुभव के आधार पर 'अपूर्व' का सृजन करना ही नवोन्मेष है। कला के क्षेत्र में इस प्रतिभा के द्वारा 'सुंदर' वस्तु का आविष्कार किया जाता है। 'नवीनता' सौंदर्यानुभूति का एक तत्त्व है, अतएव सौंदर्यानुसंधायिनी प्रतिभा का एक लक्षण 'नवोन्मेषशीलता' है।¹³⁸ प्रतिभा के बारे में इतना लिखने के उपरांत वह आगे लिखते हैं—'कला में सुंदर वस्तु किसी

बाह्य पदार्थ की प्रतिच्छाया नहीं होती, अपितु यह कलाकार के मानसिक और आध्यात्मिक अनुभवों की व्यवस्था को, उसके जीवन की वेदना, शालीनता, गंभीरता तथा उसकी कल्पना के स्वातंत्र्य, शक्ति और उज्ज्वलता को अनुभव में आनेवाले साधारण उपकरणों द्वारा व्यक्त करती है। 'अनुभूति' को 'पार्थिव', 'आध्यात्मिकता' को 'भौतिक', 'आंतरिक' और 'बाह्य' रूप देना प्रतिभा का कर्तव्य है। प्रकृति ने शब्द, ध्वनि, रंग, रेखा, पत्थर, लकड़ी आदि अनेक द्रव्य प्रदान किए हैं, जिनकी आध्यात्मिकता प्रकट नहीं होती। प्रतिभा इन द्रव्यों को अपनी अनुभूतियों का माध्यम बनाती है, जिससे इन पदार्थों में दया, प्रेम, ओज, शालीनता, आत्म-विजय, उल्लास, लज्जा आदि ही नहीं, वरन् इनसे भी अधिक गंभीर अनुभूतियाँ प्रत्यक्ष हो उठती हैं।³⁹ इस प्रकार प्रतिभा 'द्रव्यों' को अपनी अनुभूतियों का माध्यम बनाती है। उपर्युक्त प्रतिभा-संबंधी उद्धरण से बहुत-कुछ स्वतः स्पष्ट हो रहा है, परंतु हमें यह अवश्य ध्यान में रखना होगा कि यह प्रतिभा की परिभाषा कारयित्री भी है और भावयित्री भी है। हमें इस प्रतिभा की अपेक्षा मात्र सर्जक में ही नहीं, अपितु भावक में भी करनी चाहिए। रीतिकाव्य में जिस प्रकार की कारयित्री प्रतिभा कवियों में संचरित है, उसको समझने के लिए इसके पाठकों और श्रोताओं में उसी स्तर की भावयित्री प्रतिभा का संचरण आवश्यक है। प्रेम और सौंदर्य की अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के क्रम में इस प्रतिभा का होना भी एक सीमांकन जैसा है—भावक के लिए भी सर्जक के लिए भी।

काण्ट के सौंदर्य-संबंधी विचारों को स्पष्ट करने के क्रम में डॉ॰ ममता चतुर्वेदी अग्रलिखित विचार व्यक्त कर रही हैं। इसमें वे सौंदर्य-ग्रहण की सीमाओं को स्पष्ट करते हुए लिखती हैं—'सौंदर्य-ग्रहण के संबंध में उन्होंने दो शब्दों 'अभिव्यक्ति' तथा 'निर्णय' का प्रयोग किया है। इसके अनुसार सौंदर्य-ग्रहण 'शुद्ध-बुद्धि' और 'व्यावहारिक बुद्धि' से भिन्न 'निर्णय' के अंतर्गत माना है जिसे 'अभिरुचि' के द्वारा परिभाषित किया जा सकता है। शुद्ध-बुद्धि का आग्रह प्लेटों के शब्दों में इस बात पर होता है कि—'अपने आप से असहमत होने की अपेक्षा सारे संसार से असहमत होना बेहतर है।' इसके विपरीत काण्ट ने अपनी 'निर्णय-मीमांसा' में यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि अपने आप से सहमत होना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि 'हर किसी के स्थान पर स्वयं को रखकर' सोचना भी आवश्यक है। काण्ट ने इसे 'परिवर्द्धित मनोवृत्ति' कहा है। शुद्ध-बुद्धि के चिंतन में केवल स्वयं से ही संवाद होता है, किंतु निर्णय में चाहे हम एकांत में अकेले ही चिंतन करें, अपने से भिन्न दूसरों से संवाद होता है।⁴⁰ सौंदर्य-ग्रहण के संबंध में काण्ट के उपर्युक्त विचार अथवा प्लेटों का शुद्ध-बुद्धि के संबंध में निर्धारण वस्तुतः काव्य-क्षेत्र में देखा जा सकता है। कवि और कलाकार अपनी 'अभिरुचि' से 'निर्णय' लेते हैं और निरीक्षक-परीक्षक भी अपनी 'अभिरुचि' से 'निर्णय' लेते हैं। पूर्व में विवेचित किया जा चुका है कि यह 'अभिरुचि' किन बातों पर निर्भर होती है। शुद्ध-बुद्धि और व्यावहारिक बुद्धि में काण्ट ने अंतर बताया है जिससे यह सिद्ध होता है कि 'शुद्ध-बुद्धि' अंतर्मुखी प्रवृत्ति की होती है और 'व्यावहारिक बुद्धि' बहिर्मुखी प्रवृत्ति की होती है। जिस विचार की ओर डॉ॰ ममता चतुर्वेदी संकेत कर रही हैं, वह अत्यंत महत्वपूर्ण है—'निर्णय में हम चाहे एकांत में अकेले ही चिंतन करें, अपने से भिन्न दूसरों से संवाद होता है।' कवि एकांत में अपने आप से सहमत होकर काव्य-सृजन करता है, विषय-वस्तु का निर्णय-निर्धारण करता है और सौंदर्य-सन्धारण करता है, परंतु उनका

सर्वसम्मुख प्रस्तुतीकरण भी करता है। यहाँ यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि कवि की अपनी 'शुद्ध-बुद्धि' में व्यावहारिकता की क्षमता कितनी है अथवा उसकी 'व्यावहारिक बुद्धि' में शुद्धता कितनी है। यह 'स्वांतः सुखाय' के 'लोकमंगलकारी' होने की प्रक्रिया है। इतना अवश्य है कि सौंदर्य-ग्रहण की इस प्रक्रिया में 'अभिरुचि' पुनः महत्वपूर्ण हो जाती है और उसके मानदंडों का पुनर्नवीनीकरण भी सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों के आधार पर होता रहता है। हम भक्तिकाव्य के उपरान्त जो रीतिकाव्य देखते हैं, वह अभिरुचियों का परिवर्तित हो जाना है। काव्य भले ही दरबारों में सुना-सुनाया जा रहा था, परंतु उसका प्रेम और सौंदर्य-तत्त्व लोकोन्मुखी भी था, क्योंकि प्रेम की आकांक्षा और सौंदर्य की कामना प्रत्येक हृदय में होती है। रीतिकाव्य की यह लोकोन्मुखता इस विचार से और भी महत्वपूर्ण हो जाती है कि इसका प्रेम निरूपण धर्म-जाति-वर्ग आदि का अतिक्रमण भी करता है।

'सच तो यह है कि सौंदर्यस्वादन के क्षेत्र में हमें मानना होगा कि रसानुभूति का आश्रय 'शरीर' है। वैसे तो अन्य क्षेत्रों में भी सारी उदात्त और उच्चस्तरीय अनुभूति शरीर और उसकी चेष्टाओं में ही आश्रित होती है, किंतु सौंदर्य के विषय में तो इस मान्यता के बिना काम ही नहीं चल सकता। अँग्रेजी ने सौंदर्य की भावना को Aesthetic feeling माना गया है। Aesthetic पद का मूल अर्थ ही सौंदर्य के साक्षात्कार का आनंद है। हमने भी सौंदर्य के आस्वादन में 'साक्षात्' तत्त्व को माना है। सुंदर वस्तु में प्रेक्षक अपनी 'आत्मा' का साक्षात्कार करता है; उसके मानसिक भाव, बौद्धिक विचार, आशा, कल्पना, स्मृति सभी मानो सुंदर वस्तु में 'प्रत्यक्ष' हो उठते हैं। अतएव रस का आश्रय शरीर और इंद्रियों की चेष्टाएँ हैं—इसमें संदेह नहीं।⁴¹ डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा यहाँ स्पष्ट कर रहे हैं कि 'सुंदर वस्तु में प्रेक्षक अपनी 'आत्मा' का साक्षात्कार करता है।' जब हम किसी काव्य-पंक्ति को पढ़ते हैं तो उससे अपनी संगति बैठाते हैं और उसी आधार पर उसे पसंद-नापसंद करते हैं। जब तक कोई शेर सुनकर हम यह न कह दें कि 'गोया ये भी मेरे दिल में था' तब तक तारीफ़ नहीं हुई। शायद यही है अपनी 'आत्मा' का साक्षात्कार करना। हम श्रेष्ठ कलाओं को देखकर अपने अंदर कुछ विकसित हुआ महसूस करते हैं। जब हम सुंदर वस्तु का निरीक्षण करते हैं तो 'मानसिक भाव, बौद्धिक विचार, आशा, कल्पना, स्मृति' के अतिरिक्त भी कई भाव एवं विचार प्रत्यक्ष हो उठते हैं। इसका एक आशय यह भी हुआ कि एक कवि, कलाकार अथवा सर्जक इन समस्त तत्त्वों का समावेश करके एक सुंदर वस्तु का सृजन करता है। ये तत्त्व उसकी अपनी आत्मा, उसके अपने मन और मस्तिष्क से उद्भूत होते हैं। इन समस्त आदान-प्रदान की क्रियाओं में आश्रय तो शरीर ही होता है। रीतिकाव्य में रस की प्रधानता है और उपर्युक्त उद्धरण में निश्चित किया जा रहा है—'रस का आश्रय तो शरीर और इंद्रियों की चेष्टाएँ हैं—इसमें संदेह नहीं।' जब रस का आधार ही शरीर है तो रस आधारित समस्त काव्य शरीर-आधारित काव्य हो जाएगा। यह एक सरल समीकरण जैसा है।

कवि और कलाकार जो भी सृजन करते हैं, उनकी अभिव्यक्तियों की जो भी सीमाएँ हैं, उनके पास जो भी उपलब्ध साधन-संसाधन थे उसके बारे में यहाँ कतिपय उदाहरणों के माध्यम से विश्लेषण किया गया। इस कड़ी में एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि हम जब उनकी अभिव्यक्तियों को मूल्यांकित करते हैं, जो कि प्रेमाभिव्यक्ति और सौंदर्यानुभूति आदि से संबंधित हैं, तो हमारी अपनी सीमाएँ क्या होती हैं? हम किस परिधि में रहकर मूल्यांकन करते हैं? हमारी

आलोचना-समालोचना किन बातों पर निर्भर करती है? 'निश्चय ही आलोचना को सबसे बड़ा नुकसान तब होता है, जब आलोचक एक खास विचारधारा में बँधकर रचना पर विचार करता है। यह बात केवल मार्क्सवादी विचारधारा के लिए ही नहीं, किसी भी विचारधारा के लिए सही है। वस्तुतः विचारधारा की एक पूरी व्यवस्था होती है, जबकि जरूरी नहीं कि रचना इस व्यवस्था को मानकर ही चले। विचारधारा कितनी भी वैज्ञानिक, कितनी भी व्यापक और कितनी भी मानवीय क्यों न हो, जीवन उससे बड़ा होता है और रचना का असली संबंध जीवन से ही होता है, विचारधारा से नहीं। यहाँ गेटे की उस प्रसिद्ध उक्ति का स्मरण किया जा सकता है, जिसमें कहा गया है कि सारे दर्शन पीले पड़ जाते हैं लेकिन जीवन का वृक्ष हमेशा हरा रहता है। आचार्य शुक्ल ने अपने लोकमंगलवाद को एक व्यवस्था के रूप में अपनाया था, जिसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने रीतिकाव्य को सामंती या दरबारी काव्य कहकर उसका अवमूल्यन किया। मिश्र-बंधु, लाला भगवानदीन, कृष्णबिहारी मिश्र और पद्मसिंह शर्मा ने आलोचक होते हुए भी व्यक्तिगत रुचि के आधार पर देव और बिहारी के बीच श्रेष्ठता का झगड़ा चलाया था। आचार्य शुक्ल ने रस को सर्वोपरि मानने के कारण साहित्य के इतिहास में उन ऐहिक मुक्तकों को उचित महत्त्व नहीं दिया जो अलंकार का आश्रय लेकर रचे गए थे। रीतिकाव्य को ध्वस्त करने का यह तरीका जितना भी कारगर हुआ हो, रचना के साथ आलोचना के व्यवहार की दृष्टि से न्यायसंगत न था। बात केवल आचार्य शुक्ल की नहीं है, पं० नंददुलारे वाजपेयी भी जब कलावाद या सौष्ठववाद के प्रस्तावक बनकर आए थे, तब उन्होंने भी प्रेमचंद के साथ उनके कथानक लेखन को 'अखबारी' कहकर वैसा ही सुलूक किया था। डॉ० नगेंद्र जब छायावादी से रसवादी हो गए तो वे नई कविता की भी परीक्षा रसवाद की ही कसौटी पर करने लगे। इससे नई कविता की क्या दुर्दशा हुई होगी, सहज अनुमेय है।⁴² नंदकिशोर नवल ने उपर्युक्त विचार 'आलोचना और मेरी आत्मस्वीकृतियों' नामक लेख में व्यक्त किए हैं। यहाँ इनके उद्धरण से यह संकेत मिलता है कि हमें कृति और कृतिकार का मूल्यांकन करने के क्रम में अपनी विचारधारा और अपनी आलोचना-पद्धति का भी तटस्थ मूल्यांकन करते रहना चाहिए। विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से उपर्युक्त उद्धरण में स्पष्ट किया गया है कि समय-समय पर आलोचना ने किस रचनाकार के संबंध में क्या सोचा है? रीतिकाव्य के संबंध में मूल्यांकन के क्रम में हमें इन सारी बातों को दृष्टिगत करना ही होगा। वस्तुतः 'विचार' का 'वाद' बन जाना बहुत हद तक कट्टरता का भी लक्षण है। हम एक ही विचार का प्रत्येक विषय में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष आरोपण-प्रक्षेपण करने लगते हैं तो हम 'वाद' का शिकार हो जाते हैं।

संदर्भ

1. आधुनिकता : साहित्य के संदर्भ में, गंगाप्रसाद विमल, पृ० 159, प्रथम संस्करण 1978, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली
2. वही, पृ० 161-162
3. भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास, डॉ० रामविलास शर्मा, पृ० 449-450, प्रथम संस्करण 2001, साहित्य अकादमी, रवींद्रभवन, 35 फीरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली
4. रीतिकालीन कवियों की प्रेम-व्यंजना, डॉ० बच्चनसिंह, पृ० 109-110, प्रथम संस्करण 2005, लोकभारती प्रकाशन, 15ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद

5. वही, पृ० 101
6. सूरदास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ० 93, दसवाँ संस्करण-संवत् 2050 वि०, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
7. वही, पृ० 103
8. रीतिकालीन कवियों की प्रेम-व्यंजना, डॉ० बच्चनसिंह, पृ० 119
9. मतिराम, प्रभाकर क्षोत्रिय, पृ० 39-40, प्रथम संस्करण 2007, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
10. रीतिकालीन कवियों की प्रेम-व्यंजना, डॉ० बच्चनसिंह, पृ० 119
11. हिंदी-साहित्यकोश, भाग-एक, पृ० 705, संपा० मंडल डॉ० धीरेंद्र वर्मा (प्रधान), डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा, श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ० रघुवंश (संयोजक), डॉ० धर्मवीर भारती, पुनर्मुद्रित संस्करण 2005, ज्ञान मंडल, लिमिटेड वाराणसी
12. वही, पृ० 705
13. वही, पृ० 705
14. वही, पृ० 621
15. जगत् के स्वरूपों के विवेचन में पाँच तत्त्वों का उल्लेख मिलता है—क्षिति, जल, पावक, गगन और वायु। इंद्रियाँ (रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द आदि का ज्ञान करानेवाली) इन्हीं पाँच तत्त्वों पर आश्रित होती हैं। 'पृथ्वी का विषय है गंध; इंद्रिय-नासिका। जल का विषय है रस या स्वाद; इंद्रिय-जिह्वा या रसना। तेज का विषय है रूप; इंद्रिय-नेत्र। वायु का विषय है स्पर्श; इंद्रिय-त्वचा। आकाश का विषय है शब्द; इंद्रिय-श्रोत्र। इन्हीं पर आधारित पाँच प्रकार के विज्ञान हैं। चाक्षुष, श्रोत्रिय, घ्राण, रसना, काया (त्वचा)। इन विज्ञानों की अधिष्ठात्री पाँच इंद्रियाँ हैं, किंतु विज्ञानवाद में इनके अलावा मन को छठीं इंद्रिय माना गया है और उसे मनोविज्ञान की अधिष्ठात्री इंद्रिय माना गया है। सिद्धों ने कहीं-कहीं छः इंद्रियों का उल्लेख इसी सिद्धांत के अनुसार किया है।' (हिंदी-साहित्यकोश, भाग-एक, पृ० 255)
16. हिंदी-साहित्यकोश, भाग-एक, पृ० 623,
17. घनानंद, लल्लनराय, पृ० 35, प्रथम संस्करण 1980, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
18. आशय, संपा० बी०के० सौनिकिया, अंक : 5-6 (संयुक्तांक), पृ० 45, दिगंत प्रकाशन के-1, 1540, आशियाना, लखनऊ
19. बहुवचन, अंक-10, पृ० 129, प्रधान संपा० अशोक वाजपेयी एवं सहसंपा० प्रभात रंजन, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र
20. बहुवचन, अंक-13, पृ० 35-36, संपा० जी० गोपीनाथन, विनोद तिवारी एवं राकेश श्रीमाल
21. सौंदर्य-मूल्य और मूल्यांकन, रमेश कुंतल मेघ, पृ० 88-89, प्रथम संस्करण 2008, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2/35, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली
22. सौंदर्यशास्त्र, डॉ० ममता चतुर्वेदी, पृ० 82, तृतीय संशोधित संस्करण 2007, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, प्लॉट नं-1, झलाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर
23. पाश्चात्य काव्यशास्त्र-इतिहास, सिद्धांत और वाद, डॉ० भगीरथ मिश्र, पृ० 43, पंचम संस्करण 2007, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी
24. सौंदर्य-मूल्य और मूल्यांकन, रमेश कुंतल मेघ, पृ० 104, प्रथम 'नेशनल' संस्करण-2008, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2/35, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली

25. मध्यकालीन साहित्य-संदर्भ (डॉ० किशोरीलाल अभिनंदन-ग्रंथ), पृ 464, संपा० मंडल डॉ० किशोरीलाल गुप्त, डॉ० विजयपाल सिंह, डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी, डॉ० शिवशंकर त्रिपाठी, डॉ० कमलाप्रसाद पांडेय, डॉ० हरिमोहन बुधौलिया, श्रीमती शोभा पन्नालाल, प्रो० विनय दुबे, प्रथम संस्करण 1997, स्टार पब्लिकेशन प्रा०लि०, नई दिल्ली
26. वही, पृ० 453
27. सौंदर्यशास्त्र के तत्त्व, डॉ० कुमार विमल, पृ० 108, पाँचवाँ संस्करण 1989, राजकमल प्रकाशन प्रा०लि०, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली
28. हिंदी-शब्दकोश, डॉ० हरदेव बाहरी, संस्करण 2011, राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली
29. आलोचना के रचना-पुरुष : नामवरसिंह, संपा० भारत यायावर, पृ० 261, प्रथम संस्करण 2003, वाणी प्रकाशन, 21 ए, दरियागंज, नई दिल्ली
30. वही, पृ० 262
31. दृश्यालेख, नंदकिशोर नवल, पृ० 40, पहला संस्करण 1995, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली
32. बिहारी : व्यक्तित्व एवं जीवन-दर्शन, रमेशचंद्र गुप्त, पृ० 122, प्रथम संस्करण 1974, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, दिल्ली
33. रस और रसास्वादन, डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा, पृ० 52-53, प्रथम संस्करण, शक् संवत् 1885, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 12, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद
34. रीतिकाव्य की भूमिका, डॉ० नगेंद्र, पृ० 70, संस्करण 2000, मयूर पेपर बैक्स, ए-15, सेक्टर 5, नोएडा
35. हिंदी-शब्दकोश, डॉ० हरदेव, बाहरी संस्करण 2011, राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली
36. पाश्चात्य काव्यशास्त्र : इतिहास, सिद्धांत और वाद, डॉ० भगीरथ मिश्र, पृ० 38, पंचम संस्करण 2007, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी।
37. हिंदी-साहित्यकोश, भाग-1, पृ० 203
38. वही, पृ० 397
39. वही, पृ० 397
40. सौंदर्यशास्त्र, डॉ० ममता चतुर्वेदी, पृ० 82-83, तृतीय संशोधित संस्करण 2007, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, प्लॉट नं० 1, झलाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर
41. रस और रसास्वादन, डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा, पृ० 81, प्रथम संस्करण शक् संवत् 1885, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 12, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद
42. बहुवचन, अंक-10, पृ० 229, प्रधान संपा० अशोक वाजपेयी एवं सहसंपा० प्रभात रंजन, महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

भदारी कला, लालगंज
 प्रतापगढ़ 230132 (उ०प्र०)
 मो० 09415142314
 E mail-deepakruhani@gmail.com

आधुनिकयुग में कबीरवाणी की सार्थकता

नीलम

वरिष्ठ प्राध्यापिका, हिंदी विभाग
राजकीय माध्यमिक विद्यालय
बड़ागाँव, करनाल (हरियाणा)

कबीरदास एक युगद्रष्टा एवं क्रांतिकारी विचारक थे। आधुनिकयुग में उनकी प्रासंगिकता विशेष महत्त्व रखती है। इस संदर्भ में हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि धर्म, साहित्य, सभ्यता और संस्कृति आदि के परिष्कार में सत्ता प्रतिष्ठानों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। धर्म, कला और साहित्य का मूल स्रोत प्रजा ही रही है। जनसाधारण की अवहेलना करके न तो कोई राजा और न ही कोई कवि महान बन पाया है। दुनिया में जो कोई सुंदर, महान और शक्तिशाली होता है वह सब मानव-संस्कृति का ही अंग है। इस संस्कृति को मानव-जाति ने अपने सामूहिक परिश्रम से निर्मित किया है फिर भी धर्म, साहित्य और संस्कृति का उपयोग समाज के पूँजीपति वर्ग के हित में ही हुआ है। भारत के मध्ययुग में मुसलमानों के आक्रमणों के साथ ही हमारे धर्म में इस्लामधर्म का प्रचार-प्रसार बढ़ने लगा था। उधर समाज का निम्नवर्ग पीड़ित और शोषित होने के कारण नारकीय जीवन व्यतीत कर रहा था। उस काल में वे सभी आंदोलन सत्ताधारी वर्ग के कोपभाजन बने, जो पददलित जनसाधारण की आशा का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन एक विशेष उपलब्धि है। इसके कारण निर्गुण और सगुण द्वंद्व का श्रीगणेश हुआ। कबीरदास निर्गुण भक्ति-आंदोलन के प्रवर्तक कहे जा सकते हैं। यही नहीं, वे शोषित, पीड़ित तथा उपेक्षित निम्न जातियों के प्रतिनिधि भी थे। कबीरदास न केवल वर्ण आश्रम धर्म का विरोध करते हैं, बल्कि उससे उत्पन्न सामाजिक विकृतियों से भी जनता को मुक्त कराना चाहते हैं। कबीरदास जी ने ब्राह्मण, काजी आदि को उनके कर्तव्य के प्रति सचेत करते हुए कहा—

भूलै भरमि परै जिन कोई
हिंदु तुरक झूठ कु दोई।¹
सो हिंदु सो मुसलमान
जिसका दुरस रहै ईमान।²

कबीरदास ने वर्ण-व्यवस्था का विरोध करते हुए जाति-पाति, छुआछूत तथा ऊँच-नीच की भावना का न केवल निषेध किया बल्कि मानव-मात्र की समानता का संदेश भी दिया। मूर्ति-पूजा, यज्ञ, हवन, रोजा, मंदिर, मस्जिद, तीर्थ आदि के कारण जो सामाजिक विकृतियाँ पैदा

हो गई थी, उनका जोरदार खंडन भी किया। आज के सांप्रदायिक तनाव के विरुद्ध सांप्रदायिक सद्भावना को देखते हुए कबीर की वाणी प्रासंगिक है। सच तो यह है कि आज छुआ-छूत, हिंदू-मुस्लिम विवाद, हिंदू-सिक्ख भेद, मूर्ति-पूजा, तीर्थ आदि इतना भयंकर रूप धारण कर चुके हैं जिसके कारण देश की लोकतंत्रीय व्यवस्था खतरे में पड़ गई है। सांप्रदायिक तनाव के कारण हमारे देश का सामाजिक व धार्मिक विकास अवरुद्ध हो गया है। देश की एकता खतरे में है। आज की परिस्थितियों में कबीर काव्य का संदेश और भी महत्वपूर्ण है। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद हमारे नेताओं ने लोकतंत्रीय पद्धति की स्थापना की, साथ ही धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र का वायदा भी किया। नेहरू आदि नेताओं ने लिंग, जाति, धर्म, वर्ण आदि के भेदभाव को मिटाकर समाजवाद की स्थापना के आशवासन भी दिए, परंतु इन सब का परिणाम ढाक के तीन पात हैं। आज राजनीतिक दल धर्म का सहारा लेकर अपनी रोटियाँ सेकने में लगे हुए हैं। कबीरदास ने हिंदुओं और मुसलमानों दोनों को फटकारते हुए कहा—

जो तू बामन बमनी जाया, आन वाट है काहे न आया।

जो तू तुरुक तुरुकनी जाया, तौ भीतर खतनां क्यूं न कराया।²

कांकर पत्थर जोड़ के मस्जिद लई बनाया।

ता चढ़ि मुल्ला बांग दै, क्या बहिरा हुआ खुदाय।

दुनियां ऐसी बावरी पत्थर पूजन जाय

घर की चाकी कोई न पूजै जेहिका पीसा खाएँ।³

आज हमारा देश तीन वर्गों में बँट चुका है। पहला पूँजीपति वर्ग है, जो शोषण की प्रक्रिया द्वारा अमीर से अमीर होता जा रहा है। उसके पास न केवल जीवन की सभी सुख सुविधाएँ हैं, बल्कि सत्ता वर्ग भी उसी के हाथ बिका हुआ है। दूसरा वर्ग—मध्यवर्ग है। यह द्वंद्वग्रस्त होने के कारण द्विगभ्रान्त हो चुका है। तीसरा वर्ग—निम्न वर्ग है, जो दो वक्त की रोटी जुटाने में भी स्वयं को असमर्थ महसूस कर रहा है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आज का युग शोषण और शोषित दो वर्गों में बँटा हुआ है। कबीर युगीन सामंती समाज भी दो वर्गों में विभक्त था। यही कारण है कि कबीरदास ने न केवल तत्कालीन सामंती समाज में भौतिक मूल्यों का विरोध किया बल्कि शोषित और पददलित निम्नवर्गीय जनसमूह को सामाजिक प्रगति का आधार प्रदान किया। कबीर के समय भी आज के समाज का बहुत बड़ा वर्ग राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ चुका था, आज भी लगभग यही स्थिति है। आज देश की 40 प्रतिशत जनता गरीबी के स्तर पर जी रही है। उसके पास जिंदा रहने के लिए आवश्यक सुविधाएँ भी नहीं हैं। बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, अत्याचार आदि के कारण देश का विशाल जनसमूह अभावग्रस्त जीवन जीने के लिए मजबूर है। छुआछूत की भावना आज भी हमारे लिए चुनौती बनी हुई है। इस संदर्भ में कबीरदास ने भी कहा था—

काहे को कीजै पांडे छोति विचारा। छोतिहि ते उपजा संसारा।⁴

हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध। तु कैसे बामन पाण्डे हम कैसे शूद।

छोति छोति करता तुम ही आएँ तो गर्भवास काहे को आएँ।⁵

कबीर साफ-साफ पूछते हैं—ब्राह्मण तू छूत-अछूत क्यूं करता है। छूत से ही यह संसार

पैदा हुआ है। दो के संयोग से ही यह सृष्टि बनी है। सबमें वही खून बह रहा है। तुम कैसे ब्राह्मण बन गए और हम शूद्र हो गए? कबीरदास ने काजी, मुल्ला, पंडित, पुरोहितों को फटकारते हुए राम-रहीम की एकता का संदेश दिया। आज भी इस आपाधापी के युग में इसी एकता की आवश्यकता है।

आज हमारा देश सांप्रदायिक विष से ग्रस्त हो चुका है। विदेशी शक्तियाँ हमें कमजोर बनाने पर तुली हुई हैं। सांप्रदायिक उग्रवाद धीरे-धीरे सारे देश के वातावरण को विषाक्त बनाता जा रहा है। राजनीतिक दल इसी सांप्रदायिकता का आश्रय लेकर वोटों की राजनीति का खेल खेल रहे हैं। इस समय राजनेताओं तथा धर्म नेताओं की आवश्यकता नहीं, अपितु समाज नेताओं एवं समाज सुधारकों की आवश्यकता है। कबीर की वाणी आज भी हमारा मार्गदर्शन कर सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि कबीर साहित्य का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन किया जाए। भले ही उनकी वाणी कुछ स्थलों पर कर्कश एवं कठोर बन गई है, लेकिन खरी-खोटी सुनाए बिना सामाजिक विसंगतियों को दूर नहीं किया जा सकता। रोग जितना भयंकर होगा उसके उपचार हेतु उतनी कड़वी औषधि ही उपयोगी होती है। कबीर की वाणी ऐसी ही कड़वी औषधि है, जो वर्तमान भारतीय मानस को सही रास्ते पर ला सकती है—

पाहण केरा पूतला करि पूजै करतार।

माला तिलक पहरि मन माना। लोगनि राम खिलौना जाना।⁶

कबीर की दृष्टि में जीवहत्या सबसे बड़ा पाप है और पापी को मुक्ति किसी भी दशा में नहीं मिल सकती। आज के युग में भी जीवहत्या होती है। आज का मानव बिना किसी डर के मछली, बकरी, मुर्गा आदि का मांस खाता है, जो लोग बकरी खाते हैं और उसकी खाल निकालते हैं, तो उनका तो बकरी से भी बुरा हश्र होगा, ऐसा कबीर का मानना है—

बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।

जो बकरी को खात है, तिनका कौन हवाल।⁷

मदिरापान, भाँग, जुआ आदि बुराइयों का प्रचलन कबीर युग में भी था, आज के युग में भी ये समस्याएँ मुँह-बाएँ खड़ी हैं। कबीर ने दिन में रोज़ा रखने वाले और रात को मांस खाने वाले मुसलमानों से पूछा है कि तुम्हारे ऐसे आचरण से क्या खुदा प्रसन्न होंगे—

दिन में रोज़ा रखत हैं, रात हनत हैं गाय।

यह तो खून वह बंदगी, कैसी खुशी खुदाया।⁸

कबीरदास ने मानव द्वारा मानव के प्रति किए गए इस अमानवीय व्यवहार का बड़ा विरोध किया। वह मानव-मानव में कोई अंतर नहीं समझते थे। वह हर धर्म और समुदाय के लोगों से अपेक्षा करते थे कि वे दूसरों का सम्मान करें। प्रेम के द्वारा ही हम मानव की समीपता पा सकते हैं। प्रेम एक ऐसा तत्त्व है, जो सांसारिक तथा अध्यात्मिक जगत में अभेदता एकरूपता तथा सौहार्द्र को स्थापित करता है। प्रेम ही जीवन की सरसता व प्रेम ही जीवन का संगीत है। जिस मनुष्य पर प्रेम की एक छींट भी नहीं पड़ती वह मानव, मानव नहीं रहता। पढ़ने-लिखने से मानव ईंट और पत्थर बन जाता है, क्योंकि ज्ञान व्यक्ति को जड़ बना देता है। प्रेम इस जड़ता को दूर कर उस व्यक्ति में फिर से प्राणों का संचरण कर देता है—

पोथी-पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।

ढाई अक्षर प्रेम के पढ़े सो पंडित होया⁹
यह नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। सज्जनों की संख्या में निरंतर कमी आ रही है,
जबकि दुर्जनों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो रही है—

कबीरा कलयुग कठिन है साधु न मानै कोया।
कामी क्रोधी मसखरा, तिनको आदर होया¹⁰

जब नैतिक मूल्यों का ह्रास होता है, तो उस समाज में नीच और दुष्ट व्यक्ति ही आदर पाते हैं। आज 21वीं शताब्दी का श्रीगणेश हो चुका है। हमारे देश के समक्ष असंख्य समस्याएँ मुँह बाये खड़ी हैं। हमारी राष्ट्रीय एकता के लिए यदाकदा खतरे उत्पन्न होते रहते हैं। पश्चिमी देशों के बढ़ते प्रभाव ने हमारी संस्कृति का अस्तित्व ही खतरे में डाल दिया है इस धर्म-निरपेक्ष देश में सभी धर्मों के लोग एक साथ रहते हैं, लेकिन मंदिर-मस्जिद विवाद ने हमारे देश की शांति को भंग कर दिया है। सांप्रदायिकता ने एक बार फिर हमारे लिए चुनौती खड़ी कर दी है। कबीर की वाणी आज भी हमें चेतावनी देती है—

कहै कबीरा दास फकीरा अपनी राह चलि भाई।
हिंदू तुरक का करता एके, ता गति लखी न जाई।
हिंदू अपनी करे बड़ाई गागर छुवन न देई।
वेश्या के पाइनत्तर सोवि यह देखो हिंदुआई।
मुसलमान के पीर-औलिया मुर्गी मुर्गा खाई।
हिंदुन की हिंदुवाई देखी तूरकन की तुरकाई।
कहै कबीर सुनों भई साधो कौन राह है जाई¹³

कर्मकांड को प्रधानता देने वाले पंडितों और मुल्लों को उन्होंने खरी-खरी सुनाई और राम-रहीम की एकता समझाकर हृदय को शुद्ध और प्रेममय बनाने का उपदेश दिया। देशांतर और उपासना विधि के कारण मनुष्य-मनुष्य में जो भेद उत्पन्न हो जाता है, उसे दूर करने का प्रयत्न उनकी वाणी बराबर करती रही।

निष्कर्ष

आज मुल्ला और पंडित मंदिर मस्जिद के अखाड़ों को त्यागकर संसद तथा न्यायालयों की शरण में पहुँच चुके हैं। वस्तुतः बाबरी मस्जिद और राम जन्मभूमि की समस्या कबीर द्वारा बताए गए मार्ग द्वारा ही सुलझाई जा सकती है। कबीर की वाणी कम-से-कम सांप्रदायिक एकता का पाठ तो पढ़ाती ही है, साथ ही कठमुल्लाओं और पंडे-पुरोहितों के हथकंडों से भी सावधान करती है। जो लोग देश को सांप्रदायिकता की आग में झोंकना चाहते हैं, उनके लिए कबीर की वाणी दिशा-दर्शन देने में समर्थ है। कबीर का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संदेश था—हिंदू-मुस्लिम एकता। यही संदेश आज भी हमारे लिए उपयोगी है। यह स्पष्ट है कि कबीर की वाणी आज भी अपनी सार्थकता को निरंतर बनाए हुए है तथा भविष्य में भावी पीढ़ी का पथ भी आलोकित करती रहेगी।

संदर्भ

1. स० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 183
2. स० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 155

3. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 76, पद 41
4. सं० डॉ० एम०फिरोज खान, नई सदी में कबीर, पृ० 82
5. डॉ० प्रहलाद मौर्य, कबीर का सामाजिक दर्शन, पृ० 117
6. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 153
7. डॉ० युगेश्वर, कबीर समग्र, पृ० 486
8. डॉ० अरुणा शास्त्री, कबीर कालीन भारतीय समाज, पृ० 202
9. डॉ० शिवकुमार शर्मा, हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ० 143
10. सं० डॉ० एम० फिरोजखान, नई सदी में कबीर, पृ० 88
11. सं० डॉ० श्यामसुंदरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ० 153

हिंदी में वैज्ञानिक शब्दावली

डॉ० वंदना श्रीवास्तव

वरिष्ठ प्रवक्ता हिंदी विभाग

श्री जयनारायण स्नातकोत्तर महाविद्यालय

लखनऊ (उ०प्र०)

आज हिंदी के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है, वह है ज्ञान और विज्ञान का लेखन। आज विज्ञान और तकनीकी का युग है। अँग्रेजी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है कि उसमें ज्ञान-विज्ञान की सामग्री अपडेट होती है; जबकि हिंदी में ऐसा नहीं है। हमारे निम्न एवं मध्यवर्ग के अधिकांश छात्र हिंदी माध्यम से शिक्षा ग्रहण करते हैं और अच्छी पुस्तकों तथा नवीनतम जानकारी के अभाव में पिछड़ जाते हैं। ऐसा नहीं है कि उनमें ज्ञान की कमी होती है या सोचने की क्षमता नहीं होती, कमी होती है तो सिर्फ माध्यम की। वे विज्ञान की मूल बातों को अँग्रेजी में समझ नहीं पाते। हिंदी के विद्यार्थी हिंदी में सोचते और समझते हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि उन छात्रों के लिए माध्यमिक के साथ ही उच्च शिक्षा में भी विज्ञान की पुस्तकें एवं शोध व नवीनतम अंतर्राष्ट्रीय जानकारी हिंदी में हो। विज्ञान ही देश को आगे ले जाएगा। अतः विज्ञान की पुस्तकों को हिंदी में इस प्रकार लिखा जाना चाहिए कि पढ़ने में रोचक हों और साथ ही ज्ञानपरक भी। विज्ञान और हिंदी के सामंजस्य से ही आम व्यक्ति भी विज्ञान को आसानी से समझ सकता है। जिन देशों में विज्ञान उनकी मातृभाषा में पढ़ाया जाता है, वहाँ शोध का स्तर बहुत ऊँचा है किंतु भारत जैसे देशों में जहाँ ऐसा नहीं है विज्ञान में आम छात्र व जनता की दूरी बनी हुई है। परिणामतः शोध की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है। अतः आवश्यक है कि विज्ञान को हम अपनी भाषा में सीखें, जिसके लिए हिंदी में विज्ञान लेखन आवश्यक है।

आज देश की 90% जनता हिंदी बोल और समझ सकती है, इसलिए अगर विज्ञान व तकनीकी हिंदी में हो तो जनमानस में रुचि पैदा होगी। वैज्ञानिकों को ध्यान रखना चाहिए कि वे शोध एवं अनुसंधान जन-मानस के लिए कर रहे हैं। अतः यदि वे उसे हिंदी में लिखें तो जिनके लिए यह है, वे भी उसे समझ सकेंगे। उदाहरण देते हुए राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान लखनऊ के वैज्ञानिक डॉ० जयेंद्रकुमार चौधरी कहते हैं कि हम शोध किसानों के लिए करते हैं और उसे अँग्रेजी भाषा में प्रकाशित करते हैं। कैसे किसान उसे पढ़ पाएगा? अपनी फसल की सुरक्षा कर पाएगा या उत्पादन बढ़ा पाएगा। इसी कार्यशाला में पद्मश्री प्रो० महेंद्र सिंह सोढ़ा कटाक्ष करते हैं कि 'किसी लेखक की कलम को विज्ञान में लेखन कार्य हेतु सरकार ने नहीं रोका था, फिर भी आज बाजार में विज्ञान की हिंदी में लिखी किताबें प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नहीं है। अतः दोष सरकार और लेखक दोनों का है। सरकार ने इस ओर विशेष ध्यान दिया होता, तो आज तस्वीर

कुछ और होती।² स्वतंत्रता के 65 वर्षों बाद भी विज्ञान को हिंदी में लिखने की चर्चा करना चिंताजनक है। आज आवश्यकता है कि स्कूल और कॉलेज स्तर से ही विज्ञान को हिंदी में पढ़ाया जाए, परंतु दोनों ही स्तर से ही विज्ञान लेखन में स्तरीय कार्य नहीं हुआ है। देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर, लखनऊ विश्वविद्यालय एवं बरकतुल्ला विश्वविद्यालय भोपाल के पूर्व कुलपति होने के नाते प्रो० महेंद्र सिंह सोढ़ा इस बात से भलीभाँति अवगत हैं कि स्नातक स्तर पर तो विज्ञान की किताबें हिंदी में मिलती ही नहीं हैं, जिससे अँग्रेजी में कमजोर छात्र बहुत पीछे रह जाते हैं। शोध तो पूरी तरह से अँग्रेजी में ही होता है, जो सबसे बड़ी चुनौती है।³

हिंदी में शोध न होने का प्रमुख कारण एवं वैज्ञानिकों या प्रोफेसरों के संकट के विषय में जयेंद्रकुमार चौधरी (वैज्ञानिक-NBRI) कहते हैं कि अगर वैज्ञानिक, शोध को अँग्रेजी में लिखकर किसी अच्छे जर्नल में न छपवाए तो उसकी आजीविका पर संकट आ जाएगा। अतः अँग्रेजी में लिखना उसकी मजबूरी भी बन जाता है।⁴ अतः आवश्यक है कि इस क्षुद्र मानसिकता एवं जर्नल में छपवाने की अनिवार्यता से बाहर आकर वैज्ञानिक एवं शोधार्थी या विद्वानों को अपनी भाषा में मात्र जनता के लिए काम करने की छूट दी जाए।

आज भारत में 2800 कॉलेज और 268 विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है और तब भी यह आश्चर्य और खेद का विषय है कि विज्ञान, तकनीकी, चिकित्साशास्त्र आदि में अभी भी अँग्रेजी का ही बोलबाला है और इसके लिए हिंदी भाषा में विज्ञान एवं तकनीकी आदि विषयों के लिए शब्दावली की कमी का बहाना किया जाता है। किसी भी देश में उसकी भाषा आम आदमी बढ़ाता है। शब्द अर्थ के अनुसार बदलते जाते हैं। जब इंग्लैंड के पार्लियामेंट में वहाँ की भाषा अँग्रेजी स्वीकृत हुई तो उस समय अँग्रेजी में सिर्फ 10,000 शब्द थे। वर्तमान में एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में 20 लाख शब्द हैं। यह वहाँ की आम जनता, विद्वानों व सरकार के सम्मिलित प्रयास का परिणाम है। यही प्रयास हमें भी भारत में करना है।

इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए सरकार ने कुछ प्रयास किए हैं। हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद्, मुंबई, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग नई दिल्ली इस विषय पर देश भर में जागरूकता फैलाने का काम कर रही है। इस संस्था के जरिए विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर शब्दावली ग्रंथ बनाए जाते हैं। उसके लिए देश से जाने माने विद्वानों की सहायता ली जाती है। प्रत्येक वर्ष शब्दावली की एक लाख से अधिक किताबें बिकती हैं, जिनके मूल्य 10.00 से आरंभ होते हैं।

पूर्व उपनिवेशक तकनीकी शब्दावली आयोग श्री सतीशचंद्र सक्सेना, दिनांक 9-11, मई 2013 को भाभा अणु अनुसंधान केंद्र (बार्क) मुंबई में आयोजित संगोष्ठी में स्पष्ट करते हैं कि कथन की भाषा एक माध्यम है, जो लोगों को आपस में जोड़ती है। वह संप्रेषण की माध्यम है। शब्दावली लेखन को बोधित करती है। शब्दावली के बिना लेखन कार्य नहीं किया जा सकता। तकनीकी शब्द, निश्चित और अल्पाक्षरी है। शब्दावली लेखन की अनिवार्यता है।⁵

शब्द निर्माण की जितनी क्षमता संस्कृत में है उतनी अन्य किसी भाषा में नहीं। इस आधार पर शब्दावली का निर्माण काफी दिनों से चल रहा है। साहित्य और विज्ञान में तकनीकी में शब्दों के प्रयोग व अर्थ भिन्न प्रकार से व्यवहार करते हैं। साहित्य में एक ही अर्थ के लिए जितने अधिक शब्द उपयोग करेंगे उतना ही साहित्य महान कहलाएगा, परंतु तकनीकी में एक

शब्द के दो या तीन अर्थ दिए जाएँ तब भी कुछ दिनों बाद एक ही अर्थ, स्वीकृत हो जाएगा। श्री शिवशरणलाल शर्मा ने कई उदाहरण दिए जहाँ विज्ञान एवं अभियांत्रिकी के शब्दों के लिए हिंदी शब्द बनाए गए हैं। वे उदाहरण देते हैं जहाँ एक ही शब्द के लिए विभिन्न क्षेत्रों में हिंदी के लिए अलग-अलग शब्द हैं। जैसे—पिंग आयरन को कच्चा लोहा, इंटर डिसिप्लिनरी को अंतर विभागीय बोला जाता है। कई शब्द ऐसे भी होते हैं जिनके अर्थ विज्ञान की प्रत्येक शाखा में बदलने पड़ते हैं जैसे कि अँग्रेजी के कंडेसर शब्द को मेकैनिकल इंजीनियरिंग में द्रवरित्र कहेंगे तथा इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग में संग्राहक या संगारीत बोलेंगे, अँग्रेजी के बीम शब्द को सिविल इंजीनियरिंग में धरन कहेंगे तथा भौतिक विज्ञान में किरणपुंज बोलेंगे और इलैक्ट्रॉनिक्स में उसको कणपुंज कहेंगे, अँग्रेजी के क्रिटिकल को न्यूक्लियर साइंस में क्रांतिक कहते हैं लेकिन मेडिकल साइंस में उसे गंभीर बोलेंगे आदि। इसी प्रकार कुछ शब्द ऐसे हैं जिनके लिए कोई नया शब्द नहीं बनाया गया है। वे उसी प्रकार हिंदी में भी व्यवहृत होते हैं जैसे—पेट्रोल को हिंदी में भी पेट्रोल कहेंगे।

हिंदी की वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दावली पर क्लिष्टता का आरोप लगता है, किंतु कोई भी शब्द जब तक नया होता है तभी तक कठिन प्रतीत होता है, और जैसे-जैसे उसका प्रयोग बढ़ता जाता है वैसे-वैसे उसकी कठिनाईयाँ दूर होती चली जाती हैं। हिंदी के शब्द क्लिष्ट जरूर हैं, लेकिन शब्द बेहतर हैं और लिखने के लिए शब्दावली बेहतर होनी चाहिए।

विज्ञान लेखन के लिए वैज्ञानिक सोच के साथ ही बहुत सावधानी से शब्दों का प्रयोग अपेक्षित होता है। गलत शब्द का प्रयोग वाक्य के अर्थ को ही बदल देता है वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग आम जन के अनुरूप होना चाहिए। तकनीकी मामलों में अभिव्यक्ति बिल्कुल स्पष्ट होनी चाहिए। साथ ही इस शुष्क और नीरस विषय को रोचक, सरल एवं सहज तरीके से प्रस्तुत कर जनता के बीच लोकप्रिय बनाया जा सकता है। जहाँ तक संभव हो अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को उनके वर्तमान अँग्रेजी स्वरूप में प्रयोग करना चाहिए एवं हिंदी व अन्य भाषा में उनके जातीय रूप में अनुवाद करना चाहिए। कुछ सामान्य वैज्ञानिक शब्द जो पहले से प्रचलित हैं, उनका अनुवाद नहीं करना चाहिए।

हिंदी में विज्ञान लेखन का इतिहास 100 से 150 वर्ष पुराना है। सन् 1902 में हिंदी रसायन का इतिहास नाम से दो खंड प्रफुल्लचंद्र राय ने लिखे। आज इंटरनेट के प्रसार के साथ विज्ञान लेखन में नए आयाम जोड़े जा रहे हैं। डॉ॰ जाकिर अली रजनीश ब्लॉग पर हिंदी वैज्ञानिक कहानी लिखते हैं। आज दो दर्जन से अधिक ब्लॉगर हिंदी में विज्ञान लेखन का कार्य कर रहे हैं। मानव विज्ञान लेखन की स्थिति पर चर्चा करते हुए प्रो॰ नदीम हसनैन कहते हैं कि भाषा और शब्दावली तो पर्याप्त हैं, परंतु इस प्रकार कार्य करने वालों की कमी है।⁶

वास्तविकता यह है कि न तो हमारे पास ज्ञान की कमी है, न संसाधनों की। कमी है तो इच्छाशक्ति की। हिंदी में वैज्ञानिक शब्दों की रचना पर विचार करना होगा, नए शब्दों को गढ़ना होगा तभी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रदेश को पहचान मिल सकती है। नए शब्दों की गुणवत्ता तथा नए रचे गए शब्द राष्ट्रीय विकास के तथ्यों को नापने का पैमाने हो सकते हैं। प्रो॰ भूमित्रदेव का मानना है कि हिंदी के अधिकांश नए शब्द हमारे पढ़े-लिखे लोगों द्वारा नहीं रचे गए, लोकरजित है। आम व्यक्तियों ने हिंदी में शब्दों की रचना की है।⁷ भाषा और शब्दशिल्पियों

को उसे समझना और समझाना होगा। विद्वानों और शब्दशिल्पियों को एक साथ बैठकर शब्दों का गठन हिंदी में करना होगा तभी विज्ञान जन-जन तक पहुँचेगा।

संदर्भ

1. डॉ० जयेंद्रकुमार चौधरी, वैज्ञानिक NBRI, हिंदी में विज्ञान लेखन कार्यशाला, लखनऊ, विश्वविद्यालय, लखनऊ में 18.08.2012 में दिए गए व्याख्यान से
2. प्रो० महेंद्रसिंह, पूर्व कुलपति, इंदौर, लखनऊ एवं भोपाल विश्वविद्यालय, 'हिंदी में विज्ञान लेखन कार्यशाला' लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ में 18.08.2012 में दिए गए व्याख्यान से
3. वही
4. डॉ० जयेंद्रकुमार चौधरी, वैज्ञानिक NBRI, हिंदी में विज्ञान लेखन कार्यशाला, लखनऊ, विश्वविद्यालय, लखनऊ में 18.08.2012 में दिए गए व्याख्यान से
5. सतीशचंद्र सक्सेना, पूर्व उपनिदेशक, तकनीकी शब्दावली आयोग 9.11.2013 को 'भाभा अणु अनुसंधान केंद्र' में आयोजित संगोष्ठी में दिए गए व्याख्यान से
6. प्रो० नदीम हसनैन, मानवशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ 2 सितंबर, 2012 को लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित कार्यशाला में दिए गए व्याख्यान से
7. प्रो० भूमित्रदेव, उपरोक्त

श्रीराम परिहार का ललित निबंध विधा में योगदान

सुभाष

हिंदी ललित निबंध विधा में श्रीराम परिहार का विशिष्ट योगदान है। सरल, सहज व्यक्तित्व के धनी परिहारजी में लगन, साधना की अनबूझ प्यास है, जिसके कारण इनकी लेखनी यात्रा अभी तक चल रही है। 13 जनवरी 1952 को मध्य प्रदेश के खंडवा जिले के छोटे से गाँव फेफरिया में जन्मे श्रीराम परिहार जी को बचपन से ही भारतीय संस्कृति के प्रति गहरा लगाव रहा है। उच्च शिक्षा प्राप्ति की राह पर आगे बढ़ते हुए इन्होंने 'हिंदी ललित निबंध-स्वरूप एवं परंपरा का अनुशीलन' विषय पर डी.लिट् की उपाधि प्राप्त की। इनके जीवन परिचय के संक्षिप्त विवेचन के उपरांत इनके ललित निबंध-संग्रहों का विश्लेषण करना समीचीन होगा।

धूप का अवसाद

विवेच्य ललित निबंध-संग्रह का प्रकाशन सन् 1998 में हुआ। इस संग्रह में कुल 31 ललित निबंध हैं। प्रकृति की विविध छटाओं का चित्रण 'फिर सुबह हो आई' निबंध में हुआ है। प्रकृति सदैव नवसृजन की प्रेरणा देती है। समय का महत्त्व, मनुष्य की बढ़ती स्वार्थ भावना इनके ललित निबंधों में उभरकर सामने आई है। परिहार जी ने इन टूटते रिश्तों का वर्णन ललित-निबंध 'तितलियों के पंखों पर' में किया है—

'डाकिया एक लिफाफा दे जाता है। छोटी बिटिया कहती है—'मम्मी लिफाफे में राखी आई है।' मम्मी कहती है—'हाँ उधर पटक दे, तेरे पापा की बहन ने भेजी होगी।' संबंधों की छीज इस कदर हुई कि संबोधन बदल गए। समय था कि पापा की यही बहन बिटिया की बुआ और मम्मी की ननद हुआ करती थी। तब राखी लिफाफे में नहीं, बहन अपने आँचल में रखकर लाती थी या उसे झोले में रखकर लाती थी, जो नए सफेद कपड़े का बना होता था और जिस पर गर्मी-भर सुंदर कसीदाकारी की जाती थी कि सावन में भाई के घर, पिता के घर जाते समय राखी के साथ-साथ वह अपना मन और उस मन में हिलोरें लेते प्यार को जतन से रख सके। अब लिफाफा आता है। कागज के भीतर प्लास्टिक और स्पंज की बनी निर्जीव राखी को भाई ने बाँधा या नहीं, कौन देखता है और फिर भाई ने राखी है राखी, राखी नहीं राखी। एक औपचारिकता पूरी ठसक के साथ पसर गई है।'

ठिठके पल पाँखुरी पर

सन् 2000 में प्रकाशित आलोच्य ललित निबंध-संग्रह में 15 ललित निबंध हैं। इस संग्रह के निबंधों में मानव जीवन में नदियों तथा वृक्षों के महत्त्व को दर्शाया गया है। माँ की महत्ता को भी इस संग्रह के माध्यम से अभिव्यक्ति मिली है। देश की एकता और अखंडता के लिए

समर्पण की भावना अभिव्यक्त हुई है। जातिवादी विचारधारा का प्रभाव समाज की प्रगति में बाधक होता है। ग्रामीण परंपरा का निर्वहन करते हुए देश की विख्यात चौपाल संस्कृति के महत्त्व को अपने ललित निबंध 'सर्द रातों में अलाव चौपालों के' में चौपाल संस्कृति का चित्रण इस प्रकार करते हैं—'मैंने बात का और खुलासा किया—चौपाल ने दरअसल सिर्फ मानुस को ही बनाया है। ऐसा मानुस जो निरभिमान है। चौपाल पर आने के लिए किसी को निमंत्रण/आमंत्रण नहीं भेजा जाता था। वहाँ आने के लिए बुलावा नहीं दिया जाता था। चार-छः दस बैठकर जहाँ से बातें करते समय के साथ घुल-मिल जाया करते थे।'²

रसवंती बोलो तो

परिहार जी का यह ललित निबंध-संग्रह सन् 2002 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में 25 ललित निबंध हैं। इनमें अधिकतर निबंध प्रकृति सौंदर्य की छटा को बिखरते हैं। इन ललित निबंधों में जहाँ एक ओर स्वच्छ जल के महत्त्व को दर्शाया गया है, वहीं दूसरी ओर प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन पर भी चिंता व्यक्त की गई है। इन निबंधों में हमारी प्राचीन सभ्यता में मान-सम्मान की प्रतीक पगड़ी का चित्रण 'सिर सोहे कुसमल पाग' के इस प्रसंग में देखा जा सकता है—'मुकुट भले ही राजाओं के सिर चढ़ा स्वर्ण अभिमान में जकड़ा हुआ किलों में कैद सिंहासनों पर ऐंठता रहा हो, परंतु पगड़ी प्रजा का स्वाभिमान बनकर खुले मैदानों, खेत-खलिहानों, डोंगरो-बियाबानों में जन पत रखे रही। इसलिए सामान्य-जन भी घर से बाहर जाते समय पगड़ी बाँधना नहीं भूलता था। दूल्हे की तो शोभा और वीरता ही कुसमल पाग से होती है। बिना पुष्प के वृक्ष निफूला है। बिना पाग के दूल्हा मुंडा है। सामान्य आदमी-सा है। घर की खूँटी पर यदि पगड़ी टँगी है, तो बाहर से आनेवाला व्यक्ति बिना कुछ कहे ही समझ जाएगा कि घर का मालिक घर पर ही है।'³

झरते फूल हरसिंगार के

सन् 2006 में प्रकाशित इस ललित निबंध-संग्रह में कुल 26 निबंध हैं। भारतीय संस्कृति में पीपल के वृक्ष को पवित्र माना जाता है। जिस प्रकार भारतीय समाज में देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना की जाती है, उसी प्रकार पीपल की भी पूजा की जाती है। सावन मास में आकाश में छाई हुई काली घटाओं का भी चित्रण किया है। भारत में तीज त्योहारों का विशेष महत्त्व है और श्रीराम परिहार जी ने 'फागुनी रंग और प्रकृति पर्व' में होली के त्योहार का सुंदर चित्रण किया है—'फागुन के आगमन के साथ ही एक रंग और प्रकृति में घुलने लगता है। वह है—होली का रंग, प्रीत का रंग। फागुन के पूर्ण होते-होते यह रंग मन-मन से उमड़कर तन-मन को भिगो देता है। गाँव की फाग मंडली गाती है—

होली खेलअ रे नंद को लाल, कृष्ण महाराजअ।

गोकुल म रे मची रही धूम, मुरलिया बाजअ।

इसके साथ ही मृदंग, ढोलक एवं घेरा पर पड़ती थाप के साथ पिचकारी की रसधार में भीगा जन-मन आत्म-विस्मृति की अवस्था धारण करता है। हर आत्मा राधा-कृष्ण बन जाती है।'⁴

हंसा कहो पुरातन की बात

इस ललित निबंध-संग्रह में कुल 21 ललित निबंध हैं। इसका प्रकाशन सन् 2006 में

हुआ। प्रकृति के उद्गम की गाथा, बसंत ऋतु की इठलाती चेष्टाओं का चित्रण इस संग्रह में मिलता है। अर्थलिप्सा के कारण अकेलेपन की बढ़ती समस्या को भी चित्रित किया गया है। 'मेरा दिल फिक्र में है' निबंध में तीसरे युद्ध के प्रति गंभीर चिंता व्यक्त की गई है—'शून्य से शुरू हुआ विकास लौह-पात पर जाकर अट्टहास करता है। बारूद, बंदूक, बम सब धरे रह जाते हैं। बीमारी और महामारी का जश्न मनाने वाले अदृश्य बेशकीमती हो जाते हैं। विषाणुओं का प्रलयकारी कुनबा बढ़ने लगता है। उनके बीच में अभय खड़ा होकर 'नास्ट्रेडमस' छह अरब लोगों से कहता है कि अगला युद्ध एशिया में लड़ा जाएगा। इसमें अत्यंत विनाशकारी 'जैविक' आयुधों का प्रयोग किया जाएगा।'⁷

भय के बीच भरोसा

यह ललित निबंध-संग्रह सन् 2010 में प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में 28 ललित निबंध संगृहीत हैं। 'भय के बीच भरोसा' निबंध गुजरात के गोधरा कांड पर आधारित है। इस कांड में एक छोटी बच्ची बच गई थी, जिसका मार्मिक चित्रण इस निबंध में किया गया है। विज्ञापनों की बढ़ती प्रवृत्ति को भी इस संग्रह में दर्शाया गया है। पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते प्रभाव को निम्न प्रसंग में देखा जा सकता है—'नए साल की पहली सुबह दूरदर्शन पर समाचार देखा-सुना कि मुंबई में दस हजार लोगों ने बीती रात को रातभर शराब पीने का लाइसेंस लिया। व्यवस्था ने उन्हें लाइसेंस दिया भी। उनकी अतृप्त कामनाएँ शराब पीकर मदहोश दुनिया में चली जाना चाहती हैं, ताकि नए वर्ष के सूरज का जागते हुए सामना न करना पड़े। बेहोशी के आलम में सुबह हो जाए और पूरा साल इसी तरह अनसोची और अनसुलझी दशा में बीत जाए। ठीक है यह संसार जड़-चेतन, गुण-दोषमय है। सब संत हो जाएँगे तो शराब पद्मणी को कौन गले लगाएगा? और फिर रातें वेश्या की ही रंगीन हुआ करती हैं, संत की नहीं। वेश्यागामी की गृहस्थी बिगड़ती है और शराबी की गृहस्थी तथा जिंदगी दोनों।'⁸

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि श्रीराम परिहार एक सफल ललित निबंधकार हैं। उनके निबंधों में भारतीय संस्कृति, लोकगीत, पौराणिकता आदि की झलक मिलती है। देशभक्त, मातृत्व, राष्ट्रभाषा हिंदी तथा वर्तमान शिक्षा से जुड़े बिंदुओं को भी उभारा गया है। जहाँ उन्होंने विभिन्न विषयों को आधार बनाया है, वहीं सुंदर, सटीक शब्द-चयन भी किया है। अतः उनकी गणना उच्चकोटि के ललित निबंधकारों में होती है।

संदर्भ

1. धूप का अवसाद, डॉ॰ श्रीराम परिहार, पृ॰ 75
2. ठिठके पल पाँखुरी पर, डॉ॰ श्रीराम परिहार, पृ॰ 13
3. रसवंती बोलो तो, डॉ॰ श्रीराम परिहार, पृ॰ 49
4. झरते फूल हरसिंगार के, डॉ॰ श्रीराम परिहार, पृ॰ 46
5. हंसा कहो पुरातन की बात, डॉ॰ श्रीराम परिहार, पृ॰ 45
6. भय के बीच भरोसा, डॉ॰ श्रीराम परिहार, पृ॰ 20

पुत्र श्री रामकिशन बैनीवाल
ग्राम व पोस्ट भट्टू कलाँ
जिला फतेहाबाद (हरियाणा) 125053
मो॰ 09467244481

हरियाणवी लोकगीतों में कार्तिक मास का महत्त्व

डॉ० कृष्णा हुड्डा

सह-प्राध्यापिका (हिंदी)

भाषा एवं हरियाणवी संस्कृति विभाग

चौ० चरणसिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार (हरि०)

जब किसी परिस्थिति विशेष में मानव-हृदय तरलित होकर भावावेशों युक्त हो जाता है उस समय उसकी भावनाएँ गीत के रूप में मुखरित हो उठती हैं। तभी लोकगीत जन्म लेता है। जन-मानस के हर्ष-विषाद, सुख-दुख की झलक प्रस्तुत करता है। यह काम वह आदिकाल से करता चला आ रहा है। यह कहना असंभव है कि लोकगीत का जन्म स्थान कौन-सा है। जिस प्रकार धरती के अंधकार से ढके स्तर में से बहनेवाले झरने के उद्गम स्थल को कोई नहीं खोज सकता, उसी प्रकार लोकगीतों का उत्पत्ति स्थान भी बिना खोजा रह गया। जीवन के राग-विराग, आकर्षण-विकर्षण तथा सुख-दुख का जितना जीवंत, खरा और सिहरा देने वाला चित्र लोकगीतों के हर बोल में सुलभ होता है, उतनी निश्छल और सहज अभिव्यक्ति से परिपूर्ण हृदय की पुकार दूसरी विधाओं में देखने को नहीं मिलती। इन लोकगीतों में जीवन की राग-रागनियों की झंकार सुनाई पड़ती है। समाज और व्यक्ति के मेलजोल का भाव इन लोकगीतों में देखने योग्य है—‘यहाँ जो गाया जाता है वह निरा राग नहीं होता, बल्कि सबके हृदय का राग होता है।’ यही लोकोक्ति लोकगीतों के बारे में भी लागू होती है कि ‘कहने वाला डूम का और कहलवाने वाला सारा गाम।’

लोकगीत की यही सामाजिकता उसे समाज का आइना बना देती है। इस प्रकार लोकगीत अपने आसपास के वातावरण को ग्रहण करते रहते हैं तथा सतरंगे इंद्रधनुष की तरह जनजीवन के सभी रंगों और उमंगों की फूलझड़ी-सी छोड़ते मालूम पड़ते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि लोकगीतों का उद्देश्य केवल गाने वाले और सुनने वालों का मनोरंजन करना ही नहीं, बल्कि वे समाजसुधार करना भी हैं।

लोकगीतों का रचयिता यद्यपि एक व्यक्ति होता है, पर उसकी रचना समाज से संबंधित होती है। इनमें व्यक्ति का महत्त्व नहीं है। एक गीत मौखिक रूप में सदियों तक चलता रहता है। लोकगीत की इसी मौखिक परंपरा में प्रत्येक भाव और समय के गीत प्राप्त होते हैं।

सामान्य रूप में लोकगीत प्रकृति के उद्गार हैं। इन पर परिवर्तनशील समय का प्रभाव पड़ता है तथा उसी अनुपात में इनमें अंतर भी आते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव जीवन का लोकगीतों से गहरा संबंध है। लोकगीत समाज में बनते, बदलते और आगे चलते रहते हैं। नए गीतों के साथ पुराने गीत घुलते जाते हैं। नई पीढ़ी-नए भाव, यही तो इनकी परंपरा है। गीतों में विज्ञान की काँट-छाँट नहीं, मानव संस्कृति की सरलता और व्यापक भावों का उभार होता है।

भावों की लड़ियाँ लंबे-लंबे खेतों-सी स्वच्छ, पेड़ों की नंगी डालियों-सी रफ और मिट्टी की तरह सत्य हैं। उनमें कहीं भी बनावटीपन नहीं है। वैसे तो जनजीवन के बारह महीनों में कोई दिन ऐसा नहीं जब गीतों का आयोजन न होता हो। यहाँ ऋतुओं संबंधी गीतों का विभाजन वर्ष के भिन्न-भिन्न महीनों में मनाए जाने वाले उत्सवों, व्रत-त्योहारों को आधार मानकर किया जाता है।

चैत्र मास में हरियाणा में गणगौर पूजन होता है। चैत्र शुक्ल नवमी से पूर्व मिट्टी के गौरा और गौरी बनाए जाते हैं, प्रतिदिन गीत गाकर उनका पूजन किया जाता है। ज्येष्ठ मास में निर्जला एकादशी का व्रत रखा जाता है। इस दिन खरबूजा, पंखा और सुराही आदि दान किए जाते हैं। आषाढ़ में प्रति सोमवार माता पूजी जाती है। श्रावण में हरियाली तीज आती है। महिलाएँ इस दिन रंग-बिरंगे परिधानों में सज-धजकर झूला झूलती हैं। मेंहदी रचाई जाती है व चूड़ियाँ आदि पहनी जाती हैं। रक्षाबंधन व गुरु पूर्णिमा भी इसी महीने में आती हैं। भाद्रपद में कृष्ण जन्माष्टमी का व्रत रखा जाता है। आसौज (अश्विन) माह के पहले पंद्रह दिन कनागत (श्राद्ध) के होते हैं। इनमें पितरों को श्राद्ध दिया जाता है। ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है। शुक्ल पक्ष (अँधेर) के पहले नौ दिन दुर्गा पूजन होता है तथा दसवें दिन विजयादशमी मनाई जाती है। अस्त्र और पुस्तकें पूजी जाती हैं। दशहरे तक साँझी रखी जाती है, पूजा होती है। यह देवी का रूप है। कन्याएँ हर रोज साँझी के गीत इस प्रकार गाती हैं—

साँझी संझो हे कनागत परले पार
देखण चालो हे ये साँझी के लणिहार

कार्तिक मास यानि (कात्यक्) का हमारे लोकगीतों में विशेष महत्त्व है। यह एक तरह से आध्यात्मिक मास माना जाता है। ऐसी मान्यता है कि ब्रह्मा के पुत्र ने ब्रह्मा से पूछा कि पृथ्वी लोक पर रहने वाले लोगों को इस सांसारिक आवागमन से कैसे छुटकारा मिले? तब ब्रह्मा ने, जो इस संसार के निर्माता हैं, कहा कि कार्तिक मास में स्नान करने व दीप दान करने से मुक्ति मिलेगी। तब से कार्तिक मास में स्नान आदि की परंपरा आज तक चली आ रही है। इस मास में कार्तिकेय की पूजा की जाती है। गीत, भजन और हरजस गाए जाते हैं। तुलसी की पूजा होती है।

कार्तिक मास में प्रातःकाल सर्दी से ठिठुरते हुए स्नान करने के लिए जाती हुई स्त्रियाँ जो भजन गाती हैं, वह आध्यात्मिक उमंग अन्य मासों के गीतों द्वारा प्रकट नहीं हो सकती। इस वर्ग के गीतों का सामयिक आनंद है। हरियाणा के इन लोकगीतों में प्रदेश की सभ्यता, संस्कृति और समाज के दर्शन हो जाते हैं। कार्तिक स्नान में जैसा कि कहा जा चुका है, सभी स्त्रियाँ आस्था रखती हैं। हरियाणा की एक बाला जो अभी वयस्क हो रही है, कार्तिक नहाना चाहती है, लेकिन माता-पिता, भाई-भावज किसी कारणवश उसे नहाने से मना कर देते हैं।

प्रस्तुत गीत में कृषक बाला साहस बटोरकर उनकी आज्ञा लेना चाहती है—

परस बठंता अपणा बाबल बूझ्या,
कहो तो कात्तक न्हालूं हो राम।
कात्तक न्हाणा बेट्टी बड़ा ए दुहेल्ला,
लाओ न बाग बगीचे हो राम।
दूध बिलोती अपणी मायउ बूझ्या,

कहो तो कात्तक न्हालूँ हो राम।
कात्तक न्हाणा बेट्टी बड़ा ए दुहेल्ला,
सींचो धरम की क्यारी हो राम।
धार काढतां अपणा बीरण बूझ्या,
कहो तो कात्तक न्हालूँ हो राम।
कात्तक न्हाणा ए बेब्बे बड़ा ए दुहेल्ला,
ल्यो न गोद भतीजा हो राम।
पीसणा पीसती अपणी भावज बूझ्या,
कहो तो कात्तक न्हालूँ हो राम।
कात्तक न्हाणा नणदल बड़ा ए दुहेल्ला,
काढो न कोई कसीदा हो राम।

इस गीत में साधारण दैनिक कर्तव्यों ने धार्मिक मान्यता पर भी काबू पा लिया है। अतः हरियाणा की श्रमप्रधान सांस्कृतिक विरासत मानव के लिए नया संदेश है। धर्म-कर्म दोनों सहचर हैं। लड़की अभी 'याणी' है। संभवतः उसकी भावनाओं को बदलने के प्रयास इसलिए किए जा रहे हैं कि कहीं सदी न लग जाए। अतएव: इसका अर्थ यह कभी नहीं लगाना चाहिए कि हरियाणा के लोग धर्म को महत्त्व नहीं देते।

निम्नलिखित गीत की गायिका कृष्ण प्रेम में विभोर है। सुबह पानी भरने गई तो मटका फोड़ आई। माँ ने पूछताछ की तो घुमा-फिराकर उत्तर देती है—

आधी रात पहर का तड़का, तुलसां पाणी नै चाल्ली हो राम,
नहर का जल भरण गई थी।
काहे की तेरी ओघड़-दोघड़, काहे की जल झारी हो राम,
नहर का जल भरण गई थी।
चाँदी की मेरी ओघड़-दोघड़, सब सोने की झारी हो राम,
नहर का जल भरण गई थी।
चटक-मटक मेरी दोघड़ टूटी, मैं जाणूँ कड़ै टूटी हो राम,
नहर का जल भरण गई थी।
साथ की साथण न्यूँ बोली, तुलसां ओड कँवारी हो राम,
नहर का जल भरण गई थी।
के बेटी नारद तैं ब्याहूँ, के शिवजी के परणाऊँ हो राम,
नहर का जल भरण गई थी।
नारद तो बाबल नारद मचावै, शिवजी लटा खिडावै हो राम,
के बेटी चंदा घर ब्याहूँ, के सूरज परणाऊँ हो राम।
सूरज तो बाबल तपै घनेरा, चंदा की रैन अँधेरी हो राम,
अपणा वर बाबल मैं आप बताऊँ, ज्यों काया सुख पावै हो राम,
ब्याहो न बाबल आप करसण कै, वो तो मन्नै पियारा हो राम।

कार्तिक मास की अमावस्या को श्री रामचंद्र जी 14 वर्ष के वनवास के पश्चात् अयोध्या लौटे थे। अतः इस दिन दीपावली पर्व मनाया जाता है। पूरे देश में इस दिन जगमग-जगमग होती है। इसलिए भी कार्तिक मास का महत्त्व बढ़ जाता है। सुबह स्नान के लिए जाती महिलाएँ 'हे री कोय राम मिले भगवान' की टेक वाले गीतों को गाती हैं। राम के वन-गमन से लेकर अयोध्या लौटने तक व सीता को त्यागने की घटना, लव-कुश का जन्म, इन सभी का इन गीतों में बड़ा मार्मिक चित्रण मिलता है। निम्नलिखित गीत देखिए—

राम अर लछमन दसरथ के बेट्टे
दोनों बणखंड जाएँ
हे री कोए राम मिले भगवान।
एक बण चाल्ले दो बण चाल्ले
तीज्जे म्हँ लग आई प्यास
हे री कोए राम मिले भगवान।
छोट्टे छोट्टे छोहरे गरुएँ चरावै
पानीड़ा पिलाओ नंदलाल
हे री कोए राम मिले भगवान।
नाँ कोए कूवा नाँ कोए जोहड़
नाँ कोए सरवर ताल
हे री कोए राम मिले भगवान।
नाँ कोए लोट्टा नाँ कोए बाल्टी
कैसे पिलावै नंदलाल
हे री कोए राम मिले भगवान।
सीता के बागाँ तै उठी बदलियाँ
बरस रही झड़ लाय
हे री कोए राम मिले भगवान।
भर गए कूएँ भर गए जोहड़
भर गए सरवर ताल
हे री कोए राम मिले भगवान।

उपर्युक्त गीत में कितना मार्मिक चित्रण है। मन करुणा से सरोबार हो जाता है।

'करवा चौथ' व अहोई अष्टमी का व्रत भी इसी महीने में आता है। महिलाएँ अपने पति की लंबी उम्र की कामना हेतु यह व्रत रखती हैं। सारा दिन भूखे रहकर शाम को सज-सँवरकर कथा सुनती हैं। रात को चंद्रमा को अर्ध्य देकर भोजन करती हैं। अहोई अष्टमी का व्रत संतान के लिए किया जाता है। इस दिन माताएँ पूरे दिन अन्न नहीं खातीं व शाम को तारे देखकर व्रत खोलती हैं। सभी के कल्याण की कामना करने वाली धन्य है, भारत देश की नारी।

दीपावली के बाद भैया दूज का पर्व भी कार्तिक मास में आता है। एक लोककथा के अनुसार यम देवता व उनकी बहन का आपस में बहुत प्यार था। शादी के बाद बहन अपनी ससुराल चली जाती है। भाई बहुत दिन तक उससे मिलने नहीं जा पाता। बहन बार-बार बुलावा भेजती

है। अंत में यम देवता भैया दूज के दिन अपनी बहन से मिलने जाते हैं। बहन भाई का बहुत आदर सत्कार करती है। तरह-तरह के पकवान बनाती है जिससे अभिभूत होकर वह आशीर्वाद देता है। कि इस दिन जो भाई अपनी बहन के घर जाकर भोजन करेगा, उसकी अकाल मृत्यु नहीं होगी।

कार्तिक मास में स्नान करने की प्रथा के साथ-साथ 'पथवारी' सींचने की भी परंपरा रही है। यह लोक विश्वास है कि जीवन में सही 'पथ' पथवारी ही दिखाती है। कार्तिक स्नान करते समय सबसे पहले दिन इसका निर्माण होता है। मिट्टी और बालू रेत को इकट्ठा करके उसको पानी से नित्य प्रति सींचा जाता है। इसके उपर जौ बोए जाते हैं। अंतिम दिन इस पथवारी को उखाड़कर गंगा में बहा दिया जाता है। तब इसकी पूजा के समय यह गीत गाकर उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट की जाती है—

पथवारी ए तूँ पथ की ए राणी
 भूल्यां नै राह तिसायौँ नै पाणी
 बिछड़्यौँ नै आण मिलाइओ हो राम
 पथवारी ए तूँ सींजै कुँआरी
 आच्छ्या घर बर पाइओ हो राम
 पथवारी ए तूँ सींजै सुहागण
 पति की सेवा कराइयो हो राम
 पथवारी ए तूँ सींजै सपूती
 तूँ पुत्तर घर पाइओ हो राम
 पथवारी ए तूँ सींजै ए बूढ़ी
 बैकुण्ठा में वास पाइयो हो राम।

इस प्रकार के कार्तिक के गीतों में साधु भावों को समाहित किया गया है। हरजस, भजनों, प्रभातियों में जन-जीवन का जीवंत रूप उभरकर सामने आया है। किसान परिवारों में देव उठनी (देवोत्थान) ग्यारस का पर्व भी इसी माह के शुक्ल पक्ष में होता है। विष्णु देवता आषाढ़ में सोते हैं और कार्तिक में उठते हैं। देवोत्थान की प्रक्रिया का गीत नीचे दिया जा रहा है—

दे सुत्तीड़ा साढ़ जै मास
 दे उठीड़ा कात्यक मास
 ठाऊँ सूँ मै ठाऊँ सूँ
 छींके हाथ घलाऊँ सूँ
 छींके धरी चार कटोरी
 बाह्यण दीजै अक् बूढ़ी गाय
 भल-भलड़ी के पीले पात
 राज करै प्रांजल का बाप
 ओल्याँ कोल्याँ पड़्या हे जंजीरा
 यो भाई प्रेक्षा तेरा हे बीरा
 ओल्याँ कोल्याँ धरे ए जमेटे
 ये भाई कृष्णा तेरे बेदटे।

इस तरह बारी-बारी से सबका नाम लेकर सबकी कुशलता हेतु कामना की जाती है। धनतेरस पर भगवान धन्वन्तरी की पूजा की जाती है। आरोग्य का वरदान पाने के लिए उनकी पूजा की जाती है। इस दिन बर्तन खरीदने की परंपरा है। धनतेरस पर झाड़ू की पूजा का भी विधान है।

इसके अतिरिक्त कार्तिक गीतों में राधा-कृष्ण एवं शिव-पार्वती की प्रणय कहानी भी प्रतीक रूप में छाई रहती है। ये गीत बड़े मधुर तथा भावपूर्ण होते हैं।

वस्तुतः कार्तिक मास का वातावरण बड़ा पवित्र, धर्मनिष्ठ, नीति व भक्ति के गीतों से सराबोर होता है।

लोकगीतों के माध्यम से इस मास में समस्त भौतिकता को भेदकर परमार्थ के दर्शन किए जाते हैं क्योंकि संसार निस्सार और नाशवान है। मृत्यु के बाद उस महायात्रा पर मनुष्य को अकेले ही जाना पड़ता है। यह कटु सत्य सभी के मन में चेतना का प्रकाश उत्पन्न करता है—

ना घर तेरा, ना घर मेरा, चिड़िया रैन बसेरा है

इसी भाव का गीत इस प्रकार है—

इतणै तेल दिये बीच बाती
जगमग-जगमग हो रही हो राम
बल गया तेल निपट गई बाती
ले चलो-चलो हो रही हो राम।

यह लोकगीत यही संदेश दे रहा है कि मिट्टी का शरीर मिट्टी में मिल गया। इस नश्वर शरीर से मोह व्यर्थ है। परमात्मा का स्मरण ही मुक्ति का साधन है। देह की असारता और सांसारिक प्रपंचों से अलगाव के भाव कार्तिक के भजनों में पाए जाते हैं। इसी कारण लोकगीतों में कार्तिक मास को इतना महत्त्वपूर्ण माना गया है।

संदर्भ

1. जगदीशनारायण, भोलानाथ शर्मा, हरियाणा प्रदेश के लोकगीतों का सामाजिक पक्ष
2. डॉ॰ गुणपालसिंह सांगवान, हरियाणवी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन
3. डॉ॰ भीमसिंह, हरियाणा के लोकगीत
4. हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन भाषा विभाग, हरियाणा, चंडीगढ़

9/54 न्यू कैम्पस

चौ॰ चरणसिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय

हिसार (हरि॰) 125004

मो॰ 09416586171

अज्ञेय के काव्य में अस्तित्ववाद

डॉ० जसबीरसिंह, असि० प्रोफेसर
सेठ टेकचंद कालिज ऑफ एजुकेशन
रत्तनडेरा (कुरुक्षेत्र)

युग परिवर्तन के साथ मानव-मस्तिष्क की चिंतनधारा भी परिवर्तित होती रहती है और वही युग-दर्शन का रूप ग्रहण करती है। इतिहास साक्षी है कि जैसे-जैसे युग बदलता है, दार्शनिक चिंतन धाराएँ भी न्यूनाधिक रूप में बदलती हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में नवीन सिद्धांतों एवं अविष्कारों के प्रचलन के कारण मानव जीवन पर वैज्ञानिकता एवं सामाजिकता का व्यापक प्रभाव पड़ा। इसकी प्रतिक्रिया में, विश्व की नई परिस्थितियों में, एक ऐसे वाद का विकास हुआ, जो व्यक्ति की वैयक्तिकता और स्वतंत्रता को सर्वाधिक महत्त्व देता है। दर्शन और कला के क्षेत्र में इसे 'अस्तित्ववाद' कहते हैं। यद्यपि अस्तित्ववादी चिंतन के मूल में विभिन्न राज्य-क्रांतियों और पूर्ववर्ती दर्शनों की प्रतिक्रिया कार्यरत थी, तथापि उसके प्रचार-प्रसार का संपूर्ण उत्तरदायित्व दो विश्व युद्धों की विभीषिका और निरंतर विकसित विज्ञान के प्रभाव पर ही है। कीर्केगार्द, नीत्शे, जैस्पर्स, हैडगर, मार्शल, कामू और काफ़्का आदि की गणना अस्तित्ववादी चिंतकों में की जाती है। हिंदी का 'अस्तित्व' शब्द अँग्रेजी के Existence का पर्याय है, जिसका अर्थ है 'होने का भान'। पारिभाषिक अर्थों में अस्तित्व 'मैं हूँ' के अहसास का नाम है।¹

अस्तित्ववादी दार्शनिक मानते हैं कि जड़ पदार्थों में किसी अहसास का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः उनका कोई अस्तित्व नहीं है। केवल इतना ही नहीं, अस्तित्ववादी यहाँ तक कहते हैं कि मनुष्य में भी यदि 'मैं हूँ' का अहसास नहीं है, तो वह भी जड़ पदार्थों और पशु-पक्षियों की तरह अस्तित्वहीन है। अस्तित्ववादी दर्शन में केवल मनुष्य के अस्तित्व पर विचार किया गया है। डॉ० लालचंद गुप्त 'मंगल' के शब्दों में—'अस्तित्ववाद मानवीय जिजीविषा, सत्ता और स्वतंत्रता और महत्ता का दर्शन है।'² इस दर्शन का केंद्रीय सूत्र है 'अस्तित्व सार का पूर्ववर्ती है। यहाँ अस्तित्व का अर्थ है—मानव का अस्तित्व और 'सार' का अर्थ है—कोई निश्चित उद्देश्य, योजना, आकार आदि। अस्तित्ववादी कहता है कि मानव का अस्तित्व बिना योजना के तथा बिना उद्देश्य के निरर्थक है। मनुष्य को 'अपने अनंत उत्तरदायित्वों के बीच इस धरती पर असहाय और अकेला छोड़ दिया गया है।'

अस्तित्ववादी चिंतन को सक्रियता प्रदान करने में दोनों विश्व-युद्धों की विभीषिका की बड़ी भूमिका रही है। इसके चर्चित दार्शनिकों में ब्लेसी पास्कल, कीर्केगार्द, फेड्रिक नीत्शे, जैस्पर्स, हैडगर, मार्शल, सार्त्र, कामू आदि के विचारों को महत्त्वपूर्ण स्थान मिलता है।

ब्लेसी पास्कल (1623-1662 ई०)

फ्रांस का प्रसिद्ध गणितज्ञ और वैज्ञानिक था। स्पेंसीजड उनकी प्रसिद्ध रचना है। वह सोचता था, 'अनंत देशकाल न मुझे जानता है, न मैं उसे जानता हूँ। मैं अब इस स्थान पर क्यों हूँ, मैं किसी अन्य स्थान पर या किसी अन्य काल में क्यों नहीं हुआ? वह कौन-सी शक्ति है, जिसने मुझे यहाँ लाकर पटक दिया है?'

इस प्रकार पास्कल मनुष्य के अस्तित्व को अपने भीतर समझने का प्रयत्न करता है।

डेनमार्क के कीर्केगार्ड (1813-1855 ई०)

कीर्केगार्ड को 'अस्तित्ववादी' का प्रवर्तक माना जाता है। इसके अनुसार—'अस्तित्व शब्द का उपयोग इस दावे पर जोर देने के लिए किया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति की इकाई अपने आप में स्वयं जैसी है और अध्यात्मिक या वैज्ञानिक प्रक्रिया के संदर्भ में अविश्लेषणीय है।'³ फ्रांस के ज्यॉ पाल सार्त्र वास्तव में अस्तित्ववाद के पर्याय के रूप में जाने जाते हैं। डॉ० लालचंद गुप्त 'मंगल' के शब्दों में—'वस्तुतः सार्त्र ही वह दार्शनिक है, जिसने अस्तित्ववाद को अधुनातन जीवन और कलाओं की व्याख्या के एकमात्र दर्शन के रूप में मान्यता देने का अमूल्य प्रयत्न किया है।'⁴ सार्त्र को आलोचकों ने डूबी मानवता का एक गंभीर और महान चिंतक माना है। सार्त्र ने खुले शब्दों में बार-बार घोषणा की है।

इस प्रकार अधिकतर अस्तित्ववाद चिंतक जर्मनी और फ्रांस में जन्मे और बड़े हुए हैं। इनके जीवन में अभावों व दुखों ने इन्हें अंतर्मुखी बना दिया।

अस्तित्ववाद के अनुकूल भारतीय परिवेश

प्रायः यह सुनने में आता है कि द्वितीय विश्व-युद्ध के परचात् यूरोप को जिस संकट का सामना करना पड़ा, भारत में वैसी परिस्थितियों का उदय नहीं हुआ। अतः यहाँ अस्तित्ववाद को मात्र फैशन के रूप में अपनाया गया है। ऐसी अन्य उद्घोषणाएँ वास्तविकता से आँख मूँदकर की गई हैं, क्योंकि स्वतंत्र भारत में ही रही बहुमुखी उन्नति के बावजूद जो चित्र उभरता है। उसका चित्रण इस प्रकार किया जा सकता है।

'संकट अंतर्राष्ट्रीय सीमा पर संकट युद्ध की अपरिहार्य आशंका। संदेह और अविश्वास की उगती हुई खौफनाक फसल। पंचवर्षीय योजनाओं की खुशहाली से झाँकता हुआ भारत का नरककाल। राष्ट्रीय प्रतीकों की अक्षम्य अवमान्यता, अवहेलना, तिरस्कार। विदेशी मुद्रा का अंबार, आवेदन, प्रार्थना, भीख और इस पर भी भिखारी की संज्ञा का ढीठ अस्वीकार। समस्याओं की उलझन, उपलब्धियों की मरीचिका।' इन्हीं तथा ऐसी ही समान राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में हमारे लेखकों ने अपनी लेखनी उठाई है।

अज्ञेय का पूरा नाम सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय है। साहित्य-जगत में 'अज्ञेय' उपनाम से ही जाने जाते हैं। अज्ञेय का जन्म 7 मार्च 1911 में उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के कसिया नामक स्थान पर हुआ। हिंदी साहित्यकारों में ही नहीं, बल्कि भारतीय साहित्यकारों में 'अज्ञेय' के जीवन और अनुभवों जैसी विविधता तथा उतार-चढ़ाव शायद ही किसी साहित्यकार के जीवन में दिखाई पड़ते होंगे। हाँ, पश्चिम के बहुत-से साहित्यकारों का जीवन 'अज्ञेय' के जीवन की भाँति विविधतापूर्ण रहा है। भगनदूत, चिंता, इत्यलम्, हरी घास पर क्षण भर, अरी ओ करुणा प्रभामय, आँगन के पार द्वार, कितनी नावों में कितनी बार (ज्ञानपीठ पुरस्कार से पुरस्कृत) 'अज्ञेय' की

काव्य-कृतियाँ हैं। अज्ञेय की कविताएँ अस्तित्ववाद की गंभीर रचनात्मक अभिव्यक्ति हैं। अस्तित्ववादी प्रभाव को अज्ञेय स्वयं स्वीकारते हैं। 'उन दो-दो प्रवृत्तियों में जिन्हें इसाई अस्तित्ववाद और वैज्ञानिक अस्तित्ववाद कहा जाता है। मेरी विशेष रुचि रही है, क्योंकि मैं समझता था और अब भी मानता हूँ कि यूरोप के वर्तमान संकट को समझने के लिए इन प्रवृत्तियों का अध्ययन आवश्यक है।'⁶

अस्तित्ववाद मूलतः पश्चिमी अवाधारणा है, यद्यपि अनेक चिंतकों ने इसे बौद्ध दर्शन और अरविंद दर्शन के माध्यम से भारतीय-परंपरा में खोजने का प्रयास किया है। अस्तित्ववाद का उद्भव मानवीय जीवन पर आ पड़े संकट के कारण हुआ और मानव-मन की कुंठाओं ने इसे प्रस्फुटित किया। अकेलापन, निराशा, दुःखवाद, मृत्युबोध, संत्रास, व्यक्तिवाद का समर्थक आदि मनःस्थितियाँ मानव जीवन का परम सत्य बन चुकी थीं। यहाँ अस्तित्ववाद दर्शन के इन्हीं कुछ चिंतन तत्वों और अनुभूतियों के प्रभावाधीन अज्ञेय के काव्य में चर्चा का विषय है। हिंदी कविता में 1943 ई० के बाद प्रयोगवाद और नई कविता पर अस्तित्ववाद का गहरा प्रभाव लक्षित होता है। यह प्रभाव अँग्रेजी साहित्य के माध्यम से आया है। अज्ञेय की कविताएँ इस दर्शन की गंभीर रचनात्मक अभिव्यक्ति हैं। यह सुखद है कि अज्ञेय का अस्तित्ववाद के उस पक्ष से प्रभावित नहीं किया। जिसने हिंदी के अधकचरे लोगों पर तीखा प्रभाव डाला और जो निश्चय ही भारतीय मनीषा एवं परिस्थिति के अनुकूल है। ईसा का क्रॉस स्वयं कष्ट सहकर दूसरों को मुक्ति देने का प्रतीक है और यह भाव अज्ञेय के काव्य में भी मिलता है—

दुःख सबको माँजता है और
चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने, किंतु
जिनको माँजता है
उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखे।⁷

अर्थात् अज्ञेय जागरण और सृजन के इन क्षणों को विस्तार देने के लिए, आस्था को घनीभूत बनाने के लिए 'दर्द' के महत्त्व को समझते हैं। वे समझकर कहते हैं कि दुःख सबको माँजकर यही तो सिखाता है कि दूसरों को मुक्त रखें।

हिंदी की प्रयोगवादी कविता में 'क्षण के भोग' के प्रति विशेष रुझान प्रकट हुआ। यह अनुभव किया जाने लगा कि अनुभूत सत्य की उपलब्धि किसी विशिष्ट क्षण में होती है, वह विशिष्ट क्षण ही जीवन का अद्वितीय क्षण है—

आज के विरक्त इस क्षण को
पूरा हम जी लें, पी लें, आत्मसात् कर लें।⁸

'हरी घास पर क्षण भर' और 'नदी के द्वीप' इसी शुद्ध वर्तमान क्षण की अभिव्यक्ति है। क्षण की यह अद्वितीय अनुभूति है। क्षण को भोगते हुए भी व्यक्ति में दायित्व चेतना निरंतर बनी रहती है। वह क्षण को पूरी ईमानदारी से भोग लेना चाहता है। ईमानदारी से भोगे हुए इन क्षणों के प्रति अपने दायित्व को भी वह वहन करता है—

एक बूँद सहसा
उछली सागर के झाग से
रंग गयी क्षण-भर
ढलते सूरज की आग से।

मुझको दीख गया
सूने विराट के सम्मुख।⁹

अस्तित्ववादी चिंतकों ने मृत्यु और जीवन की सार्थकता-निरर्थकता पर व्यवस्थित रूप से चिंतन किया है। अतः इसकी अभिव्यक्ति करते हुए अज्ञेय कहते हैं—

फूल को प्यार करो
पर झरे तो झर जाने दो
जीवन का रस लो देह-मन आत्मा की रसना से
पर जो मरे उसे मर जाने दो
जरा है भुजा तितीर्षा की: मत बनो बाधा
जिजीविषु को तर जाने दो।
आसक्ति नहीं आनंद है संपूर्ण व्यक्ति
की अभिव्यक्ति:
मरू में, किंतु मुझे घोषित कर जाने दो।¹⁰

व्यक्ति स्वातंत्र्य का समर्थक होने के कारण वह सभी सामाजिक मान्यताओं को नकारता है सभ्यता, संस्कृति, परंपरा, नैतिक नियम, संविधान सब व्यक्ति की स्वतंत्रता के मार्ग में बाधाएँ हैं। अस्तित्ववादी समाज के प्रवाह में पड़कर अपने अस्तित्व को उसमें विलीन नहीं करना चाहता। अज्ञेय जी ने व्यक्तिवाद की इस धारणा को 'नदी के द्वीप' कविता में इन शब्दों में व्यक्त किया है—

हम नदी के द्वीप हैं
हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर
स्रोतस्विनी बह जाय
किंतु हम हैं द्वीप
हम धारा नहीं हैं।
स्थिर समर्पण है हमारा
स्रोतस्विनी बह जाय
किंतु हम बहते नहीं हैं
क्योंकि बहना रेत होना है।¹¹

अस्तित्ववाद मानता है कि यदि व्यक्ति अपने आपको समाज के प्रवाह में बह जाने दे तो उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा, जिस प्रकार नदी का द्वीप प्रवाह में बहकर रेत बन जाता है और अस्तित्व खो बैठता है।

एकाकीपन या अकेलेपन में मनुष्य व्यष्टिगत या समष्टिगत दोनों रूपों में स्वयं को कटा-कटा सा महसूस करता है। वैसे तो मनुष्य आता अकेला है, जाता भी अकेला ही है, लेकिन यह उसकी प्रकृति के कारण बनी विवशता है। यही कारण है कि आज का लेखक बार-बार व्यक्ति के अकेलेपन का आग्रह करता हुआ अपनी रचनाओं में उसकी दुहाई देता है। अज्ञेय की मान्यता है कि चरम वेदना एवं अनुभूति के क्षणों में व्यक्ति अकेला ही होता है, 'मैं मानता हूँ कि चरम आवश्यकता के, चरम दबाव के, निर्णय करने की आवश्यकता के क्षण में हर व्यक्ति

अकेला होता है और इस अकेलेपन में वह क्या करता है इसी में उसके आत्मिक धातु की कसौटी है।¹² अकेलेपन का यही भाव अज्ञेय की इस कविता में व्यक्त होता है—

भीड़ों में
जब-जब जिसमें आँखें मिलती हैं
वह सहसा दिख जाता है।
मानव
अंगारे-सा-भगवान-सा
अकेला।¹³

एक अन्य स्थान पर भी अज्ञेय का अकेलापन और एकाकीपन नजर आता है—

यह दीप अकला स्नेह भरा
है गर्वभरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो
यह अद्वितीय: यह मेरा रू यह मैं स्वयं विसजता।¹⁴

वास्तव में 'दीप-अकेला' कविता अज्ञेय के जीवन-दर्शन का बीजमंत्र है। अस्तित्ववाद की स्वच्छंदता या चयन की स्वतंत्रता की प्रवृत्ति में फ्रायड की काम-प्रवृत्ति की एक प्रबल धारा बन गई है। अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती आदि सभी प्रमुख कवि इसमें प्रवृत्त हुए हैं। अज्ञेय के काव्य में यह कुंठा उभरकर आई है जैसे—

आह, मेरा श्वास है उत्तप्त
धमनियों में उमड़ आयी है लहु की धार
प्यार है अभिशप्त
तुम कहाँ हो नारि?¹⁵

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि मनुष्य के अस्तित्व को जीवन और मृत्यु के बीच रेखांकित करने वाली वैचारिकता के रूप में अस्तित्ववादी दर्शन का विकास हुआ। अस्तित्ववादियों की रचनाओं में मानव-जीवन की व्यर्थता, यौन प्रवृत्तियों के घृणास्पद विश्लेषण, अनिश्चयात्मकता के चित्रों को देखकर समीक्षकों ने अस्तित्ववादी साहित्य को आस्थाहीन और निराशावादी घोषित किया है, परंतु वास्तव में अस्तित्ववादी दर्शन को केवल निराशा और अर्थशून्यता का चिंतन नहीं माना जा सकता, क्योंकि ऐसे समय में अस्तित्ववादियों ने मनुष्य की अदम्य जिजीविषा का शंखनाद किया जब समूचे संसार पर द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण मौत की विभीषिका साकार थी। अज्ञेय के काव्य में हमें अस्तित्ववाद का प्रभाव पूर्णतः नजर आता है। अज्ञेय अस्तित्ववादी प्रभाव को स्वयं स्वीकारते हैं। एकाकीपन, क्षण, निराशा, व्यक्ति स्वातंत्र्य ये सभी प्रवृत्तियाँ हमें उनके काव्य में प्राप्त होती हैं।

संदर्भ

1. अज्ञेय, पूर्वा, पृ० 242-43
2. अज्ञेय, इंद्रधनुष रौंदे हुए, पृ० 44
3. अज्ञेय, अरी ओ करुणा प्रभामय, पृ० 140
4. अज्ञेय, बावरा अहेरी, पृ० 69

5. अज्ञेय, आत्मनेपद, पृ० 67-68
6. अज्ञेय, अरी ओ करुणा प्रभामय, पृ० 161
7. अज्ञेय, दीप अकेला, पृ० 3
8. अज्ञेय, पूर्वा, पृ० 132-33
9. बालेंदुशेखर तिवारी, वस्तुनिष्ठ काव्यशास्त्र, प्रथम संस्करण, 2005, पृ० 127
10. लालचंद गुप्त 'मंगल' उत्तर-शती के श्रेष्ठ हिंदी कवि, प्रथम संस्करण, 2003, पृ० 34
11. तेजपाल चौधरी, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की रूपरेखा, प्रथम संस्करण, पृ० 267
12. वही, पृ० 268
13. लालचंद गुप्त 'मंगल', आधुनिक युगबोध और साहित्य, संस्करण 2003, पृ० 141
14. लालचंद गुप्त 'मंगल', अस्तित्ववाद : दार्शनिक तथा साहित्यिक भूमिका, पृ० 60
15. चंदा गिरीश, अस्तित्ववादी हिंदी कहानी, प्रथम संस्करण, 2009, पृ० 24

शोध दिशा

'शोध दिशा' हिंदी में प्रकाशित विश्वस्तरीय शोध पत्रिका है, जो प्रत्येक तीन माह के अंतराल से नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है।

पत्रिका में साहित्य और समाजविज्ञान से संबंधित शोध आलेख प्रकाशित किए जाते हैं।

'शोध दिशा' को भारत के प्रतिष्ठित शोध संस्थान हिंदी साहित्य निकेतन द्वारा प्रकाशित किया जाता है।

'शोध दिशा' का उद्देश्य है शोध का विकास और शोध-छात्रों एवं शोध-निदेशकों के मध्य संपर्क-सूत्र का निर्माण।

हमें आशा है कि पत्रिका को देश के सभी शोध-निदेशकों, शोध-छात्रों और साहित्य-प्रेमियों का सहयोग प्राप्त होगा।

विश्वस्तर पर हिंदी का प्रयोजन

डॉ० जसबीरसिंह, असि० प्रोफेसर
सेठ टेकचंद कालिज ऑफ एजुकेशन
रत्तनडेरा (कुरुक्षेत्र)

‘मौखिक या लिखित भाषा का उदगम विचारों के प्रादुर्भाव से होता है। मौखिक भाषा ध्वनि के रूप में कर्णप्रिय होती है, जबकि लिखित भाषा ध्वनि की अभिव्यक्ति का माध्यम बनकर चित्रमय लिपिक के रूप में चक्षुप्रिय होती है। इस संदर्भ में वाङ्मय की संरचना के लिए विचार ही सबसे महत्वपूर्ण होते हैं और इनको यदि मातृभाषा में व्यक्त किया जाए, तो विचारों का संप्रेषण ठीक एवं बोधमय होता है, यह एक वैज्ञानिक सत्य है और इस स्थिति में ही उस भाषा में रचा गया साहित्य उच्चकोटि का होकर विश्वस्तरीय बनने की क्षमता रखता है।’

सभ्यता का विकास भाषागत विकास का पर्याय होता है। बिना भाषा के मानव पंगु-समान है। भाषा का अस्तित्व मानव-मनों में हिलोरे ले रहा था, लोग स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रहे थे। उन्हें संवाद, विश्वास और स्वदेशाभिमान की भाषा चाहिए थी। स्वतंत्रता-प्राप्ति के दृढ़ संकल्प के साथ ही राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को अपनाने का संकल्प भी लिया गया। सन् 1925 के कानपुर अधिवेशन में राष्ट्रीय कांग्रेस ने इसकी घोषणा भी कर दी थी।

हिंदी के लिए समय-समय पर अनेक नामों का प्रचलन हुआ, यथा-भाषा, भाखा, हिंदवी, हिंदुई, रेखता, दक्खिनी, दकनी, खड़ीबोली, हिंदुस्तानी, राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा आदि। ‘कौरवी’ या ‘मेरठी’ नाम से प्रचलित हिंदी की ‘पश्चिमी हिंदी’ नामक शाखा की बोली से हमारा अभिप्राय खड़ीबोली से है। यही बोली देवनागरी में लिखे जाने पर राजभाषा के रूप में मानी जाती है।

देश के अधिक-से-अधिक समुदायों की एक संपर्क भाषा हो, इस तथ्य के अंतर्गत संविधान-निर्माताओं ने संविधान के अनुच्छेद 343 से 351 तक राजभाषा हिंदी का निर्धारण किया। स्वतंत्रता के संकल्प के साथ ही राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को अपनाने का संकल्प भी लिया गया।

वस्तुतः हिंदी एक ऐसी सर्वमान्य भाषा के रूप में उभरी, जिसे समूचा राष्ट्र अपने दैनिक जीवन में बोलता और समझता है। भाषा को सम्मान देश को सम्मान देने के समान है। भारतेंदु जी का भाषा-प्रेम इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है—

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल

बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल²

गांधी जी का विचार था कि कोई भी स्वतंत्र राष्ट्र, राष्ट्रभाषा के बिना गूँगा है।³

इसी प्रकार डॉ० राममनोहर लोहिया ने हिंदी के प्रति अपनी सच्ची आस्था को प्रकट करते हुए था कि ‘हिंदी में सात लाख के करीब शब्द हैं, जबकि अँग्रेजी में अढ़ाई लाख के आस-पास।

इसके अलावा अँग्रेजी की शब्द गढ़ने की शक्ति नष्ट हो चुकी है, जबकि हिंदी को अभी अपनी जवानी ही नहीं चढ़ी। संसार की सबसे धनी भाषा है हिंदी, लेकिन बरतनों की भाँति इन शब्दों पर धरे-धरे कोई जम गई है। ये बरतन मंजने पर ही चमकेंगे, किसी रसायनशाला के अनुसंधान से नहीं, जब कोई कोई जमे हुए ऊबड़-खाबड़ शब्दों का इस्तेमाल विश्वविद्यालय, न्यायालय, विधायिकाओं वगैरह में होने लगेगा, तब ये चमकेंगे और इनका अर्थ जमेगा।¹⁴

परंतु आज हिंदी को नई दिशा मिल गई है, ग्लोबलाइजेशन और आर्थिक उदारीकरण की जय हो कि इनकी वजह से हिंदी की जय हो गई है। बदलते जमाने के साथ-साथ हिंदी बदल रही है और बदलनी भी चाहिए, क्योंकि कोई भी भाषा तभी सर्वस्वीकार और जीवित रह सकती है, जब वह सदानेरा प्रवाहमान सरिता होने की क्षमता रखती हो।

हिंदी संपूर्ण भारत की सर्वोत्कृष्ट व सर्वस्वीकृत भाषा है। आज हिंदी विश्वभाषा बन चुकी है। आज हम वैश्वीकरण की ओर बढ़ रहे हैं, प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में बड़ी तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं। 20वीं सदी विज्ञान की थी और 21वीं सदी सूचना प्रौद्योगिकी की है। इतना ही नहीं, आज वायस ऑफ अमेरिका, चीन रेडियो, बी०बी०सी०, यू०एन०ओ० के अतिरिक्त नेपाल, पाकिस्तान, श्रीलंका, बंगलादेश के प्रतिष्ठित रेडियो से हिंदी-कार्यक्रम प्रसारित हो रहे हैं। विदेश राज्यमंत्री आनंद शर्मा के यह वाक्य हिंदी की उस स्थिति को व्यक्त करते हैं, जो न केवल प्रशंसनीय है वरन् सम्माननीय भी है—‘विश्व हिंदी सम्मेलन ने बत्तीस साल का सफर पूरा कर लिया है। आज 110 करोड़ भारतीयों की आवाज दुनिया सम्मान के साथ सुन रही है। अब वह दिन दूर नहीं है, जब हिंदी यू०एन०ओ० की भाषा-सूची में अपनी गरिमायी उपस्थिति दर्ज कराएगी।’¹⁵

भाषिक व्यवहार के रूप में हिंदी केवल भारत में ही नहीं, विश्व के अनेक राष्ट्रों में भी व्यवहार में प्रयुक्त हो रही है। विश्व-क्षितिज पर भारत आज एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उभर रहा है, इससे सारा जगत भारत की ओर एक ललक से देख रहा है। चीन के बाद विश्व का सबसे बड़ा बाजार होने के कारण भारत से सहज संपर्क बनाने के लिए विदेशीजन हिंदी सीखने के लिए उत्सुक हैं। हिंदी भाषा एकमात्र ऐसी भाषा है, जिसके लिए विश्व हिंदी सम्मेलनों की वर्तमान शृंखला की वैचारिक शुरुआत सितंबर 1973 में राष्ट्र भाषा प्रचार समिति के नायक मधुकर राव चौधरी के नेतृत्व में हुई थी। तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व० श्रीमती इंदिरा गांधी ने प्रस्ताव का अनुमोदन किया और भारत सरकार ने मई 1974 में पूर्ण सहयोग एवं समर्थन का आश्वासन दिया। इस प्रकार भारतीयों की सार्वभौमिक अखंडता-एकता के लिए तथा हिंदी को विश्वव्यापी बनाने के उद्देश्य से 1975 में नागपुर विश्व हिंदी सम्मेलन की जो शोभायात्रा प्रारंभ हुई उसने जुलाई 2007 में न्यूयार्क में अपने आठवें पड़ाव को पूरा किया। जिनका प्रमुख उद्देश्य मुख्यतः अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी की भाषा को उजागर करना, हिंदी भाषा और साहित्य में विदेशी विद्वानों के योगदान को मान्यता प्रदान करना, प्रवासी भारतीयों के बीच अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में हिंदी का विकास करना, विज्ञान और प्रौद्योगिकियों की आर्थिक विकास और संचार के क्षेत्र में हिंदी के प्रयोगों को बढ़ावा देना है।

हिंदी सम्मेलनों की निरंतरता हिंदी की सुखद स्थिति को दर्शाती है। प्रथम पाँच हिंदी-सम्मेलनों का बोधवाक्य—‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ रहा। हिंदी-सम्मेलनों का दूसरा पहलू यह भी है कि या अन्य देशों के साथ भारत के माधुर्यपूर्ण संबंधों को मजबूती प्रदान करता है। अभी तक

जितने भी हिंदी-सम्मेलन आयोजित हुए, सभी के द्वारा हिंदी भाषा वैश्विक मंच पर और ज्यादा सुदृढ़ स्थिति में आ गई।

हिंदी आज विश्व भाषा के रूप में अनेक देशों में तेजी से लोकप्रिय होती जा रही है और विश्व के विराट फलक पर अपने अस्तित्व को आकार दे रही है। हिंदी मात्र एक भाषा ही नहीं, भारतीय संस्कृति की सबल, समर्थ और संशोक्त संवाहिका है, जो विदेशों में बसे करोड़ों की संख्या में प्रवासी भारतीयों और भारत मूल के लोगों के बीच आत्मीयता के संबंध-सूत्र स्थापित करती है।

भारतीयों के अतिरिक्त अनेक विदेशी विद्वानों ने भी हिंदी में लेखन कार्य कर भाषा के गौरव को बढ़ाया है। अमेरिका के मंदिरों में भी हिंदी की शिक्षा की व्यवस्था अव्यावसायिक रूप में की जाती है। मॉडर्न लैंग्वेज एसोसिएशन की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार इस वर्ष 74 उच्च संस्थानों में हिंदी की दशा-दिशा बहुत कुछ अंशों में वही है, जो भारत में है। वह जनभाषा है, जन के साथ जुड़ी है।

टोक्यो में पिछले दिनों संपन्न हुए हिंदी उर्दू सम्मेलनों में हिंदी-ध्वज, जापान में गर्व से लहराया। सम्मेलन के संयोजक प्रो० सुरेश ऋतुपर्ण ने अपने भाषण में कहा—‘टोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फारेन स्टडीज ने हिंदी के अध्यापन के सौ साल पूर्ण किए हैं, जो कि जापान में हिंदी भाषा के संबंधों की गहराई का अहसास कराता है।’⁶

इजराइल के टेल अवीव विश्वविद्यालय में सन् 2000 से लेकर पढ़ाई के हर वर्ष के अंत में ‘हिंदी समारहों’ का आयोजन किया जाता है। यहाँ हर वर्ष ‘अंतर्राष्ट्रीय हिंदी दिवस’ बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। हर वर्ष इस विश्वविद्यालय में 20-25 विद्यार्थी हिंदी सीखने के लिए आते हैं। उनके लिए हिंदी एक भाषा ही नहीं, वरन् भारतीय संस्कृति की विशेषताओं को समझने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है।

ब्रिटेन में भी केंब्रिज विश्वविद्यालय में हिंदी-अध्यापन की व्यवस्था है, ब्रिटिश म्यूजियम इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी में मध्यकालीन हिंदी साहित्य की पांडुलिपियों का संग्रह है। लंदन में ‘हिंदी प्रचार परिषद’ नामक एक संस्था स्थापित है, जो भारत की राष्ट्रभाषा के प्रचार में संलग्न है। अर्द्धरात्रि के सूर्य के देश नार्वे में हिंदी की स्थिति गत पंद्रह-बीस वर्षों में पर्याप्त सुदृढ़ है। यद्यपि नार्वे से अप्रवासी भारतीयों ने लगभग तीस-पैंतीस वर्ष पूर्व से ही रहना आरंभ किया है, किंतु इस अल्प अवधि में ही उन्होंने अपनी एक अलग पहचान बना ली है। इसी बीच उन्होंने अपने ही प्रयत्नों से हिंदी में अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ किया—परिचय, ‘स्पॉल’, त्रिवेणी आदि पर कुछ समय पश्चात ये बंद हो गईं। सन् 1990 के जनवरी मास में नार्वे से ही एक और पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ, जिसका नाम है ‘शांतिदूत’। इसका क्षेत्र मात्र नार्वे तक सीमित न रहकर किसी हद तक अंतर्राष्ट्रीय है।

‘शांतिदूत’ के प्रकाशन के पीछे यह भी एक उद्देश्य रहा कि विश्व के लगभग एक सौ तीस देशों में करीब एक करोड़ पचास लाख अप्रवासी भारतीयों को एक सूत्र में बाँधा जाए तथा अपनी जड़ों से जुड़े रहने के लिए प्रेरित किया जाए। भारत के एक गरिमामय चित्र से उनका साक्षत्कार हो। भारत में जो अच्छा हो रहा है, उससे भी उनका परिचय हो। यह पत्रिका आज विश्व के एक सौ पचास से अधिक देशों तथा एक सौ तीस विदेशी विश्वविद्यालयों में पढ़ी जा रही है।⁷

फीजी में हिंदी के विकास का इतिहास भरतवंशियों की साधना और उनके विकास का इतिहास है। हिंदी के इस विकास में कितने ही लेखकों, पत्रकारों, राजनीतिज्ञों, व्यवसायियों तथा सामाजिक संस्थाओं का सक्रिय सहयोग रहा है। फीजीवासियों में अपनी भाषा हिंदी के प्रति विशेष मोह है। वे हिंदी को अपनी भाषा की प्रतिष्ठा और सुरक्षा के माध्यम से ही वे अपनी संस्कृति को जीवित और सुरक्षित रख सकते हैं।

फीजी में आज हिंदी का विशेष सम्मान है। फीजी का हर भारतीय हिंदी को अपनी अस्मिता का परिचायक मानता है। फीजी में केवल भारतीय ही नहीं, बल्कि लगभग सभी शिक्षित हिंदी भाषा समझते हैं, बोलते हैं तथा संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का व्यवहार करते हैं।

इस प्रकार हिंदी विश्व के 175 देशों में बोली जाती है। विश्व के विविध राष्ट्रों में हिंदी के पठन-पाठन की व्यवस्था है। विश्व के विशाल जनसमूह की भाषा होने के कारण हिंदी ही राष्ट्रभाषा बन सकती है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि विदेशों में हिंदी की स्थिति अच्छी है, किंतु भारतीय इससे विमुख हो रहे हैं। विश्व स्तर पर हिंदी का प्रयोजन प्रवासी भारतीयों का एक सूत्र में बाँधा जाए और अपनी जड़ों से जुड़े रहने के लिए प्रेरित किया जाए तथा अपनी सभ्यता और संस्कृति और अस्मिता को बढ़ावा दिया जाए। वास्तव में अगर हिंदी का साम्राज्य बढ़ाना है तो हमें उन क्षेत्रों को समाहित करना है, जिनकी तरफ अभी रास्ते नहीं बनाए गए हैं। एक चढ़ते हुए दरिया की तरह हिंदी को तटबंधों, किनारों को तोड़ते हुए नई जमीनों को अपने आगोश में ले लेना है। डॉ० लक्ष्मीलाल सिंघवी के शब्दों में—

कोटि-कोटि कंटों की भाषा
जन-गण की मुखरित अभिलाषा
हिंदी है पहचान हमारी,
हिंदी हम सबकी परिभाषा

इस प्रकार हिंदी का प्रयोजन विश्व-फलक पर अपने-आपको समृद्ध करना और वहाँ बसे प्रवासी भारतीयों को भारतीय सभ्यता और उज्ज्वल संस्कृति की पहचान करवाना है।

संदर्भ

1. अमित जोशी, नावें में हिंदी के विविध आयाम, विश्व-क्षितिज पर हिंदी, प्रथम अंक, पृ० 129
2. काव्य-संग्रह से उद्धृत-भारतेंदु हरिश्चंद्र
3. कृष्ण कुमार, विश्व-क्षितिज पर हिंदी, प्रथम अंक, पृ० 58
4. कैलाशचंद्र भाटिया तथा श्री मोतीलाल चतुर्वेदी की पुस्तक 'हिंदी भाषा: विकास और स्वरूप, ग्रंथ अकादमी से साभार'
5. बालेंदु दाधीच, हिंदी जगत, जनवरी-मार्च 2009, पृ० 34
6. सुरेंद्र विक्रम का लेख, वर्तमान साहित्य, सितम्बर 2008, पृ० 18
7. शकुंतला बहादुर (अमेरिका), हिंदी जगत, जनवरी-मार्च 09, पृ० 23

‘देख तेरी गली बाबुल’ में सामाजिक सरोकार

नीलम

वरिष्ठ प्राध्यापिका, हिंदी विभाग
राजकीय माध्यमिक विद्यालय
बड़ागाँव, करनाल (हरियाणा)

समय एक धारा है, जो निरंतर चलायमान है। समय न किसी का इंतजार करता है, न आदेश का पालन करता है और न ही किसी के अनुसार अपने में बदलाव करता है। यह तो नदी के जल की तरह अपना प्रवाह बनाए रखता है। यदि रास्ते में रुकावट है, तो भी अपनी गति को बनाए रखता है। इसी प्रकार समाज में परिवर्तन होते रहते हैं। समाज के इस परिवर्तन को कवि, साहित्यकार भली-भाँति समझते हैं तथा अपनी कविताओं, लेखों और रचनाओं के माध्यम से भावनाओं को व्यक्त करने का प्रयास करते हैं। साहित्य ही समाज का दर्पण है। साहित्य, बिना सामाजिक यथार्थ के चल ही नहीं सकता, लेकिन जब साहित्य पर राजनीतिक और प्रशासनिक दबाव आता है, तो साहित्य की सार्थकता समाप्त हो जाती है। मुंशी प्रेमचंद के अनुसार—‘जीवन की आलोचना ही साहित्य है।’ आज के आपाधापी युग में जबकि संवेदनाएँ यंत्रों और तंत्रों की भेंट चढ़ चुकी हैं, येन-केन-प्रकारेण धनार्जन की मारामारी है, इस समय कोई व्यक्ति काव्य सृजन में संलिप्त है, तो देखकर सुखद आश्चर्य होता है और यदि वह विवाहित महिला हो, तो और भी आश्चर्य की बात है। श्रीमती संगीता बैनीवाल ऐसी ही एक कवयित्री हैं। इसके द्वारा रचित ‘देखी तेरी गली बाबुल’ एक हरियाणवी काव्य संग्रह है। इस काव्य-संग्रह में मानव जीवन के विविध आयामों को छूने वाली पैंतालीस कविताएँ संकलित की गई हैं। ये कविताएँ समाज की कई विसंगतियों को हमारे सामने उजागर करती हैं। संगीता बैनीवाल जी ने हरियाणा प्रदेश के साथ-साथ भारतीय सामाजिकता का सजीव चित्रण करने का प्रयास किया है। काव्य-संग्रह की प्रत्येक कविता कोई-न-कोई संदेश देते हुए सामाजिक सरोकार से जुड़ी हुई। प्रतीत होती है। इनके काव्य का प्रमुख रंग सामाजिक सरोकार है तथा इसके बिना आज का साहित्य थोथरा माना जाता है। संगीता जी ने अपने काव्यकर्म में अनेक सामाजिक चिंताओं को लेकर अपना दायित्व बखूबी निभाया है। कवयित्री समाज के कर्म व नब्ज को पहचानती हैं। वे ग्रामीण परिवेश से जुड़ी हुई हैं तथा ग्राम्य जीवन के मर्म को समझती हैं—

कोल्हू पै बणदे ताजा-ताजा गुड़ की मिठास

महक बणके चढ़ जाया करदी नाक के बल

इब आई सूं तो गुड़ पकान्दा क्यूँ नहीं।²

ग्राम परिवेश में पारिवारिक संबंधों में अनौपचारिकता के कारण जो मिठास था जो अमृत

तत्व था, जो अपनेपन का भाव था, जो प्यार था वह स्वार्थपरता और अहमन्यता के कारण विषाक्त होकर इतना सूख गया है। उसकी तरलता कहीं भी दिखाई नहीं देती—

माँ-बाप की अटारी, रे बीरा छुटै कोन्या
यो पीहर का लाहरसा, रे बीरा टूटै कोन्या
बाहण-भाई का प्यार, रे बीजा धन तै तुलदा कोन्या
बिन प्यार का धन बी, रे बीरा फलदा कोन्या।³

नारी को सृष्टि और जीवन में उत्थान का प्राणतत्व तथा परिवार व समाज का चेतना-तत्व मानते हैं। 'देखी तेरी गली बाबुल' में पुत्री केवल शाब्दिक सद्भावना से तृप्त नहीं होती और अपने पिता से कह उठती है—

के सै मेरी खता बता दे, मैन्ने मेरा पता बता दे
सृष्टि का आधार कुहाऊं, फिर क्यूं नाजुक कली बाबुल
देखी तेरी गली बाबुल, आखिर छोड़ चली बाबुल⁴

जहां नारी की पूजा होती है, वहीं देवता निवास करते हैं। किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि आज नारियों का शोषण हो रहा है। यद्यपि हमारे संविधान में नारियों को भी पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हैं, किंतु दुर्भाग्यवश ये न केवल अपने घर बल्कि बाहर भी शोषण एवं हिंसा का शिकार होती हैं। कन्या भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा, बलात्कार आदि नारी शोषण के कुछ उदाहरण हैं। संगीता जी की संवेदनशीलता इतनी तीव्र है कि वह उनकी कई कविताओं में हमसे रूबरू होती प्रतीत होती है—

माता-पिता कातिल बणे, रहे गर्भ म्हें मार
लाडो सै लाचार पर, किसतै करै गुहार।⁵

निश्चित रूप से नारी ने आज अनेक बाधाओं के बावजूद नई बुलंदियों को छुआ है और घर के अतिरिक्त बाहर भी स्वयं को सुदृढ़ता से स्थापित किया है, उन्होंने अपनी सफलताओं के ऐसे झंडे गाड़े कि पुरानी रूढ़ियाँ हिल गई हैं। नारी के जुझारूपन का लोहा सबको मानना पड़ रहा है। समय आने पर भारतीय नारी ने अद्भुत साहस का परिचय दिया है। वह सब-कुछ हँसकर सहन कर सकती है, तो परिस्थितियों के विरुद्ध लड़ भी सकती है—

बेशक थकान मिले जीवन म्हं
रुकता पहिया चला ल्युंगी
बेशक पीर पलै हृदय म्हं
जीवन का लुत्फ उठा ल्युंगी⁶

कवयित्री की संवेदनशीलता में जितना घनत्व है, उतना ही विस्तार भी है। वे देहात से लेकर जनतांत्रिक व्यवस्था तक के लिए चिंतित हैं और गंभीर दिखाई देती हैं। पाश्चात्य सभ्यता और शहरीकरण के प्रभाव ने परिवार नामक संस्था को तोड़ दिया है। नई संस्कृति की चकाचौंध में हमने परंपराओं और रीति-रिवाजों को भुला दिया है। दिन-प्रतिदिन रिश्तों में प्यार का अभाव होता जा रहा है। आधुनिक युग में मानव भौतिकवाद के पीछे दौड़ रहा है—

धन-दौलत नै मानता, जन-जीवन का सार
रिश्ते बचणै सै कठिन, लाड़-प्रीत अर प्यार⁷

भौतिकता के विकास के युग में हमारी मूल संस्कृति एवं विश्वासों के विस्थापित होने का खतरा उत्पन्न हो गया है। विकास की अंधी दौड़ में हम अपने मौलिक विश्वासों, जीवन शैली, भाषा और लोकजीवन को भूलते जा रहे हैं—

पगड़ी, कुरता, धोती बाँध गिरकाणियां ना ढूँढ
बाहण भाई की लाड़ भरी लड़ाईयाँ ना ढूँढ
चणे-बाकली, खील, सीत राबड़ी की ठंडाईयाँ ना ढूँढ
घर गली म्हं इब प्यार की परछाईयाँ ना ढूँढ⁸

आज के बढ़ते भौतिकवादी व उपयोगितावादी युग में प्रकृति को भी गहरा धक्का लगा है। आज पर्यावरण-प्रदूषण इस हद तक बढ़ गया है कि साँस लेने के लिए स्वच्छ वायु दुर्लभ हो गई है। शहरों में बड़े-बड़े उद्योग-धंधों की चिमनियों से निकलता धुआँ वातावरण को प्रदूषित कर रहा है, लेकिन शहरों की अपेक्षा गाँव का वातावरण अब भी काफी हद तक शुद्ध है। इसलिए कवयित्री 'म्हारे गाँव म्हं आ ज्याणा' कविता के माध्यम से गाँव में आने का निमंत्रण देती है—

प्रदूषण म्हँ घूटी पड़ी हो
जिस पूरब की साँस सखे।
खुल के साँस लेण की खातिर
म्हारे गाम म्हं आ ज्याणा।⁹

भौतिकवादी युग में रिश्वत, खाद्य पदार्थों में मिलावट, मुनाफाखोरी, काला धन, झूठे वायदे, भाई-भतीजावाद, जातिवाद, लालफीताशाही तथा स्वार्थ में पद एवं सत्ता का दुरुपयोग आदि भ्रष्टाचार के ऐसे रूप हैं, जो हमारे सामाजिक मूल्यों का निरंतर हास कर रहे हैं। आज धर्म, शिक्षा, राजनीति, प्रशासन, कला, मनोरंजन, खेलकूद इत्यादि सभी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार का बोलबाला है। आज राजनीति जनकल्याण व राष्ट्रसेवा की भावना से नहीं, अपितु सत्ता सुरक्षित रखने के लिए दलगत राजनीतिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए की जा रही है। 'देख किसी मजबूरी सै' कविता एक ऐसा आईना पेश करती है कि उस आईने में आज के तथाकथित जननेताओं का असली चेहरा दिखाई पड़ता है—

हाथ मिलावै हँस-हँस के, पर हर मसले पै अनबन सै
साथ रह के काम करण का, सब झूठा प्रदर्शन सै
दलगत मेल करै आपस म्हं, पर दिला म्हं दूरी सै
देख किसी मजबूरी सै।¹⁰

सामाजिक विषमता और राजनीतिक भ्रष्टाचार को देख कवयित्री के संवेदनशील हृदय की व्याकुलता खीझ में परिवर्तित हो भ्रष्ट व्यवस्था के सम्मुख 'स्वयं को विवश देख' कविता में कुछ इस प्रकार प्रकट होती है—

बूढ़े माँ बाबू नै, बीबी अर बालकां नै,
शहर म्हं ल्यावैगा, अवैध कॉलोनी म्ह,
अपने वैध सपनयां नै, बचाने की खातिर
नेता जी के पास जाके, वोट का आश्वासन
व नोट दे के आवेगा।¹¹

स्वार्थ परता एवं भ्रष्टाचार ने समाज को घुन की भाँति खा लिया है। आजादी के बाद भारतीय परिवेश में सामाजिक उत्थान के लिए आर्थिक योजनाएँ बनाई गई ताकि उपेक्षित वर्ग को आत्मोन्नति का अवसर प्रदान किया जा सके, लेकिन कार्यकर्ताओं के भ्रष्ट इरादों के कारण ये योजनाएँ फाइलों में अधिक, व्यवहार में कम क्रियान्वित हो पाई हैं। कवयित्री ने चुगलखोरी पर भी करारा व्यंग्य किया है कि यह किस प्रकार रिशतों में दरार डाल देती है जिसके कारण व्यक्ति को इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ती है—

मेल-मिलाप न हो कदे, मन इसा पड़वादे
चुगलखोर भाइयां नै, आपस म्हं लड़ादे।¹²

भौतिकवादी युग में लोगों का शराब की ओर बढ़ते झुकाव, के कारण समाज का नैतिक पतन हो रहा है। इसी के कारण कुछ लोग अपने दायित्वों से मुँह मोड़ रहे हैं—

छीन के रोटी मुँह की बापू ल्यावै देसी ठर्रा,
बोला हो ग्या रै

समझाणे तै बी ना समझै वो बोला हो ग्या रै।¹³

आज मानव अपनी प्रकृति में ही इतना संघर्षशील है, लेकिन इसके बावजूद कुछ सदस्य अपनी उद्यमता का त्याग करके आलस्य की प्रवृत्ति अपना लें, तो इसे विडंबना ही कहा जाएगा। आलस्य की प्रवृत्ति एक ऐसा घुन है, जो पूरे जीवन को अंदर-ही-अंदर खोखला कर देता है। ऐसे व्यक्तियों का विश्वास आस्था में होता है कि जिस ईश्वर ने उत्पन्न किया है वही पालन-पोषण भी करेगा। ईश्वर ने मुँह दिया, पेट दिया है, तो भोजन भी वही देगा। वह भूल जाता है कि प्रकृति ने पेट और मुँह के साथ-साथ काम करने के लिए दो-दो हाथ भी प्रदान किए हैं।

जीवन ना जो काम का, हो ज्या सै बैकार
हाथ सदा चलते रहें, उन्नत जीवन सारा।¹⁴

समाज में रहते हुए मानव में करुणा, सहिष्णुता, भाईचारा, दया, प्रेम जैसे मानवीय गुणों का विकास होता है। मानवता के विकास में इन मानवीय गुणों की भूमिका अहम् होती है। प्राचीनकाल से लेकर आधुनिककाल तक हुए अनेक युद्धों ने अमानवीय प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है। सत्ता एवं स्वार्थ की लालसा में मनुष्य को ईर्ष्या-द्वेष जैसे अवगुणों के वशीभूत होकर अनेक अपराध कर बैठता है—

मानवता हित करम करे जा
ना करिये तूं बणज-व्यापार।¹⁵

यदि हम भारतीय समाज एवं जनजीवन का गहन अध्ययन करें, तो हमें स्वतः ही पता चल जाता है कि विविधताओं और विषमताओं के पीछे आधारभूत अखंड मौलिक एकता भी अपनी एक विशिष्ट विशेषता है। अनेक धर्मों, जातियों एवं भावनाओं वाला यह देश अनेक विसंगतियों के बावजूद सदा एकता के एक सूत्र में बँधा हुआ है। यहाँ अनेक जातियों का आगमन हुआ और उनकी परंपराएँ, विचारधाराएँ और संस्कृति इस देश के साथ एकरूप हो गई। इस देश में हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई सभी परस्पर प्रेम से रहना चाहते हैं, लेकिन भ्रष्ट राजनेता उन्हें बाँटकर अपना उल्लू सीधा करने में जुटे रहते हैं—

रूप हमारा एक सै
 न्यारे-न्यारे भेष हमारे, पर वतन हमारा एक सै
 बाईबल और कुराण हम सां
 गीता ग्रंथ महान् हम सां
 न्यारे न्यारे धर्म भले पर लक्ष्य हमारा एक सै ¹⁶

सामाजिक सक्रियता से सीधे जुड़ी कवयित्री ने केवल भावना के आधार पर ही कलम नहीं चलाई, बल्कि इन कविताओं के अध्ययन से पाठक समझ सकता है कि ये कविताएँ जिंदगी के यथार्थ का दर्पण हैं। समाज की गली-सड़ी मान्यताओं को बदलने के लिए प्रेरित करने के अलावा तनावग्रस्त जिंदगी में हास्य पैदा करती हैं। साहित्य के माध्यम से अव्यवस्था के विरुद्ध जाग्रत करना और सामाजिक विकृतियों से लड़ने के लिए प्रोत्साहित करना साहित्यकार का कर्तव्य होता है। एक साहित्यकार के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने परिवेश और वातावरण के प्रति जागरूक हो—

आँखियाँ मूँ रहै नीर प्रीत का, गम के आंसू ना आ पावै
 हर घर का आंगण हरषावै, काश कुछ ऐसा हा जावै।

संदर्भ

1. डॉ० लालचंद गुप्त, 'मंगल' हिंदी साहित्य : वैचारिक पृष्ठभूमि, पृ० 2
2. संगीता बैनीवाल, देखी तेरी गली बाबुल, गाम', पृ० 103
3. संगीता बैनीवाल, देखी तेरी गली बाबुल, पीहर', पृ० 34
4. संगीता बैनीवाल, देखी तेरी गली बाबुल, पृ० 14
5. संगीता बैनीवाल, देखी तेरी गली बाबुल, प्रीत नीर, पृ० 22
6. संगीता बैनीवाल, देखी तेरी गली बाबुल, विश्वास का दीप, पृ० 66
7. संगीता बैनीवाल, देखी तेरी गली बाबुल, प्रीत नीर, पृ० 21
8. संगीता बैनीवाल, देखी तेरी गली बाबुल, ना दूँढ, पृ० 95
9. संगीता बैनीवाल, देखी तेरी गली बाबुल, म्हारे गाम म्हां आ ज्याणा, पृ० 41
10. संगीता बैनीवाल, देखी तेरी गली बाबुल, 'देख किसी मजबूरी सै', पृ० 52
11. संगीता बैनीवाल, देखी तेरी गली बाबुल, 'नोट और वोट', पृ० 73
12. संगीता बैनीवाल, देखी तेरी गली बाबुल, 'प्रीत नीर', पृ० 22
13. संगीता बैनीवाल, देखी तेरी गली बाबुल, 'रोला हो गया रै', पृ० 65
14. संगीता बैनीवाल, देखी तेरी गली बाबुल, 'उन्नत जीवन सार', पृ० 43
15. संगीता बैनीवाल, देखी तेरी गली बाबुल, बखत्त, पृ० 50
16. संगीता बैनीवाल, देखी तेरी गली बाबुल, रूप हमार एक सै, पृ० 71

मनमोहन सहगल कृत उपन्यास 'बदलती करवटें' में विभाजन की पीड़ा

सुमनबाला शोधछात्रा

द्रावीडियन विश्वविद्यालय, कूपम (आं०प्र०)

डॉ० बलवीरसिंह निदेशक

हिंदी विभाग, श्री गुरु हरिसिंह महाविद्यालय
जीवननगर, सिरसा (हरि०)

स्वातंत्र्योत्तर भारत में पश्चिमी प्रभाव के कारण और आधुनिकता के नाम पर लोग ऊपरी स्तरों पर काफी उदार हो गए हैं। उदारता के गौरव को चेहरों पर चिपकाए घूमते हैं। बाहर से वे अपने सारे परंपरागत बंधनों से स्वतंत्र दीखते हैं। मुक्त व्यवहार तथा आचरण का समर्थन करते दिखाई देते हैं। विस्थापित वर्ग पूर्वजों की सीमाओं तथा वर्जनाओं को तोड़ते हुए दिखाई देते हैं, लेकिन सीमाओं का यह टूटना कितना खोखला है। व्यावहारिक धरातल पर कितना सतही है। 'बदलती करवटें' उपन्यास में विभाजन की पीड़ा व्यंग्य की हल्की तर्ज से उभरता है—'हाँ वही, वह सरदार ही तो हमारा सुपरिन्टेंडेंट है। आज ही मुलाकात हुई थी। बड़ा दुष्ट लगता है। पाकिस्तान से आए पंजाबियों का तो पक्ष लेता है और हमें अकारण घूरता है। साला बड़ा मुत्तसबी है।'

'अरे हाथी के दाँत खाने के और, दिखाने के और। इस प्रदेश के रहनेवाले सभी कर्मचारी उसकी शिकायत कर रहे थे। सुना है वह अपनी लड़की की शादी नहीं करता, उसके द्वारा कमाता है।' इंदरसिंह ने कर्मचंद के कान के पास मुँह ले जाकर कहा।'

विस्थापित वर्ग से जुड़े पात्रों के पास न छत है, न दीवार, मात्र टीसती हुई जिजीविषा है, जिसे वे ढोये जाने को विवश हैं। अंदरूनी तौर पर विभाजन के उतरदायी लोग वैसे ही दकियानूस हैं, स्वतंत्रता के हिमायती होने का ढोंग और सफल अभिनय करते हैं।¹ यानी वे महसूस तो करते हैं कि स्वतंत्र होकर, मुक्त व्यवहारों में जीना एक उपलब्धि है, लेकिन उनके निर्दयी संस्कारों ने उन्हें इतनी गहराई से, जड़ों से बाँध रखा है कि जीवन में जहाँ कहीं भी विस्थापित होकर उस स्वतंत्रता के खतरों को झेलने, उठाने की बात आती है, तो कभी हिंदू-मुसलमान तो कभी सिख-हिंदू साथ-साथ नहीं रह पाते। वे अपने उन्हीं आदर्शों में छिप जाते हैं और उनके टूटने के डर से क्रोधित होते हैं, नैतिकता की दुहाई देने लगते हैं। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासकार मनमोहन सहगल भारतीय मानसिकता की ऐसी सीमाओं के खिलाफ खुले हुए रूप में सब कुछ कह देते हैं। उपन्यासकार बहुत सरल ढंग से विस्थापन की पीड़ा को एक छिपे हुए व्यंग्य की नोक से कुरेद देता है—'भाषावार प्रांत-योजना इसी कूट-नीति का एक अंग ही तो कही जा सकती है।

आखिर उस समय पंजाब को भाषाई दृष्टि से अलग क्यों नहीं किया गया? निश्चय ही उस समय सरकार और नेतागण पंजाब का भाषाई विभाजन कर इसे दुर्बल नहीं बनाना चाहते थे। अब जबकि युद्ध हर समय माथे पर मडरा रहा है, जनता के साथ यह द्रोह क्यों?'¹³

स्वतंत्रता को दिखावटी तौर पर जीते रहने का दंभ भरना और बात है तथा उस विस्थापन के खतरों का सामना करना दूसरी बात है। जीने की शर्त पर अपनी उन भीतरी सीमाओं को तोड़कर उस स्वतंत्रता को उपलब्ध करना निश्चित रूप से एक उपलब्धि है, लेकिन इसके लिए खोलों वाली, मुखौटोंवाली भयानक ज़िदगी नहीं। भीतर-बाहर दोनों स्तरों पर स्वतंत्र होने को सिद्ध करना ही ज़िदगी को ईमानदारी से जीना है। निरीह लोगों को घसीट-घसीटकर गोली मार दी गई, संपत्ति लूट ली गई। 'देखा, आखिर ये पंजाबी हिंदू कुछ दंगा-फसाद करवाकर ही मानेंगे', ऐसा कहता हुआ इंदरसिंह उठकर चल दिया। कर्मचंद ने उसे रोकने तथा वस्तुस्थिति पर विचार करने का प्रयत्न भी किया, परंतु वह नहीं माना। कर्मचंद रानी की बात में खोया हुआ वहीं धम्म से सोफे पर बैठ गया तथा बीते समय का विश्लेषण कर जीवन के इस नए पड़ाव पर विचारने लगा।¹⁴

विस्थापित वर्ग एक विद्रोह की त्रासद मनःस्थिति में स्वयं को पाता है। असल में उसके इस तरह सोचने, दुःखी होने और ठंडी साँस भरने के पीछे अपनी स्थितियों के प्रति सुलगता हुआ विद्रोह का भाव भी है, एक ऊब और हिंकारत की भावना है—देश के इधर और उधर के परिवारों में कितना अंतर है, इधर ज़िदगी परंपरागत दकियानूस ढरों में बँधी है और बंधन का अहसास उधर के परिवार को देख-देखकर और भी कौंच उठता है। अपने घर के हालात में लगता है, ज़िदगी फिजूल हुई जा रही है। विस्थापित वर्ग का किसी काम में मन नहीं लगता है—'धर्म-निरपेक्ष होने के कारण ही तो सरकार कर्तव्य-च्युत हो रही है। धर्म किसी फिरकापरस्ती के सिद्धांत को नहीं बोलते। वह तो मानव-जीवन की सामान्य आचरण से संबंधित श्रेष्ठ सर्वग्राह्य, सार्वलौकिक और सर्वकालीन धारणाओं का नाम है। अतः सरकार धर्म-निरपेक्ष नहीं, संप्रदाय-निरपेक्ष हो सकती है, परंतु जहाँ कानून (बहुसंख्यक-भलाई का सिद्धांत) की रक्षा अपेक्षित है, वहाँ तो सरकार के लिए इस प्रकार के परहेज वाँछित नहीं कहे जा सकते। कल को कोई मुसलमान मस्जिद में बैठकर आने-जाने वाले गैरमुस्लिमों को गोली मारता जाए, तो सरकार उसे बंदी नहीं बनाएगी?'¹⁵

साफ जाहिर है यह कामना, स्थितियों के प्रति असंतोष उभारती हैं। विडंबना यह है कि स्थिति से निकलने का कोई रास्ता नहीं है, इसलिए उधार का घर उसकी और परिवार के सभी लोगों की ईर्ष्या का केंद्र बन जाता है। वे लोग तरह-तरह से अपनी अरुचि उनके प्रति उगलते रहते हैं। उन्हें तमाम बुराइयों का संदर्भ बना लिया जाता है। बहुत सी दूसरी चिंताओं के साथ मन में एक नई उद्विग्नता समाने लगती है। यह सारी प्रतिक्रियाएँ उस स्तर तक पहुँच न पाने की सीमाओं के कारण उत्पन्न हुई हैं। खोया हुआ पाने की हसरत है, लेकिन वह पूरी नहीं होती है, इसलिए उसके अभाव में एक बचकाना गुस्सा जन्म लेता है, एक जबरदस्ती का आक्रोश जन्मता है। इस प्रकार 'बदलती करवटें' उपन्यास अपने से ऊँचे स्तर के लोगों की स्वतंत्रताओं से एक मानसिक दबाव महसूस करने की और अपने परिवेश से मुक्ति पाने की तीव्र छटपटाहट की कहानी बन जाती है।

मनमोहन सहगल का लेखक अपने परिवेश में खड़ा रहकर और समस्त तकलीफों से गुज़रकर भी पलायन की बात नहीं सोचता है, क्योंकि वह अपने आपको परिवेश से अलग कोई विशिष्ट व्यक्ति नहीं मानता है। उसके अनुसार उससे माँगना या तो कायरता है या आदमियता को

नकारना है। उनका मंतव्य है कि एक सच्चा लेखक आज पहले की अपेक्षा और भी अधिक अभागा हो गया है, क्योंकि उसे उन लोगों के प्रति अपने लेखकीय कर्म में उत्तरदायी होना पड़ता है, जिन्हें सुविधापूर्वक जीने की आदत पड़ गई है, जो एक बिस्तर और रजाई के लिए दुनिया का बड़े-से-बड़ा गुनाह कर सकते हैं और उनके कानों पर अपराध की जूँ तक नहीं रेंगती। जो भाषा को तो तर्क-जाल में उलझा सकते हैं, लेकिन संपूर्ण जीवन की कठिन यंत्रणाओं को न तो सह सकते हैं, न यह बात उनकी समझ में आती है। फिर आज का रचनाकार ऐसे लोगों की क्रूरताओं से भी अपने को पृथक नहीं रख सकता फिर इससे बड़ा नरक और क्या हो सकता है? 'बदलती करवटें' उपन्यास में लेखक ने विभाजन की पीड़ा को उभारा है, यथा—

‘कश्मीर में पाकिस्तानी घुसपैठियों से भारतीय-सेना की झपटों, पकड़-धकड़, विस्फोट, काश्मीरियों को पहुँचाई गई यातनाओं आदि के समाचार कई दिनों से आ रहे थे। भारतीय-सेना ने पुनः कारगिल की चौकियों पर अधिकार कर घुसपैठियों का मार्ग अवरुद्ध करने के लिए टिथवाल की ओर बढ़ना आरंभ कर दिया था। भारतीय जनता समझती थी कि पाकिस्तान छिपा-युद्ध लड़ने के प्रयत्न में है, परंतु पाकिस्तान को अमेरिका की रखैल बनने के बदले भिक्षा में जो अस्त्र-शस्त्र तथा गोला-बारूद मिला, वह इतना बढ़िया और अधिक था कि पाकिस्तान भारतीय रणबाँकुरों के अदम्य साहस का गलत अनुमान कर प्रत्यक्ष में भी युद्ध में उतरने की भूल कर बैठा। एक दिन प्रातः अभी कर्मचंद सोकर भी नहीं उठा था कि रानी 'नवभारत' का ताजा पर्चा लिए उसे झँझोड़ने लगी।

‘भैया! भारत-पाकिस्तान में युद्ध शुरू हो गया।’¹⁶

सहगल जी यह मानते हैं कि आज के कथाकार की सारी लड़ाई अपनी ही विरासती और संस्कारी प्रवृत्तियों और परंपरा के प्रति मोहग्रस्त दुर्बलताओं के खिलाफ है—हमारी सबसे बड़ी समस्या यही है कि हमने युद्ध नहीं भोगा है और हम उसके अप्रत्यक्ष दबाव से दूर भी नहीं जा सकते। इसीलिए भारतीय लेखक की समस्याएँ और उसकी स्थिति किसी भी अन्य लेखक से अधिक कठिन और भयावह हैं। एक ओर तो वह अपने समस्त पिछड़ेपन से आक्रांत है तथा दूसरी ओर अपने ऊपर लदी हुई शताब्दियों की सांस्कृतिक उपलब्धि और परंपराओं से। विभाजन की त्रासदी लेखक के मन को कचोटती है। यथा—

‘ऐसी बढ़ी हुई विषमता में 9 मार्च, 1966 का दिवसोदय हुआ। पंजाबियों के दिल धड़क रहे थे, आशंकाएँ घिर रही थी और एक प्रकार की निराशा-भरी घटा-सी चारों ओर छाई हुई थी। प्रकृति भी उस दिन आक्रांत दीख पड़ती थी। आकाश में धूल भरी थी, धीरे-धीरे आँधी उठकर विकराल होती जा रही थी—संधि-बेला में ऐसी आँधी में लोग कहते थे, पिशाच नाचते हैं। तभी रेडियो से समाचार प्रसारित हुआ कि कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने एक चार-पंक्तिय प्रस्ताव पास करके नीति-रूप में पंजाबी सबा और हरियाणा की स्थापना कर ली। कारण यह दर्शाया गया था कि बंबई विभाजन के बाद सरकार अब किसी भी रूप में द्विभाषी पंजाब के विभाजन को टाल नहीं सकती दोनों प्रांतों की परिस्थितियों का सर्वेक्षण करने की किसी को फुर्सत न थी।’¹⁷

मनमोहन सहगल के उपन्यासों के भीतर की संवेदना तलाशने से पूर्व उनकी मनःस्थिति से गुजरना अधिक आवश्यक हो जाता है क्योंकि उनकी स्वतंत्रता की आकांक्षा की मनःस्थिति के बिंदु ज्यादा संवेगात्मक अभिव्यक्ति के साथ उभर सके हैं—वे अपने चारों तरफ के संसार के

प्रति तीव्र बेचैनियों को अनुभव करते हैं—‘तभी अचानक महिंदर कहीं से उसके मस्तिष्क में कूद गई। महिंदर, जिसे उसने-तन-मन देने का वचन दे रखा है। वह चुपके से उठा और अर्जुनसिंह के घर की ओर चल पड़ा। महिंदर, अर्जुनसिंह और उसकी पत्नी तीनों बैठक में बैठे सुरिंदर की बातें कर रहे थे। अकस्मात् कर्मचंद को आते देख महिंदर लजाई परंतु कर्मचंद बिना किसी कुंठा या घबराहट के महिंदर की कुर्सी के पास पहुँचकर बोला, ‘आओ महिंदर, आज हम भी इन बुजुर्गों का आशीर्वाद लें।’ इतना कहते हुए महिंदर का हाथ थाम लिया। महिंदर यंत्रस्थ-सी उसके साथ उठी और वे दोनों अर्जुनसिंह के चरण छूने को झुक गए। बाहर गली में कोई गाता हुआ जा रहा था—
‘छोड़ो कल की बातें, कल की बात पुरानी।’⁸

उनकी संवेदनशील समझ देश की राजनीतिक स्वतंत्रता पर एक प्रश्नचिह्न लगाती है। इस स्वतंत्रता में व्यक्ति की बाकी आजादियों के लिए कहाँ जगह है? वैयक्तिक विकास की संभावनाएँ यहीं इस स्वतंत्रता की विद्रूपताओं के तले दफन हो गई हैं। प्रकृति का सारा तथाकथित प्रशंसनीय और नैसर्गिक सौंदर्य भी आज के सजग लेखक को शांति नहीं देता है। उन्मादी और समस्त आवेशों के साथ भी वह अकेला है और परिवेश की विसंगतियों में साँस लेने के लिए विवश है। लोगों की सहनशीलता पर उसे दुख होता है। उसका स्वतंत्रताबोध बहुत तीव्र है। वह अपने प्रतिकूल सारी स्थितियों को समझता है, पहचानता है और प्रतिक्रिया स्वरूप परेशान हो उठता है, लेकिन उसका यह बोध नितांत अकेला है। उसका सारा विद्रोह और क्रोध जड़ताओं के प्रति है।

निश्चित रूप से यह सच है कि नयी पीढ़ी के लेखक में इस राजनीतिक आजादी की कोई आंतरिक संगति नहीं है। बाह्य रूप से वह परेशान ही है। शायद इससे कम परेशान वह कभी भी नहीं होता। निजी संबंधों से टकराहट कितनी तकलीफदेह होती है, इसे मनमोहन सहगल समझते हैं। ‘बदलती करवटें’ के पात्रों की लड़ाई अपने ही लोगों से है। लेखक का मानना है कि यह लड़ाई व्यक्ति को आहत करती है। एक अवसादग्रस्त चुप में बंद कर देती है। एक और अंतर्द्वंद्व को बहुत ही संवेदनशील कलात्मकता के साथ उभारा गया है—इस चुप के पीछे, इस एकाएक सपाट और तटस्थ बेचैनी भरी मनःस्थिति के पीछे एक मनोविज्ञान है, जिसे मनमोहन की सहभागी मर्मी दृष्टि पकड़ लेती है।

संदर्भ

1. मनमोहन सहगल, ‘बदलती करवटें’, पृ० 386
‘इंदरसिंह तुम पंजाब के जाट हो, मैं पंजाबी हिंदू हूँ और वह सिक्ख है। हमारी संस्कृति, हमारा धर्म, हमारे पूज्य महापुरुष, हमारे धर्माचरण सब एक से हैं। हम सबका मूल एक है, फिर पत्तों और शाखाओं से जुदा होने से हम एक-दूसरे के प्रति असहिष्णु क्यों होते जा रहे हैं?’
2. मनमोहन सहगल, ‘बदलती करवटें’, पृ० 386
3. वही, पृ० 377
4. वही, पृ० 375
5. वही, पृ० 401
6. वही, पृ० 403
7. वही, पृ० 427
8. वही, पृ० 462

मनोज सहगल कृत उपन्यास 'ज़िंदगी और ज़िंदगी' में संक्रमित सांस्कृतिक मूल्य

सुमनबाला शोधछात्रा

द्रावीडियन विश्वविद्यालय, कूपम (आं०प्र०)

डॉ० बलवीरसिंह निदेशक

हिंदी विभाग, श्री गुरु हरिसिंह महाविद्यालय

जीवननगर, सिरसा (हरि०)

भारतीय संस्कृति प्राचीनकाल से ही विश्वविख्यात रही है। यहाँ के रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, नैतिक-मूल्य, संस्कार, तीज त्योहार आदि आज भी जीवंत हैं। आज भी उनमें उतना ही उत्साह व्याप्त है, परंतु आधुनिकता की दौड़ में आज का मनुष्य संस्कृति के रूप को विकृत करने का प्रयास की रहा है। वह अपनी संस्कृति को छोड़कर पाश्चात्य संस्कृति के रंग में रंगने का प्रयास करने लगा है। मनोज सहगल ने उपन्यास साहित्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति में परिवर्तित मूल्यों और परंपराओं पर करारा व्यंग्य किया है।

मन की विभिन्न संवेदनाएँ जुदा-जुदा दृष्टिकोण से इस पथ के ग्रहण करने की सहमति पेश करती हैं, और कभी विरोध-तांडव भी खड़ा कर देती हैं। जितने मनोबल से पथ-ग्रहण की सहमति मिलती है, उससे दोगुने विरोध का कोड़ा खाना पड़ता है। जैसे भूखे व्यक्ति के सामने शट्रस भोजन का थाल परोस दिया जाए, परंतु खाने का अधिकार उसे न हो, तो जो मानसिक-स्थिति उसकी हो सकती है, कुछ मेरी भी वही दशा है। आज मेरी यौन-स्थिति का अहेतुक-पात उसी का परिणाम है।

‘मैं सोचता हूँ कि समाज क्या अध्यापकों में नपुंसकता के अभाव की कल्पना करता है? निश्चय ही यदि यह मिथ्या है तो समाज को अपनी संतानों के जीवन-निर्माताओं (अध्यापकों को मैं घोर यथार्थ-वेश में देखता हुआ, भी इस अधिकार से वंचित नहीं कर सकता) को पहले भौतिक स्तर पर पूणतः संतुष्ट करना होगा। यदि समाज इस ओर से आँखें बंद रखने का आदी हो गया है और अध्यापक वर्ग-पर एक अप्राकृतिक-जीवन जीने का बोझ लादना चाहता है, तो वह स्वयं अध्यापकों के भावी-चारित्रिक-पतन के बीज बो रहा है। उनमें आडंबर का आसव उड़ेल रहा है।’

मनमोहन सहगल ने आलोच्य उपन्यासों में समाज की विभिन्न संस्कृतियों का विवेचन प्रस्तुत करे हुए व्यक्त करने का प्रयास किया है कि भारतीय संस्कृति पहले भी महान थी और अब भी है। विदेशों में शादी एक ढकोसला मात्र है जबकि भारत में आज भी इसे सात जन्मों का

बंधन स्वीकार किया जाता है। लेखक ने भारतीय संस्कृति का परिचय देते हुए आधुनिक युग में स्त्रियों की सोच तथा उनकी मानसिकता का वर्णन किया है। ऐसे लोगों की मानसिकता को भी व्यक्त किया है, जो हमारी प्राचीन संस्कृति को केवल बोझ मात्र समझते हैं। पाश्चात्य प्रभाव से खंडित सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति लेखक की चिंता देखिए—‘बाहर निकलते ही सामने तीन-चार लड़कियों का समूह रंगीन पोशाकों के इंद्रधनुष की छाया में इठलाता हुआ दिखाई दिया। रेस्तरां के भीतर जो दीपक व अग्रवाल इतनी गंभीर चर्चा कर रहे थे, उन्हें देखते ही लंबी साँस खींचने लगे। धरातल एकदम बदल गया। वे लड़कियाँ वातावरण में एक महक-सी उड़ती, कमेंट-बाग की तरफ चली गईं। हम उनके पीछे-पीछे बाग को ओर आए। सचमुच उन्होंने कुछ ऐसे सेंट लगा रखे थे कि लगभग 20 गज की दूरी पर चले आते हम बराबर उनकी गंध पा रहे थे। अग्रवाल तो शरारत-भरे लहजे से उस स्त्रैण-गंध को यों सूँघने लगा जैसे कोई साँड बोली-गाय का पीछा सूँघकर नाक चढ़ाता है।”

मनुष्य को सामाजिक प्राणी के रूप में तभी स्वीकार किया जाता है, जब वह मानवीय मूल्यों का अनुशरण करे। मानवीय मूल्यों से तात्पर्य उसे अपने समाज, परिवार, धर्म, अर्थ, नैतिक, सांस्कृतिक कर्तव्यों के बारे में पूरी जानकारी हो तथा वह अपने उत्तरदायित्व को निभाने में भी सक्षम हो। अगर कहीं भी मानवीय मूल्यों का अतिकारों का हनन होगा, तो मनुष्य की स्वतंत्रता खतरे में पड़ जाएगी। इसीलिए मानव को सामाजिक प्राणी के रूप में तभी स्वीकार किया जाता है, जब वह दूसरों के अधिकारों पर अपना आधिपत्य जमाने का प्रयास न करे। किंतु समाज के विशाल स्वरूप में यह कुरीति भी पनप ही जाती है। कहीं पर नेताओं द्वारा सरकारी अधिकारियों द्वारा या उद्योगपतियों द्वारा गरीब जनता के अधिकारों का हनन होता है, जो एक क्रांतिकारी लेखक को प्रभावित किए बिना नहीं रह सकता। इसलिए रचनाओं के माध्यम से समाज के पहलुओं को उजागर करना पड़ता है और यही प्रयास मनमोहन सहगल ने आलोच्य उपन्यासों में व्यक्त किया है। सहगल मनोविज्ञान के विद्यार्थी रहे हैं, इसलिए निजी माहौल में भी स्थिति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने की प्रवृत्ति उसके लेखक में दिखाई पड़ती है। युवावस्था में संपर्क में आने वाली प्रत्येक लड़की जीवन की नायिका है, लेकिन आटे-दाल का भाव विवाहोपरांत ही पता चलता है। भावुक मन एडजस्ट करता है या विद्रोह, लेकिन यदि रोटी कमाने का प्रश्न भी टेढ़ा होकर बीच में अटका हो, तो युवावस्था को ग्रहण-सा लग जाता है। ‘जिंदगी और जिंदगी’ लेखक का प्रथम उपन्यास है, जिसमें उसने एक तरुण की भोगी हुई जिंदगी को शब्दों में रूपायित करने का प्रयत्न किया है। यह एक मनोवैज्ञानिक गुत्थियों से भरी कहानी है, जिसमें यथार्थ अपने नग्न रूप में अट्टहास करना चाहता है, पर कर नहीं पाता। जीवन संस्कारों के बंधनों को तोड़ने के लिए छटपटाता है, पर संस्कार ही उसे निर्बंध नहीं होने देते। प्रेय और श्रेय का अद्भुत संघर्ष इसमें दिखाई देता है।

इस उपन्यास के नायक ने भी मुखौटा धारण किया है। जिस समाज में वह जी रहा है, उसमें सम्मान से जीने के लिए उसे अभिनय करना पड़ा है। अपनी शिष्या के प्रति समाज-विद्रोही प्रेम-भाव, जिसमें वासना का शत-प्रतिशत अंश है, धारण कर भी उसे वह अपनी नहीं बना सका। समर्पण के विसुध क्षणों में भी वह समाज के कशाघात के भय से संयत रहा क्योंकि वह समाज में सम्मानित अध्यापक का मुखौटा धारण किए हुए था। समाज में भले ही उसने अपने-आपको

छिपा लिया हो पर अपने से उसने दुराव नहीं किया। अपने स्वगत वार्तालाप में वह नग्न रूप में समाज के सम्मुख खड़ा हो गया है, मानो कहता हो—‘मैं यहीं हूँ, पर मैं तुम्हारी व्यवस्था में बाधा नहीं डालूँगा। अपने को मारकर भी तुम्हें जिंदा रखूँगा, क्योंकि मैं व्यक्ति से समाज को ऊँचा मानता हूँ।’³

लेखक ने समाज के ऐसे व्यक्तियों पर भी व्यंग्य करते हुए आक्रोश जताया है कि किस प्रकार एक अनपढ़ व्यक्ति अपने पास काम करने के लिए अपनी मनमानी तनख्वाह पर पढ़े लिखे लोगों को अपने धन की सहायता से उंगलियों पर नचाता है। यही समाज और समय की विडंबना है कि देश में बेरोजगारी और भ्रष्टाचार बढ़ रहा है। लेखक यहाँ बताने का प्रयास करता है कि मनुष्य में मानवीय संवेदनाओं का क्षरण होता जा रहा है। वह केवल अपने लिए जीता है—‘आखिर मैंने यही निर्णय किया कि दीप्ति की मेहरबानी से यदि मुझे कुछ अतिरिक्त आय हो सकती है, तो मुझे यह प्रस्ताव टुकराना नहीं चाहिए। मेरी वर्तमान आर्थिक-परिस्थिति में उसकी ओर से यह सुझाव मुझे आभार के रूप में स्वीकार करना चाहिए। हाँ, सावधान रहना होगा, कि मेरे विरुद्ध भी नंदा की तरह कोई स्कैंडल न खड़ा हो जाए। मैं आदर्श का पोषक हूँ, फिर भला क्यों किसी गलत रास्ते पर चलूँगा। दीप्ति अच्छी लड़की है, उससे विशुद्ध अध्यापकीय संबंध रखने में कोई दोष नहीं—मेरी अंतरात्मा ने यह फतवा दे दिया।’⁴

संवेदना व्यक्ति के मानसिक संतुलन के लिए अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि संवेदनशील व्यक्ति ही समाज की प्रत्येक स्थिति का अवलोकन कर सकता है। समाज के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर सकता है। संवेदना ही मनुष्य को सामाजिक प्राणी के रूप में स्थापित करती है। संवेदना ही मनुष्य को यह बताती है कि क्या सही है और क्या गलत। आधुनिकयुग की इस व्यस्त और भागमभाग-भरी जीवनशैली में मनुष्य अकेला रहकर ही जीवनयापन करना चाहता है। वह किसी के सुख-दुख में शामिल नहीं होना चाहता। यही संवेदनशून्यता उसे समाज तथा परिवार से अलग करती जा रही है। किसी भी लेखक या साहित्यकार को ये परिस्थितियाँ बड़ी अखरती हैं और जब वह समाज के ऐसे स्वरूप को देखता है, तो उसकी कलम स्वयं ही चलने लगती है। मनमोहन सहगल ऐसे ही उपन्यासकारों में शामिल हैं, जो समाज में व्यक्ति को सत्य का आईना दिखाने का प्रयास करते हैं। एक उदाहरण देखिए—‘पिता का क्रिया-कर्म हो जाने के बाद सहानुभूति दर्शाने हेतु सगे-संबंधियों और पिता के मित्रों की ओर से मेरे सम्मुख कई प्रस्ताव रखे गए। मेरे दोनों बड़ भाइयों ने अति करुण हो मेरे कॉलेज-शिक्षण को चालू रखने का प्रस्ताव रखा। फिर मेरा कॉलेज का ही खर्च नहीं था, घर में माता थी और बीमार बहन। अस्तुः, मैं जानता था कि दोनों भाई इतना बोझ न उठा सकेंगे। मुझे मजबूरन उनके प्रस्ताव को अमान्य ठहराना पड़ा।’⁵

मन की विभिन्न संवेदनाएँ जुदा-जुदा दृष्टिकोण से इस पथ के ग्रहण करने की सहमति पेश करती हैं और कभी विरोध-तांडव भी खड़ा कर देती हैं। जितने मनोबल से पथ-ग्रहण की सहमति मिलती है, उससे दोगुने विरोधा का कोड़ा खाना पड़ता है। जैसे भूखे व्यद्री के सामने शटरस भोजन का थाल परोस दिया जाए, परंतु खाने का अधिकार उसे न हो तो जो मानसिक-स्थिति उसकी हो सकती है, कुछ मेरी भी वही दशा है। आज मेरी यौन-स्थिति का अहेतुक-पात उसी का परिणाम है।

मनमोहन सहगल ने राजनेताओं की संवेदनशून्यता को व्यक्त किया है, तो साथ ही

किसान-मजदूरों के प्रति सहानुभूति जताई है। यह वर्ग दूसरों के लिए अनाज देता है, स्वयं भूखा रहता है। लेखक ने संवेदनशून्यता पर चिंता व्यक्त करते हुए स्पष्ट किया है कि यदि वरिष्ठ नागरिकों के प्रति यही प्रतिक्रिया होती रही तो वह दिन दूर नहीं, जब विदेशों की तर्ज पर 'ओल्ड हाउस' बनाकर घर के बुजुर्गों को उनमें छोड़ दिया जाएगा। प्रत्येक देश और समाज की अपनी परंपरागत मान्यताएँ होती हैं। इन्हीं परंपराओं के द्वारा देश की संस्कृति का ज्ञान तो होता ही है, साथ ही मनुष्य की अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को बढ़ावा भी मिलता है। भारतीय संस्कृति में धर्म को अत्यधिक मान्यता प्रदान की गई है। धर्म के अंतर्गत नैतिकमूल्य कर्तव्य, उतरदायित्व आदि अनेक विषयों का समावेश होता है। जो व्यक्ति नैतिक कार्य नहीं करता वह धर्म के विरुद्ध होता है। मनमोहन सहगल समाज से विमुख होकर अपना कोई अस्तित्व नहीं रख सकते थे। इसलिए इस युगीन समाज को समीप से देख रहे थे। सांस्कृतिक नेताओं एवं समाज-सुधारकों के समान इनको को विदित था कि सामाजिक उन्नति के बिना जाति का राष्ट्रीय जीवन विकसित नहीं हो सकता। अतएव वे समाज का यथार्थ चित्रण करने की ओर अग्रसर हुए। तत्कालीन समाज जिस अधोगति को प्राप्त कर चुका था, उसका सजीव वर्णन आलोच्य उपन्यास में मिलता है। चारों ओर रूढ़िग्रस्त जनता तथा स्वार्थरत समाज दंभ, पाखंड तथा अनेक बाह्यडंबर समाज के बौद्धिक विकास में बाधक हो रहे हैं। ऊँच-नीच तथा जातिभेद के कारण जाति की जीवनशक्ति क्षीण हो रही है। इतना ही नहीं, उन्होंने उन सामाजिक कुरीतियों पर भी दृष्टिपात किया है, जिनके कारण समाज जर्जर हो चुका है। भूतप्रेतादि की पूजा आदि अनेक विकारों का यथार्थ वर्णन मनमोहन सहगल ने किया है। भारत का चिरकाल से यह दुर्भाग्य रहा है कि यह देश फूट, बैर अनेकता आदि दुर्भावों के कारण ही विदेशियों से आक्रांत होता रहा है। सांप्रदायिकता तथा अनेकता के अनुकूल वातावरण में भारतीयों की दुर्बलताएँ अबाध रूप से बढ़ती गई हैं। मनमोहन जी ने भारतीयों की दुर्दशा के इस रूप को अति व्यंग्यात्मक शैली में वर्णन प्रस्तुत किया है। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक, कुरीतियों, दुर्बलताओं का अत्यंत सजीव चित्र व्यंग्यात्मक शैली में खींचा है।' लेखक ने समाज के कायर, आलसी, अकर्मण्य, परमुखापेक्ष, धर्मांध, अंधविश्वासी, झूआछूत फैलाने वाले ढोंगी, पाखंडी, मनचले, निर्लज्ज आदि महापुरुषों पर अच्छी फबतियाँ कसी हैं।⁶

सामाजिक समीकरण को राष्ट्रीयता के लिए अनिवार्य मानते हुए लेखक का मत देखिए—'मैं सोचता हूँ कि समाज क्या अध्यापकों में पुंसकता के अभाव की कल्पना करता है? निश्चय ही यदि यह मिथ्या है, तो समाज को अपनी संतानों के जीवन-निर्माताओं (अध्यापकों) को पहले भौतिक स्तर पर पूर्णतः संतुष्ट करना होगा। यदि समाज इस ओर से आँखें बंद रखने का आदी हो गया है और अध्यापक वर्ग-पर एक अप्राकृतिक-जीवन जीने का बोझ लादना चाहता है, तो वह स्वयं अध्यापकों के भावी-चारित्रिक-पतन के बीज बो रहा है। उनमें आडंबर का आसव उड़ेल रहा है।'⁷

लेखक अपने खंडित समाज पर भी खेद प्रकट करते हैं, उन पर जो अपने स्वाभिमान तथा गौरव को भुला देने वाली जाति के सुधार के लिए केवल भगवान का सहारा ढूँढते हैं। वे अपनी रचनाओं में उन सामाजिक दोषों का दिग्दर्शन कराते हैं, जो सांस्कृतिक एकता में बाधक हैं। लेखक के मतानुसार जब तक समाज द्वेष, बैर, विरोध तथा अन्य संकीर्णताओं से विमुक्त नहीं होता, तब तक उसका जीवन स्वस्थ नहीं हो सकता। मनमोहन सहगल ने जाति की विमूढ़ता तथा

उसके अज्ञान की चर्चा की है और मतमतांतरों की भूल-भुलैयाओं में पड़े समाज का दिग्दर्शन कराया है।

संदर्भ

1. मनमोहन सहगल, 'ज़िंदगी और ज़िंदगी', पृ० 78
2. वही, पृ० 161
3. मनमोहन सहगल रचनावली प्रथम भाग पृ० 3
4. मनमोहन सहगल, 'ज़िंदगी और ज़िंदगी', पृ० 33
5. वही, पृ० 55
6. वही, पृ० 78

पुत्री श्री जुगतीराम
द्वारा श्री महेंद्रसिंह नेहरा
नेहरा निवास, म०न० 11/1258
भगतसिंह नगर, कंगनपुर रोड, सिरसा (हरि०)
मो० 09416505577

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी-कहानी में गांधी-चिंतन के रूप

स्मृति उपाध्याय शोध-छात्र
वीरबहादुर सिंह पू०वि०वि०, जौनपुर

महात्मा गांधी का आविर्भाव भारत ही नहीं, विश्व के विशाल क्षितिज पर एक आश्चर्यजनक जादू था। उन्होंने हम भारतीयों को बिना खून-खराबे के आजादी तो दिलवा दी, लेकिन भारत-सरकार के किसी पद को सुशोभित करने से इंकार कर दिया था। वे राजनीति पुरुष होते हुए भी राजनीति के दौंव-पेंच से दूर थे। जब वे जीवित रहे, उन्हें महात्मा और राष्ट्रपिता का ओहदा देकर देश के सत्ताधारियों ने जैसे उन पर बड़ा एहसान किया। गांधी के देश में पैदा होकर भी हम गांधी के सिद्धांतों का मर्म नहीं समझ सके। यदि उन्हें समझा भी तो अपने जीवन में नहीं उतार सके। गांधी-जयंती और शहीद-दिवस मनाकर हम अपने कर्तव्य की इतिश्री समझने लगे, हमने गांधीवादी विचारों को खादी, चरखा, पैदल-यात्रा और सुविधाओं के त्याग तक सीमित कर दिया, उनके विचारों को, सत्य और अहिंसा के सिद्धांत को भुला दिया, सत्याग्रह को हड़तालों में बदलकर हम अपनी आँखों अपनी विकृतियों का तमाशा देखने लगे।¹

स्वतंत्रता से पूर्व हिंदी कहानी में गांधीजी के विचारों को सघनता से उकेरा गया। प्रेमचंद, जैनेंद्र, श्री विश्वंभरनाथ कौशिक और विष्णु प्रभाकर आदि ने गांधीजी के विचारों को अपनी कहानियों में अभिव्यक्ति दी।

‘प्रेमचंद के लिए यह नितांत स्वाभाविक था कि वे उसी समय, उसी समाज को अपनी कलम से संबोधित कर रहे थे।²

प्रेमचंद की कहानी ‘बड़े घर की बेटी’, ‘मंत्र’, ‘लोकमत का सम्मान’, ‘परीक्षा’, ‘दिल की रानी’ आदि में गांधीवादी आदर्श दिखाई देते हैं। धीरे-धीरे समय ने अगड़ाई ली, समाज परिवेश और परिस्थितियाँ बदल गईं, हम स्वतंत्र हुए और हमारे देश तथा लोगों की प्राथमिकताएँ भी बदल गईं, जिनकी झलक हमें कहानी विधा में भी दिखाई देती है। ‘आजादी मिलने के बाद हिंदी की कथा रचना ने दूसरी महत्वपूर्ण करवट ली या कि उसे लेनी पड़ी। क्योंकि आजादी से पहले जिस समाज की परिकल्पना की गई थी, वैसे समाज के निर्माण में संदेह दिखने लगे थे। दूसरे विश्वयुद्ध विभाजन की त्रासदी और समानता के सपनों के विखरते परिदृश्य ने देश की जनता का मोहभंग कर दिया था। फलस्वरूप कहानीकारों की नई पीढ़ी ने अपनी-अपनी संवेदनाओं की नई जमीनें तलाशी। अपने-अपने भाषाई और सामाजिक यथार्थ के अनुरूप नए रचनाबोध की खोज की। ...इसकी पहचान अमरकांत की ‘डिप्टी कलक्टर’, मार्कंडेय की ‘हंसा जाई अकेला’, कमलेश्वर की ‘राजा निरबंसिया’, राजेंद्र यादव की ‘जहाँ लक्ष्मी कैद है’, शेखर जोशी की ‘कोसी का घटवार’, भीष्म साहनी की ‘चीफ की दावत’, उषा प्रियंवदा की ‘वापसी’, मोहन राकेश की

‘मलबे का मालिक’, निर्मल वर्मा की ‘परिंदे’, रांगेय राघव की ‘गदल’, कृष्णा सोबती की ‘बादलो’ के घेरे’, विष्णु प्रभाकर की ‘धरती अब भी घूम रही है’ आदि में मौजूद है। विभाजन की त्रासदी और तीखे मोहभंग के यथार्थ ने इस दौर में बहुआयामी अभिव्यक्ति पाई।³

स्वतंत्रता के उपरांत कहानियों में गांधी के आदर्श उतनी कसावट के साथ नहीं दिखाई देते जितने स्वतंत्रता के पूर्व थे। उस समय पूरा समाज एक लक्ष्य की तरफ उन्मुख था—स्वतंत्रता प्राप्त करना। लक्ष्य-प्राप्ति के बाद समाज का विकेंद्रीकरण हुआ और लोग विभिन्न लक्ष्योन्मुखी हुए, ऐसे में सोच और तकनीक का रूपांतरण स्वाभाविक था। गांधी के सत्य और अहिंसा नैतिकता के आधार को छोड़कर अब यथार्थ की आधारभूमि ग्रहण करने लगे, जिनका सीधा सरोकार समय के सत्य के साथ जुड़ने में दिखाई देने लगा। सत्य की खोज का मार्ग तेजी से यथार्थवाद की ओर जाता दिखाई देने लगा। वह यथार्थवाद विषय को जानने में भावना की जगह वस्तुनिष्ठता को अधिक तरजीह देता है।

गांधीजी ने सत्य और अहिंसा को अपने जीवन में एक मानक के रूप में प्रयोग किया। सत्य के बारे में उनकी राय—‘मेरे लिए सत्य सर्वोच्च सिद्धांत है, जिसमें अन्य अनेक सिद्धान्त समाविष्ट हैं। यह केवल वाणी का सत्य नहीं है, अपितु विचार का भी है, और हमारी धारणा का सापेक्ष सत्य ही नहीं, अपितु निरपेक्ष सत्य, सनातन सिद्धांत अर्थात् ईश्वर है।’⁴

सत्य की प्राप्ति के लिए गांधीजी ने जिस साधन का प्रयोग किया वह अहिंसा है। मैं केवल एक मार्ग जानता हूँ—अहिंसा का मार्ग। हिंसा का मार्ग मेरी प्रकृति के विरुद्ध है। मैं हिंसा का पाठ पढ़ाने वाली शक्ति को बढ़ाना नहीं चाहता.... मेरी आस्था मुझे आश्वस्त करती है कि ईश्वर बेसहारों का सहारा है और वह संकट में सहायता तभी करता है जब व्यक्ति स्वयं को उसकी दया पर छोड़ देता है।⁵

‘अहिंसा साध्य नहीं है, लेकिन मानवीय संबंधों में सत्य की सिद्धि के सिवा इसके और कोई साधन नहीं है कि हम अहिंसा करें। अहिंसा का दृढ़ता के साथ आचरण अनिवार्यता हमें सत्य तक ले जाता है, जो हिंसा के व्यवहार से संभव नहीं है। इसलिए अहिंसा पर मेरा दृढ़ विश्वास है। सत्य मेरे पास स्वाभावतः आया, अहिंसा को मैंने संघर्ष करके अर्जित किया।’⁶

गांधीजी ने साध्य और साधन की चर्चा में साधन की शुचिता पर जोर दिया है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में साध्य की प्राप्ति के लिए साधनों का बहुआयामी प्रयोग किया गया है। अपने समय के सत्य को उघाड़ने के लिए कहानीकारों ने विचित्र कारण और भाषा का प्रयोग किया है। शायद यह परिस्थितिजन्य समस्या के कारण उत्पन्न हुआ है। अमरकांत की ‘हत्यारे’ कहानी की भाषा एवं विषय सामाजिक विद्रूपता को नंगा कर देते हैं। कहानियों में ऐसे चरित्र और परिस्थिति का आना हमारे समाज की दयनीय दशा का सत्य आकलन है। ‘हत्यारे’ कहानी का एक पात्र ऊल-जुलूल ढंग से बातें करता हुआ नैतिक मूल्यों को मजाक बनाता है—‘अरे, बड़ा खुश हुआ। मैं दस दिन में पूरी किताब डिक्टेट करा दी। वह कहने लगा कि पुस्तक के असली लेखक आप ही हैं और उस पर आपका ही नाम जाना चाहिए, लेकिन मैंने जवाब दिया कि मैं सत्य और अहिंसा के देश का रहने वाला हूँ, मेरी सेवाएँ सदा निःस्वार्थ होती हैं।’⁷

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी-कहानी ने विषयों के चुनाव और उनकी अभिव्यक्ति में नितांत खुलेपन का प्रयोग किया है, जो मूल्यों की दृष्टि से अभिव्यक्ति में हास की स्थिति को दर्शाता है। ‘गांधीजी

एक क्रांतिकारी विचारक थे उन्होंने देश को एक नया विचार दिया-सत्य ही ईश्वर हैं उससे पहले यह कहा जाता था कि ईश्वर ही सत्य है, उनका कहना था कि जब हम कहते हैं कि ईश्वर ही सत्य है, तब हमारे पास करने के लिए कुछ नहीं रह जाता, लेकिन जब हम कहते हैं सत्य ही ईश्वर है तब हमें सत्य का पालन करने कि लिए अपना समूचा जीवन लगा देने का कार्यक्रम मिलता है।⁸ गांधीजी ने कार्य और उसे करने के साधन दोनों को उचित महत्त्व देते हुए साधन की शुचिता के साथ लक्ष्य की प्राप्ति पर बल दिया है। सत्य और अहिंसा गांधीजी के रचनात्मक कार्यों के अभिन्न अंग थे।

गांधीजी के द्वारा प्रयुक्त अहिंसा के मार्ग को ब्रिटिश वायसराय ने कहा था-‘गांधी जी अगर हिंसात्मक लड़ाई लड़े, तो हम उन्हें कुचल सकते हैं, लेकिन जब वह चूल्हे-चक्की और चरखे की बात करते हैं, तो उनके अहिंसात्मक शस्त्रों से लड़ने की शक्ति ब्रिटिश सल्तनत में भी नहीं है।’⁹ गांधीजी अहिंसा की अवधारणा को व्यापक अर्थ में प्रस्तुत करते हैं-‘सामान्य अहिंसा का अर्थ हिंसा या हत्या न करना है, लेकिन गांधीजी ने अहिंसा की इससे व्यापक परिभाषा बताते हुए कहा कि किसी को न मारना अहिंसा का एक अंग है, अहिंसा इसके अतिरिक्त कुछ और भी है, किसी के प्रति कुविचार विद्वेष, क्रोध किसी का अहित चाहना, किसी की वस्तु पर अधिकार करने की अधिकार चेस्टा, मिथ्या भाषण आदि भावनाओं का त्याग भी अहिंसा है, इसके अतिरिक्त वाणी और संवेगों पर नियंत्रण रखना भी अहिंसा है। अहिंसा नकारात्मक ही नहीं सकारात्मक भी होती है। अहिंसा में चार मुख्य तत्व हैं-प्रेम, धैर्य, अन्याय का विरोध और वीरता गांधी जी की अहिंसा प्रेममय है।’⁹ गांधीजी का विश्वास था कि ‘भविष्य का विश्व एक अहिंसा पर आधारित समाज होगा, वे अपने देशवासियों को और दूसरों को कहते थे कि अहिंसा का उपदेश नहीं दिया जा सकता, बल्कि इसे व्यवहार में लाना जरूरी है।’¹⁰

14 जून, 2007 को संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने एकमत से यह फैसला किया कि अब आगे से महात्मा गांधी के जन्मदिन 2 अक्टूबर को अहिंसा का अंतर्राष्ट्रीय दिवस के रूप में मनाया जाएगा। गांधीजी ने जो कुछ कहा और किया उसकी प्रासंगिता अत्यधिक बढ़ गई है। हमें एक अहिंसक, समानतावादी, मानवीय, संपोषित-सौहार्दपूर्ण, समृद्ध और खुशहाल विश्व के गांधीजी के आदर्श व कार्य के लिए जीतोड़ प्रयास करना चाहिए। गांधीजी का नारा ‘सब जीवन एक है’ की अनुभूति के लिए हमें सारी मानवता से प्रेम करना चाहिए।¹¹

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी का दौर गांधी जी के विचारों के प्रति निष्ठा को उघाड़कर रख देता है। अमरकांत की हत्यारे कहानी के दो पात्र कुकृत्य करके भागते हुए कहते हैं-‘मेरे आदेश का चुपचाप पालन कर। आज समय आ गया है कि हमारे नवयुवक बुद्धिमानी, मौलिकता, साहस और कर्मठता से काम लें। मैं पूर्ण अहिंसात्मक तरीके से उनका पथ-प्रदर्शन करना चाहता हूँ।’¹²

महात्मा गांधी का सत्य और अहिंसा का मार्ग इतना सरल नहीं था जितना लोगों ने उसे समझा। निश्चित रूप से यह आत्मशक्ति से प्रेरित मार्ग था। यह इतना व्यावहारिक है कि अपने जीवन में लागू करने के बाद ही दूसरों को सिखाने में प्रभावी हो सकता है। आज के समाज में शायद इतनी सहनशीलता और धैर्य का उदाहरण विरले में ही दिखाई पड़ सकता है।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य और गांधीवादी चेतना, हिंदुस्तानी प्रचार सभा संपादकीय, पृ० 9-10

2. वही, पृ० 66
3. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानियाँ, संपादन कमलेश्वर, संपादकीय पृ० 9
4. महात्मा गांधी के विचार, आर०के० प्रभु यू०आर० राव, पृ० 39
5. महात्मा गांधी के विचार, आर०के० प्रभु यू०आर० राव, पृ० 104
6. वही, पृ० 110
7. प्रतिनिधि कहानियाँ, अमरकांत, हत्यारे, पृ० 109
8. प्रतियोगिता दर्पण, हिंदी मासिक पत्रिका, अक्टूबर 2011, पृ० 528
9. प्रतियोगिता दर्पण, हिंदी मासिक पत्रिका, अक्टूबर 2011, पृ० 529
10. वही, पृ० 529
11. वर्ड फोकस (हिंदी संस्करण 2011), पृ० 26
12. प्रतिनिधि कहानियाँ, अमरकांत, 'हत्यारे', पृ० 113

पुत्री डी०एन० उपाध्याय
3, नारायण कॉलोनी ज्ञानपुर,
स०र०न० भदोही 221304

जयशंकर प्रसाद की नाटकीय दृष्टि

डॉ० राजाराम अग्रवाल

सहायक प्रोफेसर हिंदी

रा० महिला महाविद्यालय, भोड़ियाखेड़ा (फतेहाबाद)

जयशंकर प्रसाद हिंदी साहित्य के विमल विभूति थे। उन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा के द्वारा कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंध आदि लिखकर हिंदी साहित्य का सर्वांगीण विकास किया। यद्यपि प्रसादजी ने नाट्यपद्धति पर अपने नाटकों का आरंभ किया था, परंतु धीरे-धीरे उसमें परिवर्तन करके नाट्यकला को नई दिशा प्रदान की। उन्होंने पाश्चात्य नाट्य-पद्धति से उपयुक्त उपकरण लेकर नाट्यकला को अप्रत्याशित मोड़ दिया, जिससे हिंदी नाट्यकला निखर उठी।

आज भले ही नाटक को 'पाठ्यकाव्य' क्यों न मान लिया जाए, परंतु उसकी पूर्णता रंगमंच पर सफल अभिनय में ही है। प्रसादजी की रंगमंचीय दृष्टि अनियता का जानने के लिए सर्वप्रथम उनके रंग-शिल्प पर विचार करना आवश्यक है।

प्रसादजी के 'सज्जन', 'कल्याणी परिणय', 'प्रायश्चित' आदि आरंभिक नाट्य-कृतियों में जहाँ संस्कृत रंग-शिल्प एवं पारसी रंगशिल्प का स्पष्ट पगभाव परिलक्षित होता है, वहाँ 'राजश्री' से लेकर 'अग्निमित्र' तक परवर्ती नाटकों में पारसी रंग-शिल्प के साथ-साथ पाश्चात्य रंग-शिल्प का मिश्रित प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। प्रसाद की रंगमंचीय दृष्टि एवं अभिनेयता के बारे में विद्वानों ने अपनी भिन्न-भिन्न सम्मतियाँ प्रस्तुत की हैं। पं० रामचंद्र शुक्ल का विचार है कि प्रसाद ने रंगमंचीय दृष्टि से अपने नाटकों में मृत्यु, वध, आत्महत्या आदि उन दृश्यों की योजना की है, जो भारत में 'अत्यंतक्षोभ तथा शिष्ट रूचि की विरक्ति बचाने के लिए वर्जित माने जाते थे।'¹

पं० जगन्नाथप्रसाद शर्मा की राय में 'प्रसाद' के अधिकांश नाटक रंगमंच के विचार से दोषपूर्ण और अव्यवहारिक हैं, क्योंकि इनके नाटक बहुत बड़े हैं, स्वगत-भाषण बहुत लंबे हैं, उनमें काव्य-तत्त्व की प्रचुरता है और परिमित रंगमंच पर सभी प्रकार के दृश्यों को दिखाना सर्वथा कठिन है।²

डॉ० भारतभूषण अग्रवाल प्रसादजी के नाटकों की रंगमंचीय दृष्टि के बारे कहते हैं, 'रंगमंच की दृष्टि से 'स्कंदगुप्त' अथवा अन्य अधिकांश नाटक भी असफल हैं, खेले जाने के अयोग्य हैं। उनमें साहित्यिक सौंदर्य जरूर है, पर वे केवल पढ़ने के काम के हैं।'³

प्रो० रामकृष्ण 'शिलीमुख' का विचार प्रसादजी की रंगमंचीय दृष्टि के समर्थन में है— 'प्रसाद ने अपने नाटक उद्देश्य से लिखे हैं, जहाँ कहीं इस उद्देश्य से कुछ व्यतिक्रम हो गया है, वहाँ अज्ञात रूप से उनकी साहित्यिक शैली तथा दार्शनिक विचारधारा के कारण। परंतु यह व्यतिक्रम ऐसा नहीं कि रंग-प्रबंधक का स्वाभाविक अधिकार उसका परिहार न कर सके।'⁴

डॉ० धनंजय का विचार है कि 'प्रसाद के नाटकों के मंचीकरण के इधर जो प्रयास हुए

हैं, उनसे यह साबित होता है कि उनके नाटक रंगमंच के उपयुक्त हैं।¹⁵

इस प्रकार प्रसाद के नाटकों की मंचीयता एवं अभिनेयता के बारे में अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि अधिकांश विद्वानों ने वर्तमान पारसी रंगमंच को ही ध्यान में रखकर उनके नाटकों पर विचार किया है। इसीलिए उनके नाटक साहित्य की दृष्टि से पूर्ण्यता असफल एवं अनुपयुक्त है, परंतु यह आरोप उचित नहीं जान पड़ता। 'रंगमंच' निबंध से ज्ञात होता है कि उन्होंने भरतमुनि नाट्यशास्त्र का अध्ययन करके उसमें वर्णित रंगशाला के शिल्प, वस्तु-निर्माण, रंगमंच की योजना, यवनिका, अभिनेता, उनकी साज-सज्जा आदि का विस्तृत वर्णन किया है। प्रसाद जी पर एक आरोप यह भी लगाया जाता है कि उन्होंने नाटक में वर्जित मृत्यु, वध, आत्महत्या, युद्ध, अभियान आदि दृश्यों की योजना की है।

इसके लिए यह ध्यान में रहना चाहिए कि प्रसाद स्वच्छंदतावादी नाटककार थे। उन्होंने जहाँ नादी, प्रस्तावना, सूत्रधार, भरतवाक्य आदि प्राचीन रूढ़ियों को तोड़कर नूतन मार्ग का अनुसरण किया था, वहीं वर्जित दृश्यों की नाट्यधर्मी रूढ़ियों को भी तोड़कर जगत के यर्थाथ रूपों को रंगमंच पर दिखाने की योजना बनाई। प्रसाद जी के रंग-शिल्प पर यह आरोप है कि उनके नाटक बहुत बड़े, भाषण और स्वगत कथन लंबे-लंबे हैं। नाटकों में कवित्व का प्राधान्य है, परंतु यह आरोप भी विशेष तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता है।

विद्वानों का यह विचार है कि प्रसाद के नाटक अभिनय के लिए नहीं, पढ़ने के लिए लिखे गए। उनका तो केवल साहित्यिक महत्त्व है और वे अभिनेय की अपेक्षा पठनीय अधिक हैं, परंतु यह आरोप भी उचित नहीं जान पड़ता। यदि वे अभिनय के लिए न लिखे गए होते, तो नाटक न लिखकर उपन्यास लिख सकते थे। प्रसाद जी का रंग संकेत एवं निर्देश संबंधी ज्ञान इस बात का सूचक है कि प्रसाद जी ने अभिनय हेतु ही अपने नाटकों का निर्माण किया था और उनकी दृष्टि में एक दृश्य-काव्य की पूर्ण सफलता अभिनय में ही निहित थी।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने ठीक ही लिखा है कि 'प्रसाद जी नाट्यकला संबंधी स्वतंत्र आधार लेकर चले हैं और उनकी परीक्षा के लिए अनुकूल रंगमंच का होना भी आवश्यक है। बिना ऐसी ही परीक्षा का अवसर दिए यह कहना कि प्रसाद जी की भाषा जटिल है, नाटक नाट्योपयोगी नहीं, प्राथमिक उत्तरदायित्व से मुँह मोड़ना है।'¹⁶

अतः यह कहा जा सकता है कि प्रसाद के सभी नाटक अभिनय की दृष्टि से ही लिखे गए हैं, उनमें जनरुचि के अनुकूल गीत, नृत्य, प्रहसन आदि का समावेश हुआ है। उनमें प्रसाद जी की उत्कृष्ट रंगमंचीय प्रतिभा भी विद्यमान है। वे प्रसाद के समुन्नत रंगशिल्प से परिपूर्ण हैं और उपयुक्त एवं यथेष्ट रंगमंच पर उनका सफलतापूर्वक मंचन हो सकता है।

संदर्भ

1. डॉ० नगेंद्र, आधुनिक हिंदी नाटक, पृ० 15
2. डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० 295-296
3. डॉ० नगेंद्र (संपादक), हिंदी वाङ्मय बीसवीं शती, पृ० 140
4. प्रो० शिलिमुख, प्रसाद की नाट्यकला, पृ० 162
5. डॉ० धनंजय, प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृ० 167
6. नंददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, पृ० 129

वेदांत सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिवेश

डॉ० सुधा सिंह

असि० प्रोफेसर शिक्षाशास्त्र विभाग

एम०डी०पी०जी० कालेज, प्रतापगढ़

वैदिक आर्य अनार्यों के साथ भयंकर संग्राम करके विजयी हो चुके थे और पुनरुत्थान के लिए कृत संकल्प थे। ऐसी स्थिति में उनके लिए जनसंख्या में वृद्धि एवं अनुशासन दोनों ही तथ्य जीवन-मरण का प्रश्न बने हुए थे। अपनी इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए उन्होंने समाज की न्यूनतम इकाई परिवार को बनाया और उसमें कठोर अनुशासन लागू किया। जनसंख्या में वृद्धि चूँकि उनका लक्ष्य था, इसलिए विवाह संस्कार की अनिवार्यता लागू किया जाना भी अवश्यंभावी था और अपने इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने धर्म को अपना साधन बनाया। ऋग्वेद में याज्ञिक कार्यों में पति और पत्नी दोनों की उपस्थिति वांछनीय तथा लौकिक एवं पारलौकिक शांति के लिए पुत्रों को अनिवार्य बताया है।¹ ये दोनों ही उदाहरण वैदिक आर्यों में विवाह की आवश्यकता को प्रदर्शित करते हैं। वैदिक आर्यों की यह व्यवस्था उत्तरवैदिक काल अर्थात् वेदांतिक युग में भी बनी रही और वैदिक आर्य लगातार अपने सांस्कृतिक पुनरुत्थान में संलग्न रहे। वेदांतिक समाज की इकाई भी परिवार थी, जिसका प्रमुख पिता होता था। पिता को अपने परिवार में विशाल अधिकार प्राप्त थे। ऐतरेय ब्राह्मण में एक ऐसा ही उल्लेख मिलता है जिसमें एक पिता ने अपने पुत्र शुःशेय को बेच दिया था। विश्वामित्र ने अपनी आज्ञा के उल्लंघन पर अपने पुत्रों को घर से निकाल दिया था, लेकिन यह उल्लेख अपवाद स्वरूप ही है, साधारणता पिता अपने परिवार के सदस्यों के प्रति सौहार्दपूर्ण और उदारतापूर्ण व्यवहार करता था। अथर्ववेद में सम्मिलित परिवार के सुमति और एकता के निमित्त प्रार्थना की गई है।² संपत्ति पर पुत्रों का अधिकार था और आवश्यकता पड़ने पर पिता की उपस्थिति में ही संपत्ति का विभाजन कर सकते थे।³ ये परिवार कच्ची-पक्की ईंटों मिट्टी तथा लकड़ी की सहायता से बने छोटे-छोटे घर में निवास करते थे। इन गृहों के समूह को ग्राम कहते थे साधारणतया ये ग्राम अपनी आवश्यकताओं के लिए अपने में पूर्ण थे। अथर्ववेद और छांदोग्य उपनिषद् से यह स्पष्ट है कि भूमि पर राजा का अधिकार न होकर जनता का अधिकार था।⁴ ऐतरेय ब्राह्मण में बहुसंख्यक ग्राम स्थापना का उल्लेख है।⁵ जैमिनीय उपनिषद् और तैत्तरीय उपनिषद् ब्राह्मण में नगर स्थापना का भी उल्लेख मिलता है। वेदांतिक आर्यों के लिए सामूहिक जीवन अनिवार्य था, क्योंकि एक ओर तो यह सुरक्षा की दृष्टि से अधिक सुविधाजनक था, तो दूसरी ओर यह आवश्यक साधन-संग्रहण के लिए आवश्यक था। यही कारण है कि आर्यपरिवार में सभी सम्मिलित रूप से माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी आदि रहते थे और इस समुदाय का मुखिया पिता होता था, जो कि पारिवारिक धन-जन

की संरक्षा, अनुशासन, जीवन संचालन और यज्ञादि कराने के लिए उत्तरदाई था।

तत्कालीन आर्य पुत्री की अपेक्षा पुत्र की अधिक कामना करता था, क्योंकि वह अपने पिता के कार्यों में सहायक और आज्ञाकारी होता था, पूर्वजों को उद्कादि देता था और जन-धन की संरक्षा के लिए भी शक्तिवान और शत्रुहंता पुत्र आवश्यक था।⁶ वृहदारण्यक उपनिषद् में कतिपय पुत्रों को उनके पिता के नाम से न पहचान कर उनकी माता के नाम से उनको बताया गया है, यथा गार्गी पुत्र⁷ लेकिन यह उदाहरण अपवाद ही है। साधारणतया पिता ही परिवार का मुख्या था और पुत्रों के नाम के साथ माता का नाम उल्लिखित होना केवल उन महान् विदुषी स्त्रियों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना था। अष्टाध्यायी भी सम्मिलित परिवार की सूचना देता है। कदाचित् बहुप्रज और पुत्र-पौत्रीण होना तत्समय सौभाग्य समझा जाता था।⁸ पाणिनि ने कुलीन और महाकुल का उल्लेख किया है। प्रत्येक परिवार अपनी प्राचीनता, महत्ता और विशुद्धता पर गर्व करता था। समाज पितृ प्रधान था, यह अलग बात थी, लेकिन अष्टाध्यायी में माता-मह शब्द का पितामह से पूर्व उल्लेख माता के स्थान को पिता से ऊँचा सिद्ध करता है।

वेदांतिक युग में समान में वर्ण-व्यवस्था जन्म पर आधारित हो चुकी थी। कतिपय विद्वान तो ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में उल्लिखित वर्ण-व्यवस्था के विधान को आधार मानकर तत्कालीन समाज में भी वर्ण-व्यवस्था का अविर्भाव मानते हैं, लेकिन पुरुष सूक्त के अतिरिक्त अन्य कहीं भी ऋग्वेद में चारों वर्णों का उल्लेख नहीं मिलता है। अगर कहीं संकेत मिलता भी है, तो श्याम और गौर वर्ण का। लेकिन वेदांतिक युग में चारों वर्णों का विभाजन स्पष्ट रूप से दिखाया गया है। वाजसनेयी संहिता में केवल क्षत्रिय, शूद्र और आर्य का उल्लेख किया गया है। यहाँ कदाचित् आर्य शब्द से सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण का बोध होता है।⁹ वस्तुतः वेदांतिक युग में ब्राह्मण और क्षत्रियों में सामाजिक प्रभुता और प्रतिष्ठा के लिए प्रतिस्पर्धा चल रही थी। कदाचित् इसी कारण से शतपथ ब्राह्मण में एक स्थान पर ब्राह्मण को क्षत्रिय से ऊँचा बताया गया है और दूसरे स्थान पर क्षत्रिय को ब्राह्मण से ऊँचा।¹⁰ कदाचित् इसी प्रतिस्पर्धा से प्रेरित होकर क्षत्रियों ने कठिन अध्ययन और लगन के द्वारा उपनिषद्काल तक ब्राह्मणों के समान ही समानता प्राप्त कर ली थी। उनकी विद्वता से प्रभावित होकर स्वयं ब्राह्मण भी उनके समीप पढ़ने जाते थे। श्वेतकेतु मारण्य ने प्रवाहरण जैवालि क्षत्रिय से शिक्षा पाई थी। इसी प्रकार ब्राह्मण गार्ग्य ने काशिराज अजातशत्रु के समीप अध्ययन किया था। पंचाग्नि विद्या को तो क्षत्रियों ने ही जन्म दिया था।¹¹

प्रत्येक वर्ण की पहचान के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञोपवीत की कल्पना की गई थी। इसके अंतर्गत ब्राह्मण सूत का, क्षत्रिय सन का और वैश्य ऊन का यज्ञोपवीत धारण करते थे। उनके अग्निहोत्र करने के उपयुक्त काल भी भिन्न-भिन्न थे। तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि ब्राह्मण को बसंत में, क्षत्रिय को ग्रीष्म में, वैश्य को शीत में और रथकार को वर्षाकाल में अग्नि-होत्र करना चाहिए। इन पृथक-पृथक नियमों से स्पष्ट हो जाता है कि वर्ण भेद शनैः-शनैः दृढ़ हो रहे थे। वेदांतिक साहित्य में कतिपय ऐसे उदाहरण हैं, जो तत्कालीन समय में ब्राह्मणों के उच्च सामाजिक स्थिति की पुष्टि करते हैं। यथा-ब्राह्मण दिव्य वर्णा था।¹² वह पृथ्वी का प्रत्यक्ष देवता था।¹³ उसमें समस्त देवता निवास करते थे।¹⁴ अष्टाध्यायी में भी ब्राह्मण शब्द का प्रयोग अन्य वर्णों से पूर्व किया गया है। सूत्र साहित्य भी ब्राह्मण वर्ण को सर्वोच्च घोषित करते हैं और वर्ण व्यवस्था का आधार कर्म के आधार पर जन्म को माना गया है।¹⁵ तत्समय राजा अन्य वर्णों का

शासक था, परंतु ब्राह्मण वर्ण का नहीं।¹⁶ उसे किसी प्रकार का शरीरिक दंड नहीं दिया जा सकता।¹⁷ वह पूर्णतया अवध्य, अदंड, अवहिष्कार्य, अपरिवध और अपरिहार्य है।¹⁸ वह कर से मुक्त है,¹⁹ अन्य वर्गों के ऊपर उसकी श्रेष्ठता इसी बात से सिद्ध है कि दस वर्ष का ब्राह्मण सौ वर्ष के क्षत्रिय के समान है, परंतु ब्राह्मण की इस उच्चता का कारण उसकी विद्वता एवं सच्चरित्रता होता था। गौतम का कथन है कि अविद्वान ब्राह्मण की अपेक्षा विद्वान ब्राह्मण को ही दान देना अधिक पुण्यकर है।²⁰ धार्मिक कृत्यों में भोज आदि के लिए भी विद्वान ब्राह्मणों को ही आमंत्रित करने का आदेश दिया गया है।²¹ गौतम ने ब्राह्मण की जीविका के लिए अध्यापन, याजन और प्रतिग्रह मुख्य साधन बताया है, लेकिन बोधायन धर्मसूत्र में अन्यान्य कर्मों को भी आवश्यकतानुसार ब्राह्मणों के लिए उचित ठहराया है।

इस वर्ण व्यवस्था की दूसरी सीढ़ी पर थे—क्षत्रिय, जिनके लिए गौतम ने समाज की रक्षा का दायित्व निर्धारित किया है। गौतम ने कहा था कि राजा हैं दो, ब्राह्मण और विद्वान, दोनों से संसार में धर्म की रक्षा होती है।²² ब्राह्मणों के सहयोग से क्षत्रिय सुख शांति प्राप्ति करता है।²³ परंतु व्यावहारिक दृष्टि से प्रत्येक व्यवस्थाकार ने क्षत्रिय के ऊपर ब्राह्मण की प्रभुता आरोपित की है। आपस्तंब के विचार से दशवर्षीय ब्राह्मण भी शतवर्षीय क्षत्रिय के लिए सम्माननीय है। यदि कोई क्षत्रिय ब्राह्मण का अपमान करे, तो उस पर 100 कर्षापण का जुर्माना होगा²⁴ परंतु यदि कोई ब्राह्मण क्षत्रिय का अपमान करें तो उस पर केवल 50 कर्षापण जुर्माना होगा। ब्राह्मण की भाँति क्षत्रिय को भी अध्ययन, यज्ञ और दान का अधिकार था।²⁵ राजा को त्रिवेदश होना चाहिए।²⁶ आपस्तंब ने यह अनुमति दी है कि आपद्काल में क्षत्रिय भी विद्याध्ययन कर सकता है। इससे प्रकट होता है कि समाज में क्षत्रिय आचार्य भी विद्यमान थे।

ऋग्वेद में वैश्य शब्द नहीं मिलता। सर्वप्रथम इसका प्रयोग उत्तरवैदिक साहित्य में हुआ है। उत्तरवैदिककाल में इस वर्ण को 'अन्यस्य बालिकृत' कहा गया है, इससे प्रकट होता है कि ब्राह्मण और क्षत्रियों की अपेक्षा वैश्य का स्थान नीचा है, परंतु विविध व्यवसायों द्वारा राष्ट्र की समृद्धि बढ़ाने में तत्पर वैश्य वर्ण की उपेक्षा न हो सकती थी। तैत्तरीय संहिता का कथन है कि वैश्य समुदाय पशुपालन और अन्नोत्पत्ति करते हैं।²⁷ ऐतरेय ब्राह्मण ने उसकी महत्ता को स्वीकार करते हुए कहा है कि देवकर्म अथवा याज्ञिक कर्म में वैश्य समुदाय का सहयोग आवश्यक है।²⁸

सूत्रकालीन साहित्य में भी सम्मान्यता की दृष्टि से वैश्य वर्ण ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्णों के बाद आता है। गौतम के मतानुसार यदि कोई ब्राह्मण क्षत्रिय का अपमान करे, तो उसे 50 कर्षापण जुर्माना देना होगा, परंतु यदि वह किसी वैश्य का अपमान करे तो उसे केवल 25 कर्षापण देना पड़ेगा।²⁹

ब्राह्मण और क्षत्रियों की भाँति वैश्यों को भी अध्ययन, यज्ञ, दान का अधिकार था।³⁰ आपस्तंब में ब्राह्मणों को यह अनुमति दी थी कि आवश्यकता पड़ने पर वे वैश्यों से भी विद्याध्ययन कर सकते हैं।³¹ बोधायन की व्यवस्था है कि वेदाध्ययन और कृषि परस्पर विरोधी है और सामान्य मनुष्य दोनों का एक साथ अनुसरण नहीं कर सकता, वैश्य वर्ण पर पूरी तरह लागू हुई थी।³² परंतु अन्य वर्णों की भाँति वैश्य वर्ण भी आपात्काल में वर्ण विरुद्ध व्यवसाय का अनुसरण कर सकता था।³³ गो, ब्राह्मण तथा वर्णों की रक्षा के लिए शस्त्र भी ग्रहण कर सकता था।³⁴

पुरुष सूक्त को छोड़कर ऋग्वेद में कहीं भी शूद्र का प्रयोग नहीं मिलता, किंतु

उत्तरवैदिक काल के साहित्य में इस शब्द का प्रयोग कई बार हुआ है। यही नहीं, इस समय तक शूद्र समुदाय में अनेकानेक वर्ग हो गए थे, इनमें से कुछ प्रमुख वर्ग चांडाल, पौलकस, निषाद, उग्र, आयोगव, मागध तथा वद्वेध्व थे। सूत्रकाल में भी चौथा वर्ण शूद्रों का था। प्रारंभ में इस वर्ण में अनार्य, विजित अथवा क्रीत मनुष्य ही थे। गौतम शूद्र को अनार्य कहते हैं।³⁵ बौधायन में उनके लिए कृष्णवर्ण शब्द का प्रयोग किया गया है। कालांतर में अनार्य जातियों के साथ आर्यों की वर्णसंकर जातियाँ भी शूद्र समुदाय में परिगणित होने लगीं।³⁶ सूत्रकारों की दंड व्यवस्था में भी शूद्रों का निम्न स्थान है। क्षत्रिय और वैश्य का अपमान करने पर ब्राह्मण पर क्रमशः 50 और 25 कर्षापण का जुर्माना होता था, परंतु शूद्रों के प्रति उसी अपराध में उसे कोई दंड नहीं दिया जाता था। सामान्य परिस्थिति में ब्राह्मण के लिए शूद्र का दान भी अग्राह्य था, वह उसे आपदकाल में ग्रहण कर सकता था।³⁷

उपर्युक्त 4 वर्णों के अतिरिक्त समाज में बहुसंख्य जातियाँ और उपजातियाँ भी थीं। सूत्रकारों ने उन्हें अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों का ही परिणाम बताया और चतुर्वर्ण के बाहर उन्हें वर्णसंकर जातियों के रूप में प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार बहुसंख्यक जातियों के होते हुए भी वर्ण चार ही रहे। सूत्र साहित्य में वर्णित कुछ जातियाँ उल्लेखनीय हैं—अंबष्ठ, आयोगव, उग्र, चांडाल, निषाद, मागध, रथकार, वैदेहक और सूत।

वस्तुतः विविध व्यवसाय के अनुसरण से अनेक जातियों का प्रादुर्भाव हो गया था, जैसे अथर्ववेद रथकार³⁸ और सूत³⁹ का वर्णन करता है। तैत्तरीय ब्राह्मण में रथकार को अग्निहोत्र करने का अधिकार दिया है।⁴⁰ शतपथ ब्राह्मण में सूत को रामकृत कहा गया है।⁴¹ इससे विदित होता है कि समाज में सूत का विशेष महत्त्व था। तैत्तरीय संहिता में क्षत जाति का उल्लेख है।⁴² यह प्रतिहारी वर्ग था और इसका भी विशेष महत्त्व था। ताण्ड्व ब्राह्मण में क्षत की गणना राज्याधिकारियों में की गई है।⁴³ इनके अतिरिक्त तैत्तरीय संहिता में संग्रहीत (कोषाध्यक्ष), तक्षन् (बढ़ई), कुंभकार, कार, कुलाल, कमीर, पुणिष्ट, इषुकृत, धन्वकृत, मृगयु, श्वनि आदि व्यवसायियों का भी उल्लेख है।⁴⁴ ये भी जातियों के रूप में संगठित हो रहे थे। ऐतरेय ब्राह्मण में अंध, पुंडू, शवर, पुलिंड, मूतिव नामक अनार्य जातियों का भी उल्लेख है।⁴⁵ ये आर्य समुदाय से बाहर समझी जाती थी।

संदर्भ

1. ऋग्वेद 5-3-2, 5-28-3, 1-105-3, 5-4-10
2. अथर्ववेद 3-30
3. ऐतरेय ब्राह्मण 5-14
4. अथर्ववेद (5-22-2), छांदोग्य उपनिषद् 12-4
5. ऐतरेय ब्राह्मण (13-44)
6. ऋग्वेद (1-73-3, 1-68-5, 1-105-3, 6-33-1)
7. वृहदारण्यक उपनिषद् (6-4-20)
8. पाणिनी 5-4-23, 5-2-10
9. वाजसनेयी संहिता (26-2)
10. शतपथ ब्राह्मण (14-4-1-23)
11. तैत्तरीय ब्राह्मण 1-2-6

12. तैत्तरीय संहिता 1-7-31
13. तैत्तरीय आरण्यक 2-15
14. आपस्तंब गृहसूत्र 1-1-15
15. गौतम गृहसूत्र 9-1
16. गौतम गृहसूत्र 2-43
17. गौतम गृहसूत्र 8-12-13
18. आपस्तंब गृहसूत्र 2-10-6-10 वशिष्ठ 1-44-46
19. गौतम गृहसूत्र 5-18
20. आपस्तंब धर्मसूत्र 2-6-15-9-10
21. गौतम गृहसूत्र 1
22. गौतम गृहसूत्र 9-14
23. गौतम गृहसूत्र 21-6-10
24. गौतम 10.1.3
25. आपस्तंब धर्मसूत्र 2.24, 25-28
26. बोधायन 1.5.101
27. गौतम 07-26
28. बोधायन 2-2-80
29. गौतम 10-69
30. बोधायन धर्मसूत्र 2.1 -59
31. गौतम 18.24
32. अथर्ववेद 3-5-6
33. अथर्ववेद 2.5.7
34. तैत्तरीय ब्राह्मण 1.1.4
35. शतपथ ब्राह्मण 13.2.2
36. तैत्तरीय संहिता 4.5.4.2
37. ऐतरेय ब्राह्मण 33.6

हिंदी साहित्य में स्वामी श्री रामभद्राचार्यजी का योगदान

डॉ० सद्भावना शुक्ला

भारतीय संत अनादिकाल से धर्म और अध्यात्म की ज्योति दैदीप्य करने के साथ लोकोन्मुखी होकर नाना रूपों में समाज को दिशा बोध कराते हुए नवीन चेतना प्रदान करते आ रहे हैं। कबीर, सूर, तुलसी आदि ने उदात्त जीवनमूल्यों से युक्त विपुल साहित्य सृजनकर लोकशक्ति को सद्भावयुक्त समरसता प्रदान की है संत साहित्य की यह परंपरा हिंदी साहित्य के आदिकाल से प्रवाहित होती हुई भक्तिकाल में अपने चरमोत्कर्ष पर दृष्टिगत होती है। संतों की विशद् शृंखला में स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विशुद्धानंद, महर्षि अरविंद, धर्मसम्राट स्वामी करपात्री जी आदि ने अपने बहुआयामी चिंतनों से भारतीय जनमानस को प्रभावित किया है। यद्यपि संतों का संसर्ग समाज को सुवासित करते हुए नवीन ऊर्जा प्रदान करता है, तथापि आज कुछ छद्मवेषी पाखंडी संतों के क्रिया-कलापों से समाज दिग्भ्रमित और ठगा हुआ-सा भी अनुभव करने लगा है। क्या कपितय अपवादों का आधार लेकर अन्य सच्चे संतों के लोक चेतनायुक्त महनीय कार्यों की भी उपेक्षा की जानी चाहिए? कदापि नहीं। आज भी हिंदी-संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि में संतों के योगदान को नकारा नहीं जा सकता।

वर्तमान में विकलांग विश्वविद्यालय चित्रकूट के कुलाधिपति स्वामी रामभद्राचार्य जी ने प्रज्ञा चक्षु होते हुए भी, हिंदी एवं संस्कृत में समान अधिकार के साथ अपनी लेखनी से विपुल एवं उत्कृष्ट साहित्य-सर्जना की है। साहित्यकार की अपनी तथा समाज की मुखर चेतना ही साहित्य है। स्वामीजी ने अपनी दिव्य मेधा, विलक्षण प्रतिभा, स्वाध्याय एवं साधना से साहित्य-सृजन के उच्चतम सोपानों का स्पर्श किया है। स्वामीजी ने साहित्य-सृजन द्वारा धर्म-दर्शन एवं अध्यात्मयुक्त जीवन की ओर प्रेरित करते हुए समाज में उदात्त जीवनमूल्यों के संस्थापन का प्रयास किया है। वह अपनी अपरमित ऊर्जा एवं लोकोत्तर चेतना द्वारा हिंदी वाङ्मय में नाटक, महाकाव्य, खंडकाव्य, गीतिकाव्य, निबंध, भाष्य, प्रवचन व प्रकरण ग्रंथों का अनवरत प्रणयन कर रहे हैं। यहाँ हिंदी साहित्य में उनके उत्कृष्ट अवदान पर प्रकाश प्रक्षेपण अपेक्षित है।

महाकाव्य-अरुंधती :

प्रज्ञाचक्षु महाकवि श्री रामभद्राचार्य ने अपने इस विशिष्ट महाकाव्य को सृष्टि, प्रणय, प्रीति, परितोष, प्रतीक्षा, अनुनय, प्रतिशोध, क्षमा आदि पंद्रह सर्गों में निबद्ध किया है, जिसमें ग्रंथकार ने मनोवैज्ञानिक आधार पर पंद्रह बिंबों में अपनी अवधारणाओं को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। इनमें भारतीय संस्कृति एवं वैदिक दर्शन का सकारात्मक प्रतिपादन किया गया है।

खंडकाव्य :

काका विदुर-काका विदुर 108 छंदों में निबद्ध साठ पृष्ठों का खंडकाव्य है, जिसमें

कवि की अभ्यन्तर दशा, ईश-निष्ठा तथा अपने इष्ट के शुभ दर्शन की मधुर आकांक्षा के साथ किंचित दीनता का दिग्दर्शन होता है। कवि ने इसमें सवैया, घनाक्षरी एवं दोहा छंदों का प्रयोग किया है। महाभारत के उद्योग पर्व से ली गई काका विदुर की कथा को कवि ने अपनी मौलिक उद्भावनाओं का संस्पर्श देकर भक्ति भावना पूर्ण सरस खंड-काव्य का रूप प्रदान किया है।

शबरी-इस खंडकाव्य में कवि ने वाल्मीकि रामायण (अरण्य कांड के 74वें सर्ग) तथा रामचरित मानस (अरण्य कांड दोहा 34 से दोहा 36) में वर्णित भक्तिमती शबरी के कथा-प्रसंग का आधार लेकर उसके तप, त्याग, साधना, समर्पण, विश्वास एवं नवधा भक्ति आदि का सुंदर सांगोपांग वर्णन किया है।

स्तुति एवं गीतकाव्य :

राघव गीत-गुंजन-संत कवि गोस्वामी तुलसीदास की गीतावली की भाँति यह बाल, अयोध्या, अरण्यदि सात कांडों में निबद्ध गीत काव्य है। जिसमें आचार्यश्री ने अपने परमाराध्य शिशु राघव की बाल सुलभ झाँकियों का अत्यंत स्वाभाविक एवं सजीव चित्रांकन किया है। जन्म से ही नेत्र विहीन आचार्यवर्य द्वारा इसमें प्रस्तुत शिशु राघव के अनुभावों तथा कौशल्यादि की मातृ सुलभ चेष्टाओं के मार्मिक एवं मनमोहक दृश्यों से यह आभासित होता है कि उन्हें भाव-समाधि में अपने इष्ट की लीलाओं के अभ्यन्तर दर्शन का सौभाग्य प्राप्त है, जो कदाचित् नेत्रवालों के लिए दुर्लभ ही है। इसमें ब्रजभाषा, भोजपुरी, हिंदी खड़ीबोली आदि के साथ बहुत-सी क्षेत्रीय एवं प्रादेशिक ध्वनियों तथा रीतियों का प्रयोग करते हुए गीतावली, सूरसागर एवं विद्यापति की पदावली के आधार पर गीतों का स्वाभाविक सर्जन हुआ है। महाकवि ने स्वयं अपने इस गीतिकाव्य के विषय में लिखा है-‘श्री राघव गीत गुंजन श्री राघवेंद्र सरकार के बहुआयामी व्यक्तित्व के ही अनुरूप कई भाषाओं एवं कई रीतियों में प्रणीत हुआ है।’..... ‘यद्यपि शास्त्र में वर्णित शांत, दास्य, वात्सल्य, सख्य एवं मधुर ये पाँचों उपासना के भाव इस गीति काव्य में प्रस्तुत किए गए हैं, परंतु अपनी उपासना का केंद्र वात्सल्य होने के कारण इसमें इसी रस की प्रचुरता है।’¹

भक्ति गीत-सुधा-विनय माधुरी, रूप माधुरी, राम लीला माधुरी, श्री कृष्णलीला माधुरी, झूला और होली माधुरी इन छह खंडों में कुल 468 उत्कृष्ट माधुरी गीतों का यह संकलन कवि के भगवान के प्रति शास्त्र सम्मत अंतर्भावों को पुष्ट करता है। इसमें राघव-माधव का ललित लीला विलास, आचार्यश्री के अगाध भक्ति भाव समन्वित चेतना से अनुप्राणित हैं। इसमें विनय के 13 पद तथा सर्वाधिक 182 पद रामलीला माधुरी विषयक हैं। आचार्यश्री की अपने आराध्य के प्रति प्रेम की तन्मयता इस पद में द्रष्टव्य है-

प्रेम रस न्योरा है न्यारा।

भोजन शयन कछू नहिं भावै, पर भूषन लगे भारो।

वचन शूल सम लगत श्रवन बिच, भवन लगत है कारौ।

पागल फिरे निरंतर जग में तृन सम नातो सारौ।

‘गिरधर’ बिनु यह दशा मिलत नहिं, कौसल्या के बारौ।²

ग्रंथकार के अनुसार-‘अनेक आयामों में अवलोकित श्री राघव एवं माधव की सुललित झाकियाँ ही अनायास अक्षराकार होकर भावुक भगवद्भक्त के कलकंठ-सुलभ गीत का स्वरूप लेकर भगवत्प्रेरणा से उपस्थित हुई हैं।’³

धन्या रामायण कथा—धन्या, पुण्या, रम्या, काम्या, मान्या, गुण्या एवं हृद्या नाम्नी आठ छंदों में वर्णित यह रामायण-कथा संस्कृत एवं हिंदी मिश्रित भाषा में प्रसादगुण समन्वित है। भाव एवं शब्दसंयोजन में वाल्मीकि रामायण तथा रामचरितमानस का प्रभाव दिखाई देता है।

सीताराम केलिकौमुदी—तीन सौ सत्ताईस छंदों की यह काव्यकृति तीन किरणों में संयोजित है, जिसके प्रत्येक किरण में 109 छंद हैं, जिनमें रचनाकार ने अपने आराध्य भगवान राम और भगवती सीता की बाललीलाओं का भक्तिभावपूर्ण कवित्त, घनाक्षरी, द्रुमिल, मत्तगयंद तथा चित्रदि छंदों में अतिशय सुंदर चित्रांकन किया है।

स्वामी रामभद्राचार्य जी अपनी इस रचना के विषय में कहते हैं—‘श्री सूरदासजी ने श्रीकृष्णविषयक बाललीलाओं को वत्सलरस के परिप्रेक्ष्य में बड़ी ही कुशलता से गीतबद्ध किया। गोस्वामीजी ने भी गीतावली एवं कवितावली तथा रामचरितमानस में श्रीरामविषयक बाललीलाओं को वत्सलरस की वीथिकाओं में संकीर्तन किया, परंतु कन्या विषयक वत्सलरस के वर्णन का कार्य कदाचित् इन दोनों आचार्यों ने मुझ अकिंचन के लिए छोड़ रखा और उन्हीं युगल आचार्यों की कृपा से मैंने श्रीसीतारामकेलि कौमुदी की द्वितीय किरण में पुत्री विषयक वात्सल्य रस की सुखद अनुभूति के परिप्रेक्ष्य में श्रीसीता जी की बाललीलाओं के वर्णन का प्रयास किया है।’⁴

यहाँ उनके पुत्रीविषयक वात्सल्य रस का एक उद्धरण द्रष्टव्य है—

रोवत देखि उठाए हहाई के, गोद लियो सुत रानी सुनैना।

पाई मनोनिधि जन्म दरिद्र ने, मोद भरी पुलकानि सुनैना।

आनन चूमि दुलारत बारत, कंचन मानिक खानि सुनैना।

‘गिरधर’ स्वामिनि की जननी बनि, आनंद में हरषानी सुनैना।⁵

डॉ० त्रिभुवननाथ शुक्ल के अनुसार—‘भाषा, भाव, छंद, शैली, अलंकारविधान, बिंबविधान, प्रतीक योजना और अनेक अनिर्दिष्ट प्रयोगों की दृष्टि से यह एक अपूर्व रचना बन पड़ी है।’⁶

प्रकरण ग्रंथ-मानस में तापस प्रसंग :

तीन पुष्पों एवं 94 पृष्ठों में व्याख्यायित यह ग्रंथ ‘श्रीरामचरितमानस’ के अयोध्याकांड दोहा 11 एवं 111 में आई कथा पर आधारित है। जिसमें कहा गया है—

तेहि अवसर एक तापस आवा। तेज पुंज लघु वयस सुहावा।

कवि अलिखित गति वेषु विरागी। मन क्रम वचन राम अनुरागी।⁷

ग्रंथ के निवेदन में स्वामी जी ने लिखा है—‘उक्त लेख में शास्त्रीय युक्तियों, प्रमाणों तथा मानस के गंभीर प्रसंगों की यथा स्थान सन्निविष्ट की गई है। कहीं-कहीं लेख को स्पष्ट समुपस्थापन में व्याकरण आदि शास्त्रों के सिद्धांतों का भी यथोचित उपयोग किया गया है,’⁸ जिसमें आप द्वारा आदि, मध्य और अंत में गोस्वामी तुलसीदास जी को ही तापस प्रतिपादित किया गया है।

तुलसीसाहित्य में कृष्णकथा—वस्तुतः यह स्वामी रामभद्राचार्य जी का 324 पृष्ठों में निबद्ध एक शोधग्रंथ है, जो ब्रजलीला, मथुरालीला, कुरुक्षेत्रलीला एवं द्वारिकालीला नामक चार उल्लासों में विभाजित है। अपने इस गवेषणापूर्ण प्रबंध में तुलसीसाहित्य में उपलब्ध कृष्णपक्ष पर अपना सुनियोजित विशद् विवेचन प्रस्तुत करते हुए आचार्यश्री ने यह प्रतिपादित किया है कि कृष्ण गीतावली के नवें एवं विनय पत्रिका के 93 वें पद में तथा कवितावली के उत्तरकांड में श्रीकृष्ण

को राम का ही स्वरूप माना है। वे कहते हैं—

कित मुरली कित चन्द्रिका, कित गोपिन को साथ।
अपने जन के कारनो, श्रीकृष्ण बने रघुनाथ।⁹

रासपंचाध्यायी विमर्श—श्रीमद्भागवत (दशम स्कंध, अध्याय 29 से 33) में वर्णित महारास की लीला को रासपंचाध्यायी कहा जाता है। महारास को भागवत का प्राण मानते हुए मनीषियों ने इस अपूर्व एवं गुह्य दिव्य लीला का नाना रूपों में विशद विवेचन किया है। स्वामी रामभद्राचार्य ने भी अपने विपुल वैदुष्य, गंभीर चिंतन तथा अप्रतिम व्याकरण ज्ञान के आधार पर वेद, पुराण, उपनिषद् आदि अनेक ग्रंथों का संदर्भ देकर अपने सात गवेषणात्मक निबंधों में इस पर विशद विवेचना प्रस्तुत की है, जिनमें उनके द्वारा पूर्ववर्ती विद्वानों का अनुवर्तन न करते हुए नवीन व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। तत्संबंध में ग्रंथ के पुरोवाक् में स्वामीजी ने स्वयं लिखा है—
'चौरहरण प्रसंग में मैंने यह सिद्ध किया है कि गोपियाँ निर्वस्त्र होकर यमुनाजी में स्नान नहीं कर रहीं थीं। इसी प्रकार 'अनंगवर्धनम्' 'पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य', 'उत्तंभयन् रतिपतिं' आदि संवेदनशील शब्दों की मैंने अश्रुतपूर्व नवीन किंतु शास्त्रसम्मत व्याख्या प्रस्तुत की है।'¹⁰

सनातनधर्म में विग्रह स्वरूप गौमाता—स्वामी रामभद्राचार्य जी ने अपने इस तीस पृष्ठीय निबंध में 'गावों विश्वस्य मातरः' का विभिन्न प्रकार से विवेचन करते हुए गाय को विश्व की माता सिद्ध किया है। अपनी इस गंभीर विवेचना में आचार्यश्री ने वेदों उपनिषदों, पुराणों तथा रामायण, महाभारत एवं रामचरित मानस आदि के अनेक उदाहरणों के साथ उनमें निहित अर्थ और मंतव्यों को व्याख्यायित करते हुए अपने मत को परिपुष्टता प्रदान की है। उनकी प्रतिपादन शैली विवेचनात्मक होने से सुबोध एवं सर्वग्राह्य है।

सुग्रीव की कुचाल और विभीषण की करतूत—स्वामी रामभद्राचार्य जी ने अपनी इस पुस्तक में अपने वैदुष्य, व्याकरण ज्ञान एवं तर्कशक्ति से रामचरित मानस में सुग्रीव और विभीषण के आचरण में समता दिखाकर उनके अपराध को अनदेखा किए जाने के आक्षेप का समुचित उत्तर देने का प्रयास किया है। जिसमें ग्रंथकार ने यह प्रतिपादित किया है कि भक्त की भावना से भावित होकर भगवान् भक्त के अपराध पर ध्यान नहीं देते। उनकी विवेचना उत्कृष्ट है।

प्रवचन ग्रंथ—

परम बड़भागी जटायु—सात प्रसूनों में निबद्ध 126 पृष्ठीय यह पुस्तक आचार्यश्री द्वारा जटायु के चरित्र पर दिए गए सात प्रवचनों का संकलन है। जिसमें आपने वाल्मीकि रामायण, श्रीमद्भागवत, गीतावली एवं दोहावली आदि के उद्धरणों में अंतर्निहित अर्थ को सरल-सुगम शैली में प्रस्तुत करते हुए संतकवि तुलसी द्वारा जटायु को परम बड़भागी कहने तथा उसकी मृत्यु का प्रशस्ति गायन करने में निहित मंतव्य का विशद विवेचन किया है।

'राम काज कारन तनु त्यागी। हरिपुर गयउ परम बड़ भागी।'¹¹

दोहावली के दोहा 222 से 227 तक छः दोहों में जटायु की मृत्यु का प्रशस्ति गायन हुआ है।

मुए मरत मरिहैं सकल, घरी पहर के बीच।

लही न काहू आज लौं, गीधराज सी मीच।¹²

अपने विवेचन में आचार्यश्री ने श्रीमद्भागवत् के इस श्लोक को व्याख्यायित करते हुए

अपने मत को परिपुष्टता प्रदान की है।

अकामः सर्व कामो वा पूर्णकाम उदार धीः।

तीव्रेण भक्ति योगेन यजेत् पुरुषं परम्।¹³

भरत-महिमा—यह स्वामीजी द्वारा रामचरितमानस, वाल्मीकि रामायण आदि पर आधारित भरतचरित्रविषयक नवदिवसीय प्रवचनों का संकलन है, जिसमें स्वामी जी ने 'दोड़ दिसि समुझि कहत सब लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू।' को केंद्र में रखकर मुख्यतः रामचरित मानस के अयोध्या कांड (दोहा 161 से दोहा 326) में वर्णित भरतचरित्र का सुंदर व्याख्यात्मक निरूपण किया है।

मानस में सुमित्र—यह श्रीरामचरितमानस के आधार पर लक्ष्मण की माँ सुमित्र के परम पावन जीवन चरित्र को केंद्र में रखकर आचार्यश्री द्वारा दिए गए नौ प्रवचनों का एक सौ सोलह पृष्ठीय संकलन है। जो इसमें नौ कुसुमों के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं, जिनमें स्वामीजी ने माता सुमित्रा के जीवन को विभिन्न दृष्टिकोणों से चित्रांकित करते हुए उन्हें परम धन्य बताया है। भक्ति भाव समर्पित उनकी यह सुगंधित प्रवचन माला समाज में पारिवारिक सद्भाव एवं आदर्श जीवन की प्रेरणा संप्रेषित करने में समर्थ है।

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं—यह श्रीरामचरितमानस के अयोध्या कांड की चतुष्पदी 'प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं,¹⁴ को केंद्र में रखकर भरत जी के भ्रातृ प्रेम पर आचार्यश्री द्वारा दिए गए सात प्रवचनों का 90 पृष्ठीय संकलन है। जिन्हें पुस्तक में सात पुष्पों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। स्वामी जी के यह प्रवचन वर्तमान परिवेश में इसलिए और अधिक प्रासंगिक हैं क्योंकि आज समाज में भाई-भाई के मध्य द्वेष और कटुता बढ़ती जा रही है। त्याग का स्थान स्वार्थ ने ले लिया है। स्वामी जी ने इसमें अपनी वैदुष्यपूर्ण विवेचना को यथासंभव सरल एवं सर्वबोध रखने का प्रयास किया है।

क्रियन्ह सहित फल चारि—यह 1999 में तुलसी पीठ, चित्रकूट पर आयोजित चैत्रनवरात्रिय श्री सीताराम पाटोत्सव के सुअवसर पर स्वामीजी के रामचरितमानस पर आधारित नव दिवसीय व्याख्याओं का 236 पृष्ठीय संकलन है, जिसमें उनके द्वारा 'मानस के निम्नांकित दोहा को केंद्र में रखकर भक्ति के सापेक्ष धर्म दर्शन और अध्यात्म की सुंदर विवेचना प्रस्तुत की गई है—

मुदित अवधपति सकल सुत बंधुह समेत निहारि।

जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।¹⁵

तुम पावक महँ करहु निवासा—यह पूज्य स्वामीजी द्वारा नासिक में महाकुंभ के पावन पर्व पर नव दिवसीय प्रवचन शृंखला का 196 पृष्ठीय संकलन है जिनमें आपने अपनी परांतंभरा प्रज्ञा एवं लोकोत्तर प्रतिभा से सीताजी के अग्निवास-संबंधी गूढ़ जिज्ञासाओं का समुचित समाधान प्रस्तुत करते हुए श्रीसीताराम जी के परम पावन लीला चरित्र के माध्यम से जीवन के विविध पक्षों एवं सिद्धांतों की सुंदर व्याख्या की है। आचार्य दिवाकर शर्मा के मतानुसार 'इसकी सरल, सुबोध एवं सरस भाषा जहाँ विषयवस्तु का पर्याप्त पोषण कराने के कारण सभी को आनंदित करती है, वहीं भावजगत के तलस्पर्शी पूज्यपाद जगद्गुरु जी की प्रतिपादन शैली एवं शास्त्रीय पंक्तियों में प्रच्छन्न गूढ़तम रहस्यों को उद्घाटित करने की चामत्कारिक अनुभूति भी प्रस्तुत करती

है।¹⁶

अहल्योद्धार—तुलसी पीठ, चित्रकूट में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक आयोजित रामजन्म महोत्सव के पावन अवसर पर दिनांक 5 अप्रैल 2000 से पूज्य स्वामी जी द्वारा दिए गए नव दिवसीय प्रवचन पुष्पों के इस 329 पृष्ठीय संकलन में श्रीरामचरितमानस से अहल्या-उद्धार के प्रकरण को केंद्र में रखकर भगवद्भक्ति के सभी सिद्धांतों का सम्यक् निरूपण किया गया है। इस ग्रंथ में नवीन भावों का सगुंफन, शब्दसौष्ठव और निगमागम सम्मत शास्त्रीय विवेचन के साथ भारतीय संस्कृति के उत्कृष्ट जीवनमूल्यों का प्रतिपादन दृष्टिगत होता है।

सत्यरामप्रेमी श्री दशरथ—यह स्वामीजी के अष्ट दिवसीय प्रवचन श्रृंखला का 354 पृष्ठीय संकलन है, जिसमें उनके द्वारा 'मानस' के सोरठा—

वंदउँ अवध भुआल, सत्यप्रेम जेहिं रामपद।

बिछुरत दीनदयाल, प्रिय तनु तून इव परिहरेउ।¹⁷

को केंद्र में रखकर व्याकरण के सूत्रों के आधार पर अध्यात्म के अलग मानदंडों को स्थापित करते हुए भगवद्भक्ति के अनेक सुंदर पक्षों को उद्घाटित किया है। 'मानस' की जो चतुष्पदियाँ राजा दशरथ को कामासक्त दर्शाती प्रतीत होती हैं, का स्वामीजी ने 'काकुवक्रोक्ति' के आधार पर सुंदर समाधान प्रस्तुत किया है।

वेणुगीत—महर्षि वेद व्यास द्वारा रचित श्रीमद्भागवत् के दशम स्कंध में इक्कीसवें अध्याय को 'वेणुगीत' कहा जाता है। कलेवर की दृष्टि से यह केवल बीस श्लोकों में निबद्ध छोटा-सा अध्याय है, परंतु इसका अंतरंग इतना विशाल, गंभीर और अनेक आयामों से परिपूर्ण है कि उसमें समंविता भावों का आंकलन सामान्य मनुष्य की मनीषा से परे है। वेणु गीत पर स्वामी श्रीधर से लेकर अद्यतन सैकड़ों व्याख्यान ग्रंथ, टीकाएँ एवं प्रवचन ग्रंथ आदि लिखे गए हैं। स्वामी रामभद्राचार्य द्वारा हरिद्वार महाकुंभ में वेणु गीत पर सम्पन्न हुई नवदिवसीय व्याख्यान माला का यह संकलन उसी शृंखला की एक नवीनतम कड़ी है। जिसमें स्वामीजी ने अनेक नवीन भावों का समावेश करते हुए भगवद्भक्ति विषयक रसामृत का मधुर पान कराया है।

उपर्युक्त कृतियों के अतिरिक्त कुछ अन्य लघु कृतियाँ भी आप द्वारा समय-समय पर साहित्य को प्रदान की गई हैं। इस प्रकार स्वामीजी ने अपनी उत्कृष्ट रचनाओं से हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि में महनीय योगदान दिया है। उनका साहित्य दैवीप्रेरणा से निःसृत स्वतः स्फूर्त साहित्य है, परिणामतः उसमें साहित्य के विभिन्न उपादानों का स्वतः समावेश होता चला गया है। स्वामीजी की रचनाओं की आधुनिकयुग में प्रासंगिकता, सामाजिक व सांस्कृतिक दृष्टि से उनकी उपादेयता के साथ साहित्यिक दृष्टि से समग्र मूल्यांकन हेतु शोधात्मक अध्ययन-अनुशीलन अपेक्षित है।

संदर्भ

1. श्री राघव गीतगुंजन, स्वामी रामभद्राचार्य 'अनुप्रवेश' शीर्षक प्रारंभिक अंश से
2. भक्ति गीत सुधा, जगद्गुरु स्वामी रामभद्राचार्य पृ० 28 पद 57
3. भक्ति गीतसुधा, 'वाचिक' शीर्षक प्रारंभिक अंश से
4. श्री सीतारामकेलि कौमुदी के 'प्राङ्निवेदनीय' भाग से पृ० 'घ'
5. श्री सीतारामकेलि कौमुदी, स्वामी रामभद्राचार्य द्वितीय किरण छंद 22
6. श्री सीताराम केलि कौमुदी, स्वामी रामभद्राचार्य की प्रकाशकीय से पृ० 'य'

7. श्री रामचरितमानस अयोध्याकांड 110/8
8. मानस में तापस प्रसंग, स्वामी रामभद्राचार्य, लेखकीय निवेदन अंश से
9. तुलसी साहित्य में कृष्णकथा, स्वामी रामभद्राचार्य, भूमिका से पृ० 22
10. रास पंचाध्यायी विमर्श, स्वामी रामभद्राचार्य पुरोवाक् से
11. श्रीरामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास किष्किंधा कांड 27/4
12. दोहावली, गोस्वामी तुलसीदास दोहा 224
13. श्रीमद्भागवत्, 2/3/10
14. श्रीरामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, अयोध्या कांड 316/2
15. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास 1/325
16. तुम पावक महँ करहु निवासा, स्वामी रामभद्राचार्य, 'दो शब्द' शीर्षक से
17. श्री रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास 1/16

द्वारा श्री श्रीकृष्ण शुक्ला
210 पत्ता बाग फ्रेंड्स कालोनी
इटावा (उ०प्र०)

पंडित लखमीचंद के सांगों में शृंगार-रस

डॉ० एस०के० आत्रेय

प्राचार्य, श्री कपिलमुनि महिला कॉलेज
कलायत (कैथल)

पंडित लखमीचंद ने एकरस होकर लोकजीवन का अनुभव किया था। भर्तृहरि की तरह लखमीचंद भी शृंगार-भावनाओं के अनोखे चित्रकार थे। उनके संगीतों में प्रीति, करुणा और प्रेम के भाव मोतियों की तरह अलग-अलग चमकते देखे जा सकते हैं। प्रसंग चाहे मीरा व कृष्ण प्रेम का हो, चाहे फूलसिंह और नौटंकी के लौकिक प्रेम का, चाहे इंद्र की अप्सराओं को भी मात देनेवाले पद्मावत के यौवन का हो, चाहे विरह-वेदना से व्याकुल पद्मावत के प्रेमी रणवीर की भावनाओं का, चाहे ऋषियों का मन मोह लेनेवाली मेनका का अथवा युवा हृदयों में सदियों तक निवास करनेवाली हीर-रांझा की गहरी प्रेमासक्ति का हो, लखमीचंद प्रेम की भावनाओं के चतुर चितरे थे।

लखमीचंद ने प्रेमियों के प्रेमालाप, उनके यौवन तथा नख-सिख-सौंदर्य, प्रेमानुभूति, सौंदर्यानुभूति तथा प्रकृति और प्रेम की समरसता का चित्रण बड़ी बारीकी के साथ अपने सांगों में किया। प्रेम और विरह का जैसा अनुभूतिमूलक चित्रण लखमीचंद में मिलता है, वैसा उनके समकालीन और पहले के संगीतकारों में कम ही देखने में आया है। लखमीचंद की ख्याति और लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण था, उनके द्वारा शृंगाररस से भरपूर रागनियों की रचना, गायनशैली और उन रचनाओं का सरस नृत्य के द्वारा अभिनय। उनकी रागनियों की भाव-संपदा ही सरस और कोमल नहीं थी, बल्कि उनका गायन भी बहुत मधुर था।

भावना और मधुर कंठ को प्रत्यक्ष करनेवाली शृंगारपूर्ण नृत्यशैली भी बड़ी मनोरम थी। इस दृष्टि से लखमीचंद के सांगों में शृंगार को उसी तरह माना जाता है, जिसतरह बिहारी को हिंदी में याद किया जाता है।

उनके सांगों की विषयवस्तु का प्रत्यक्ष संबंध प्रेम, विरह और शृंगार से है—

1. नौटंकी—इस सांग में नौटंकी के प्रेम संबंधों तथा बलिदान भावना का सुंदर चित्रण हुआ है। इस सांग का समूचा परिवेश मध्यकाल के रोमांस काव्यों से मिलता-जुलता है।

2. पद्मावत—इस संगीत में राजकुमार रणवीर के आखेट, जनानेबाग का सौंदर्य, पद्मावत और उसकी सहेलियों के अनुपम सौंदर्य-गगन मंडल में चंद्रमा के समान रणवीर और पद्मावत के प्रेम संकेतों तथा स्वप्न में पद्मावत से मिलन और प्रेम का गहरा चित्रण मिलता है। इस सांगीत की पृष्ठभूमि भी मध्यकाल के रोमांसों से मिलती-जुलती है।

3. हीररांझा—इस सांगीत में ग्रामीण परिवेश के सच्चे, निष्कपट व भोले प्रेम का चित्रण किया गया है। युग के बंधनों और प्रेमियों के अतुल संघर्ष की झलकी भी यहाँ मिलती है।

वेश-परिवर्तन के द्वारा अपनी प्रेमिका की प्राप्ति और अंत में दोनों के मिलन की कथा पंजाब में प्रचलित इस रोमांस से समानता रखती है।

4. चंद्रकिरण—इस सांगीत से सिंहल द्वीप की सुंदरियों, उनके नख-शिख चित्र दर्शन द्वारा राजकुमार मदनसेन का चंद्रकिरण के प्रेम में बेसुध होना और उनकी खोज में घर से निकलने का वर्णन है। साधुओं के धूने के द्वारा राजकुमारी के महल तक पहुँचने और उनकी कैद-संबंधी बातें हैं।

5. शकुंतला—इसमें विश्वामित्र और मेनका से उत्पन्न बालिका शकुंतला और राजा दुष्यंत के प्रेम का चित्रण है। कालिदास के शकुंतला नाटक से मिलती-जुलती कन्या यहाँ मिलती है।

6. राजा-भोज—राजा भोज संगीत में शरणदे के वश में किए जाने की घटना का सुंदर चित्रण किया जाता है।

जयमल, गोपीचंद भरथरी, नल-दमयंती, सेठ ताराचंद, मीराबाई आदि सांगों में भी प्रेमानुभूति के पवित्र छोटें मिलते हैं। जिस प्रकार कालिदास ने दुष्यंत और शकुंतला, जयदेव ने राधा और कृष्ण, जायसी ने पद्मावत और रत्नसेन आदि का प्रेम-वर्णन किया है, उसी प्रकार लखमीचंद ने भी अपने नायक-नायिकाओं के सौंदर्य और सच्चे प्रेम का चित्रण बड़ी कुशलता, सूक्ष्मता और पवित्रता के साथ किया है। लखमीचंद की प्रेम-चित्रण शैली में लोकमानस की झलक सर्वत्र देखने में आई है। इनके प्रेम में लोककथा, लोकविश्वास, लौकिक परिवेश और भावनाओं का खुलापन मिलता है। उनके शृंगार में ईमानदारी, मनोरम कल्पना तथा सांकेतिकता और प्रेमतत्त्व की स्थूलता मिलती है। शृंगार का चित्रण अधिकांशतः लौकिक और स्वच्छंद रूप में मिलता है। कहीं-कहीं दोहरे अर्थों के कारण अश्लीलता भी अपने चरम रूप में मिलती है।

लखमीचंद से पहले दीपचंद, हरदेवा और बाजे भगत जैसे सुप्रसिद्ध सांगियों ने प्रेम-प्रसंगों के अभिनय में यौवन, शृंगार और प्रेम की अभिव्यक्ति अधिक मात्रा में नहीं की थी। इनमें शृंगार रस का दबा-दबा सा प्रयोग मिलता है। सांकेतिक और मर्यादित रूप से अधिक मुखरित हुआ है। किंतु लखमीचंद ने शृंगारपूर्ण रचनाएँ खुले रूप में की। उन्होंने हरियाणवी युवकों की माँग को समझा और शृंगाररस का स्वच्छंदता से परिपूर्ण चित्रण अपने सांगों में किया। उनकी शृंगार-रस की रागनियाँ इतनी मोहक थीं पर रूढ़िवादी समाज ने एक ओर तो उनकी कला और काव्यसौंदर्य के मर्म को नहीं पहचाना और उन पर तीखे प्रहार किए तथा कड़ी आलोचना के डंडे बरसाए। दूसरी ओर रसिक लोगों और युवकों का ऐसा मंडल मिला, जो रातों-रात गाँव से पैदल, रथ-मञ्जोली, बैल गाड़ियों और घोड़ियों पर सवार होकर दस-बीस मील की दूरी से आता था और गंभीर कला प्रेमियों की तरह नींद और थकान को भूलकर सारी-सारी रात उनकी मधुर रागनियों का स्वाद लेता था और अगले दिन खेतों में काम करता था। महिलाएँ भी काफी संख्या में उनका सांग देखती थीं और खुश होकर वस्त्राभूषण के रूप में उन्हें उपहार देती थीं।

लखमीचंद ने रागनियों में प्रेमी और प्रेमिकाओं की भावनाओं को इतने सुंदर और मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रकट किया है कि हरियाणा के युवक लखमीचंद के सांगों पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहते थे। 'नौटंकी' के सांग को लखमीचंद ने रौंगटे खड़े करने वाले नाट्य का स्वरूप दिया। नौटंकी शृंगाररस से परिपूर्ण और लखमीचंद के यौवन की बहुत ही महत्त्वपूर्ण रचना है। फूलसिंह अपनी प्रेयसी नौटंकी को मिलने के प्रयत्न में अपने हाथों से फूलों का हार बनाकर,

मालिन को हार सौंपकर नौटंकी के लिए अपने उद्गार इस प्रकार प्रकट करता है—

मैं आया था आड़ै ठहरण खातर,
माणस, मारणी बैरण खातर
नौटंकी के पहरण खातर
हार बाण्या बड़े जोर का
हार मैं ला दिए फूल हजारी
लड़ी गेल्यां एक-एक मणीन्यारी,
दिल की प्यारी पहन के चाल्लै
दो नैना मैं स्याही घाल्लै,
लंबी नाडू लचकती चाल्लै
हिलै ज्यूँ गरदन मोर की।

माणस मारणी बैरण की उपमा बड़े तीव्र और प्रबल उद्गार की परिचायक है। इसका अर्थ है ऐसा सौंदर्य जो बिजली की भाँति दर्शक पर प्रभाव डाले। फूलसिंह का प्रेमहृदय राजकुमारी से मिलने के लिए अत्यंत व्याकुल हो उठता है। बहुत प्रयत्न करने के बाद नारी वेष में फूलसिंह अपनी प्यारी नौटंकी से मिलने चला। उस समय मिलन अथवा संयोग—शृंगार का वर्णन दर्शनीय है—

छन-छन, छन-छन करती चाल्लै
चाल्लै चाल छबीली
लचक दो-तीन पड़ै मुड़ तुड़ कै
काया कर ले ढील्ली
होट्टों पै पान्नां की लाली
मिट्टे बोल रसीली
चंद्रमा-सा चेहरा दमकै
चमकै आँख कंटील्ली
आनंद होण लगे काया मैं,
ज्यब हाथ मिल्ले हाथां मैं
मिसरी की सी डली धुलण लागी
आपस की बातां मैं

नायिका नौटंकी की चाल छबीली है। उसके लचीले वदन में तीन भंगिमाएँ पड़ती हैं। होंठों पर पानी की लाली और वाणी की मधुरता के साथ उसका मख चाँद की तरह चमकता है। पता नहीं विधाता ने किस प्रकार ऐसे दिव्य सौंदर्य की सृष्टि की है। मिसरी की डली के मुँह में घुलने की उपमा बातचीत (संवाद) के आनंद से दी गई है। इस रागनी में शब्द-सौंदर्य भाव-सौंदर्य और अनुभूति-सौंदर्य तीनों का बड़ा ही कलात्मक मिश्रण है।

इसी प्रकार पद्मावती के संगीत में लखमीचंद ने पद्मावली और उनकी सखियों का नख-शिख वर्णन किया है, जो बहुत ही सुंदर बन पड़ा है। लोककवि की सौंदर्यानुभूति सौंदर्य-चित्रण दृष्टव्य है—

सिर पर चोटी लगा बोरला, साज और डॉड्डे बाली
आख्या स्याही मस्तक बिंदी, जुल्फ नाग-सी काली
सिर के ऊपर चीर हजारी ज्यूँ मद जोब्बन की पाली,
घूर चलण दयों हूरां आली, पड़ै तबाही नर पै।

उपर्युक्त सौंदर्य वस्तुतः उस ग्रामीण परिवेश का है, जिसे लखमीचंद ने बड़े चाव-भाव से राजकुमारी के रूप में प्रस्तुत किया है। अन्यत्र पद्मावती के सौंदर्य का चित्रण बहुत ही प्रभावशाली ढंग से किया है, जिससे दर्शक अचानक चुंधिया जाता है—

हूर का गोरा बदन मुलायम
रूप जणूं बंबा सूरज का फूट्या

इसमें पद्मावती के गोरे रंग तथा कोमल मुख की उपमा बालरवि (सूर्य) के फूटते बिंबा से दी गई है। उसके रूप से दर्शक लगभग जगमगाने लगता है। कहीं कवि ने पद्मावती के यौवन को चमेली के खिले फूल-सा सुगंधित कहा है तो कहीं उसके रंग को पके हुए अंगूर की मोतिया झलक-सा चित्रित किया है। भला रवि-शशि के सौंदर्य से मंडित सोलह वर्ष की ऐसी प्रेम की पुतली पद्मावती के कटाक्ष को सहने की शक्ति किसमें हो सकती है? ऐसे सौंदर्य की गंध और रंग का चित्रण लखमीचंद के शब्दों में बड़ा अनुपम बन पड़ा है—

कद भौरा लेगा खसबोई यों रुत, पै फूल चमेली
रंग न कमती पके अंगूर तं मै मारया गय्या दूर तै।

वस्तुतः यह सौंदर्य-चित्रण अवधी के महाकवि जायसी की सांकेतिक वर्णनशैली से मिलता-जुलता है। जायसी और लखमीचंद दोनों के सौंदर्य प्रेम और विरह के चित्रण में अद्भुत समानता मिलती है। इसका कारण यह है कि दोनों ने नारी-सौंदर्य का चित्रण प्राकृतिक सौंदर्य के माध्यम से किया है। दोनों के सौंदर्य-चित्रण में भावों की कोमलता और मर्मस्पर्शिता देखने को मिलती है। दोनों का सौंदर्य गतिशील सौंदर्य है। दोनों ने सौंदर्य के तीक्ष्ण प्रभाव का चित्रण किया है। दोनों की यह धारणा है कि सौंदर्य वर्णन करने की वस्तु नहीं है। सारांश यह है कि इन कवियों की कला में चित्र संगीत और नृत्य आदि कलाओं का पूरा-पूरा उपयोग हुआ है। सौंदर्य की संक्षिप्त झलक देने में भी इन कवियों से कोई होड़ नहीं ले सकता। उदाहरण के रूप में—

मोती बाल-बाल मैं गर्दन मोर की चाल मैं
जैसे नरि हिलोरे ले रहया ताल मैं।

निष्कर्षतः यह कहना उपयुक्त होगा कि नायिका के नख-शिख वर्णन में कवि द्वारा उत्प्रेक्षाओं के सौंदर्य और उपमाओं की लड़ी सी गूँथ दी जाती है। लखमीचंद के सौंदर्य और प्रेम में लौकिकता का भी एक सोपान है। कवि ने इसे आध्यात्मिक सौंदर्य, ईश्वरप्रेम, गुरुभक्ति और पवित्र कर्म सौंदर्य से स्थान-स्थान पर जोड़ दिया है। लगभग हर एक रागनी का अंत लौकिक सौंदर्य के उदात्तीकरण में होता है। क्योंकि कवि का यह मत है कि ईश्वरभक्ति, गुरुकृपा और नैतिक व्यवहार के बिना कोई व्यक्ति लौकिक सौंदर्य की प्राप्ति और उसका सम्यक् रीति से उपयोग नहीं कर सकता। प्रेम और सौंदर्य के भाव दिव्य और अलौकिक भाव हैं। कवि का ऐसा मन्तव्य रहा है।

जैनैन्द्र के संदर्भ में चिंतन और सृजन की समीक्षा

मंजूबाला शोधछात्रा

डॉ० शिवचरण शर्मा (निदेशक)

ऐसोसिएट प्रोफेसर

राजकीय नेशनल महाविद्यालय, सिरसा

हिंदी साहित्य में जैनैन्द्र का आविर्भाव कथाकार के रूप में हुआ। 'परख' तथा 'सुनीता' के प्रकाशन से प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों में जैनैन्द्र विशेष महत्त्व के अधिकारी बन गए थे तथा पत्रिकाओं में प्रकाशित उनकी आरंभिक कहानियाँ भी ध्यानाकर्षित करने लगी थीं। डॉ० प्रभाकर माचवे द्वारा संपादित 'जैनैन्द्र के विचार' पुस्तक से उनका निबंधकार व्यक्तित्व भी प्रकाश में आया तथा चिंतक एवं दार्शनिक के रूप में भी जैनैन्द्र की चर्चा होने लगी। आज हिंदी साहित्य में जैनैन्द्र को दोनों ही क्षेत्रों में समान महत्त्व एवं प्रतिष्ठा प्राप्त है। एक ओर जहाँ उनके ग्यारह मौलिक उपन्यास (परख, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, सुखदा, विवर्त, व्यतीत, जयवर्धन, मुक्तिबोध, अनंतर तथा अनामस्वामी तथा 'जैनैन्द्र की कहानियाँ' शीर्षक से दस भागों में शताधिक कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। वहीं दूसरी ओर निबंधों एवं प्रश्नोत्तर-शैली में अनेक विचार-पुस्तकें (मंथन, सोच-विचार, पूर्वोदय, प्रस्तुत प्रश्न, प्रश्न और प्रश्न, राष्ट्र और राज्य, साहित्य का श्रेय और प्रेय, काम, प्रेम और परिवार, वृत्त-विहार-दो भागों में, इतस्ततः, परिप्रेक्ष, समय और हम, समय, समस्या और सिद्धांत, कहानी: अनुभव और शिल्प आदि) उपलब्ध हैं। निबंधों एवं प्रश्नोत्तरों में से उभरकर आया उनका चिंतक एवं विचारक रूप उनके समस्त साहित्य का साहित्य निष्प्रयोजन नहीं हो सकता-इसमें दो मत नहीं हो सकते।' इस संदर्भ में जैनैन्द्र का दृष्टिकोण विचारणीय है।

जैनैन्द्र प्रयोजन और उपयोगिता को प्राथमिक महत्त्व नहीं देते- 'साहित्य को, कला को, धर्म को, ईश्वर को-सब कुछ को प्रयोजन में जानने की चेष्टा निष्फल है। यह नहीं कि वे निष्प्रयोजन हैं, पर आशय यह कि उन सत्यों की सचाई प्रयोजनातीत है।'² विश्व को प्रयोजन की माप से मापकर सत्य को पाना संभव नहीं। इसी चिंतना के कारण जीवन में उपयोगितान्वेषियों के प्रति अपने आक्रोश को प्रकट करते हुए जैनैन्द्र लिखते हैं- 'दिल्ली नगर में बच्चों के लिए दूध की जरूरत है और सावन में ये बादल फिर भी पानी ही बरसाते हैं। आकाश सूना खड़ा है, क्यों नहीं गुच्छे-के-गुच्छे अंगूर टपका देता है। हमें जरूरत अंगूरों की है और आकाश निरुपयोगी भाव से बेहयाई के साथ कोरा-का-कोरा खड़ा है। ये बादल और आसमान दोनों निकम्मे हैं। उनसे कोई वास्ता मत रखो। ...हमको पैसे की सख्त जरूरत है, रोटी की बेहद भूख है। और इन सब चीजों से न रोटी मिलती है न कौड़ी हाथ आती है। वे अनुपयोगी हैं। मत देखो उनकी तरफ़। इनकार कर दो उन्हें। उनसे समाज का क्या लाभ?...तो ऐसी पुकार, कहना होगा कि निरी बौखलाहट है।

वह उपयोगिता की भयंकर अनुपयोगिता है।³ जीवन में उपयोगिता के प्रति ऐसे दृष्टिकोण वाले जैनेंद्र कला के संदर्भ में भी इससे भिन्न नहीं हैं, 'मस्तिष्क उसका उद्देश्य ढूँढ़ने और पकड़ने में ही उलझा जाता है, उधर व्यक्ति को कुछ क्षण की तन्यमता—एक आनंद, रस, एक शक्ति, एक प्रकार की आत्मानुभूति प्राप्त हो चुकी होती है। जो तीर की तरह अंत तक जा लगे, बुद्धि के पटल और जाल को भेदकर मर्म में घुस जाए, और हलचल उपस्थित कर दे, वह-विद्वान चाहे कितना ही उसे पहली कहें, विद्वता उसका मतलब समझने में कितनी ही अकृत-कार्य रहे और वहाँ उद्देश्य का कितना ही अभाव दीखे—वह सच्ची चीज़ है, उपादेय है, और वह जीने और जिलाने के लिए आयी है। वह कला है। अर्थ अर्थी जगत् अपनी उद्देश्यपूर्णता की परिभाषा के घेरे में उसकी उपयोगिता को न बांध पाये, इसमें अचरज नहीं। प्रत्युत यह तो बिल्कुल स्वाभाविक और संभवनीय है। पर इससे जगत् को चिढ़ना न चाहिए, न हठात् उस कला को निर्वासित और संकुचित करने की कोशिश करनी चाहिए। इससे उसकी उपयोगिता न कम वेगवती होती है, न कम मूल्यवती, और न ही कम आदरणीय।'⁴

इन उक्तियों के आधार पर यह धारणा बना लेना भ्रामक होगा कि जैनेंद्र के लेखन के पीछे कोई निश्चित प्रयोजन नहीं है तथा उससे किसी विशिष्ट जीवन-दर्शन, जीवन के मानक तत्त्वों, युग-बोध अथवा युग-धर्म की आशा नहीं की जा सकती। जैनेंद्र की अनेक ऐसी उक्तियाँ उपलब्ध होती हैं, जो सर्वथा भिन्न विचारधारा को सामने लाती हैं।⁵ जैनेंद्र के प्रथम उपन्यास 'परख' के 'लेखक के कुछ शब्द' की प्रस्तुत पंक्तियाँ इस तथ्य पर प्रकाश डालती हैं : 'वह उपन्यास किसी काम का नहीं जो इतिहास की तरह घटनाओं का बखान कर जाता है। काम से मतलब वह दुनिया को आगे बढ़ाने और बढ़ने में ज़रा मदद नहीं देता क्योंकि न वह इतिहास होता है, न उपन्यास ही।' इसी संदर्भ को आगे बढ़ाते हुए जैनेंद्र अपने मन्तव्य को और स्पष्ट करते हैं : 'उपन्यास का काम है, कुछ आगे की-भविष्य की संभावनाओं की जरा झाँकी दिखाना। और जो कुछ अब है, उसकी तह हमारे सामने खोलकर रख देना। उपन्यास एक नए अजीब ही ढंग से रंगे और उपादेय जीवन का चित्र हमारे सामने रखता है। जीवन के साधारण कृत्य और उलझी गुत्थियों को सुलझाकर और खोल-खोलकर रख देना। उपन्यास, इस तरह, सत्य में स्वप्न की पुट देकर वास्तव में कल्पना मिलाकर, व्यवहार से आदर्श का साम्य और सामंजस्य स्थापित कर और वर्तमान पर भविष्य का रंग चढ़ाकर जीवन का वह रूप पेश करता है, जो जीवन से मिलता-जुलता है, फिर भी अनोखा है, जिससे मनोरंजन भी प्राप्त होता है और शिक्षा भी और जिससे हठात् एक नयी चीज़ हृदय में पैठ जाती है और हम ज़रा आगे बढ़ जाते हैं।'⁶

ऐसी परस्पर-विरोधी उक्तियाँ किसी निष्कर्ष पर सहज ही नहीं पहुँचा सकतीं। उपन्यास की उपर्युक्त व्याख्या देने वाला उपन्यासकार स्वयं ही अन्यत्र स्पष्ट कह देता है : 'मेरा काम बताना नहीं है। लेखक का यह काम होता भी नहीं है। उपदेशक दूसरे जन होते हैं। वे पुरुष अधिक गंभीर और समर्थ होते हैं। लेखक असमर्थ होता है, या कि होना चाहिए। असमर्थ का आशय कि नेतृत्व नहीं ले सकता। वह चलाता नहीं है, मानो चलना चाहता है। साधु के भी साथ, दुष्ट के भी साथ। कोई उसका अपना अलग मार्ग नहीं है कि सच्चा मानने की वजह से उस पर सबको चलाना चाहे। ...नहीं लेखक वह प्राणी नहीं है। मैं तो हूँ ही नहीं।'⁶

जैनेंद्र अपने सृजन का प्रयोजन लोकहित न मानकर 'स्वांतःसुख' को ही स्वीकार करते

हैं तथा पाठक के लिए 'शिक्षण' अथवा 'उपदेश' के दायित्व से उसे मुक्त कर देते हैं किंतु साहित्य को निष्प्रयोजन मानने का आग्रह उनका नहीं है। 'कला कला के लिए' अथवा 'कला जीवन के लिए' इन दो वादों में से किसी एक वाद-विशेष का पक्ष न लेकर वे 'कला ईश्वर के लिए' की स्थापना करते हैं। कला का उद्देश्य आत्माभिव्यक्ति मानते हुए वह यह भी स्पष्ट करते हैं कि कलाकार का लक्ष्य ईश्वर अर्थात् सत्य की प्रतिष्ठा करना है। सत्य की प्रतिष्ठा के लिए साहित्य-सृजन करनेवाला साहित्यकार अपने प्रति सच्चा रहकर जब साहित्य-सृजन करता है तो उसका साहित्य स्वयं ही लोकमंगल की भावना से संलग्न हो जाता है। लेखक आत्मदान करता है, किंतु उसी से वह पाठक में सहानुभूति उत्पन्न करता है तथा उसी के बल पर वह पाठक को अपने मार्ग पर ले चलने में समर्थ होता है।

जैनेंद्र की उपर्युक्त मान्यताओं के आलोक में स्पष्ट हो जाता है कि वह साहित्य को निष्प्रयोजन नहीं मानते। इसी कारण परंपरा से चली आयी रसवादी दृष्टि उन्हें इष्ट नहीं है। 'विचार' से स्वतंत्र भावानुभूति किसी साहित्यिक कृति को श्रेष्ठ नहीं बना सकती। रसमय साहित्य को विचार ही अर्थ-गरिमा से मंडित करता है। इस दृष्टि से समस्त सृजन के मूल में चिंतन का महत्त्व जैनेंद्र भी स्वीकार करते हैं।

जैनेंद्र का साहित्य, साहित्य में चिंतन अथवा विचार के महत्त्व को प्रतिपादित करने का अत्यंत स्पष्ट उदाहरण है। उनका कथा-साहित्य विचार-प्रतिपादन के लिए रचा गया है। पाठक पर भी उसका प्रभाव विचारोत्तेजन का ही होता है। उनके सभी उपन्यासों तथा कहानियों में प्रमुख लक्ष्य विचार विशेष का संप्रेषण है। कथा इस प्रकार बुनी जाती है, पात्र इस प्रकार निर्मित होते हैं कि विचार पाठक तक प्रत्यक्ष रूप में प्रेषित हों। कथासाहित्य के अतिरिक्त निबंधों एवं प्रश्नोत्तर ग्रंथों के माध्यम से भी वे अपने विचारों को ही अभिव्यक्ति देते हैं, जहाँ वह सीधे पाठक तक अपनी बात पहुँचा सकें बीच में कथा अथवा पात्रों तक का व्यवधान न हो।

जैनेंद्र की यह विचारकता एक ओर तो उन्हें हिंदी के अन्य कथा-लेखकों से भिन्न चिंतक-सर्जक की कोटि में प्रतिष्ठित करती है, किंतु दूसरी ओर आलोचकों को यह विचारकता ही उनके सर्जक को भारी क्षति पहुँचाती प्रतीत है।' इस विचारकता के कारण जैनेंद्र हिंदी साहित्य में चिंतक के रूप में भी जाने जाते हैं तथा अनेक आलोचक उनके इस रूप को कथाकार से अधिक महत्त्व देते हैं।⁸

जैनेंद्र ने अपनी रचनाओं के सृजन के संबंध में विस्तार से लिखते हुए बताया है कि उनकी रचनाएँ उनके चिंतन, आंतरिक मंथन में से उदित होती हैं। उनकी रचनाओं का आरंभ किसी एक विचार से होता है, जिसको वे अपने अनुभव एवं कल्पना के आधार पर साकार करते हैं। जीवन के प्रति दृष्टि भी जैनेंद्र तत्त्व-मंथन से ही प्राप्त करते हैं, प्रत्यक्ष अनुभव से नहीं। विचार-बीज से रचना के उदय की अनेक घटनाएँ जैनेंद्रजी ने अपने संस्मरणों में वर्णित की हैं। इन संस्मरणों से स्पष्ट है कि उनकी रचनाओं का उदय ही नहीं, उनमें प्राण-प्रतिष्ठा का कार्य भी उनका वैचारिक मंथन करता है।

उनके विचार-साहित्य की सृजन-प्रक्रिया भी पर्याप्त विशिष्ट है। वे अपने रचनाकाल के आरंभ से ही प्रश्नकर्ताओं की खोज में रहे हैं। वे प्रश्नों को, चाहे वे उनके अपने मन से उठें या बाहर प्रश्नकर्ता की ओर से आएँ, टालते नहीं वरन् उन्हें सहर्ष आमंत्रण देते हैं। प्रश्नों के सहारे

वे अपनी दृष्टि और अनुभूति का मंथन करने उन प्रश्नों के उत्तर देते हैं। बाद में ये प्रश्नोत्तर पुस्तकाकार प्रकाशित होते हैं। प्रश्नों से उलझने में जैनेंद्र को वास्तविक आनंद की प्राप्ति होती है। तात्त्विक चर्चा में उलझने को वे विशेष उत्कंठित रहते हैं। उनके व्यक्तित्व एवं स्वभाव की इन्हीं विशेषताओं से उन्हें चिंतक का ऐसा पद प्राप्त हुआ है, जिसके आसन पर बैठकर वे जीवन और जगत के विभिन्न क्षेत्रों के प्रश्नों के उत्तर देते आचार्य-से प्रतीत होते हैं। किंतु यहाँ यह स्पष्ट कर लेना अत्यंत आवश्यक है कि चिंतन की इस प्रवृत्ति के कारण उन्हें साहित्येतर क्षेत्र का व्यक्ति मान लेना भूल होगी।

संदर्भ

1. (क) 'जैनेंद्र का उद्देश्य कला की निरुद्देश्यता नहीं हो सकता। उनके लिए कला एक विशिष्ट प्रेष्य अर्थ की माध्यम है।' विचार और विश्लेषण, डॉ० नगेंद्र, पृ० 152
(ख) 'वे अकसर बिना प्रयोजन के नहीं लिखते। परंतु प्रयोजन उनके स्वानंद का सहोदर है।' समय और हम, प्रशस्ति, दादा धर्माधिकारी।²
2. मंथन, पृ० 35³
3. वही, पृ० 39⁴
4. मंथन, पृ० 4-5⁵
5. (क) 'पुस्तक में मैंने कहानी कोई लंबी-चौड़ी नहीं कही है। कहानी सुनाना मेरा उद्देश्य ही नहीं है।' सुनीता, प्रस्तावना, पृ० 3
(ख) 'दिल बस्तगी की कहानी चाहिए तो हटिए मुझे न सताइए।' सोच-विचार, पृ० 46
6. इतस्ततः, पृ० 99⁷
7. 'सर्जनशील लेखक के रूप में जैनेंद्र पिछले वर्षों में अधिकाधिक चुकते गये हैं और उनका नीतिकार और उपदेशक का रूप ही अधिक उभरकर सामने आता गया है।' अधूरे साक्षात्कार, नेमिचंद्र जैन, पृ० 103
8. 'जैनेंद्र का विचारक रूप उनके कथाकार रूप से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। वरन् वही उनका सत्य यथार्थ रूप है', समय और हम, उपोद्घात (वीरेंद्रकुमार गुप्त), पृ० 6

602 हुड्डा कालोनी
सिरसा (हरियाणा)
मो० 098130 34228

जैनेंद्र के कथासाहित्य का शैल्पिक सौष्ठव

मंजूबाला शोधछात्रा

डॉ० शिवचरण शर्मा (निदेशक)

ऐसोसिएट प्रोफेसर

राजकीय नेशनल महाविद्यालय, सिरसा

शैली को 'रीति' से भिन्न साहित्यकार के व्यक्तित्व से जोड़ देने के पश्चात व्यक्तित्व तथा शैली में विरोधी तत्त्वों की अवधारणा की स्वीकृति कठिन हो जाती है,¹ अतः व्यक्तित्व की ऋजुता के होने पर कृतित्व की जटिलता तथा व्यक्तित्व के जटिल होने पर भी कृतित्व की सरलता संभव नहीं है। डॉ० वर्मा ने भाषा एवं विचारों की जटिलता को स्वीकार करते हुए भी व्यक्तित्व में भीतर और बाहर सरलता एवं स्वाभाविकता की चर्चा की है। संभवतः डॉ० वर्मा की उक्ति में व्यक्तित्व का विश्लेषण जैनेंद्र के साथ उनके निजी परिचय के आधार पर किया गया है, उनके कृतित्व में व्यक्त व्यक्तित्व के आधार पर नहीं। अज्ञेय को जैनेंद्र की निजी प्रकृति उलझावपूर्ण तथा लेखन जटिल प्रतीत हुआ है, किंतु फिर भी एक सरलता उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व में अनिवार्यतः विद्यमान है, जिसे अज्ञेय ने सतही सरलता कहा है तथा जटिलता एवं उलझाव को छिपाए रखने के लिए आवरण माना है। वस्तुतः जैनेंद्र का प्रतिपाद्य अस्पष्टता के कारण अत्यंत दुरूह एवं जटिल है, किंतु शैली की ऋजुता जैनेंद्र की वह शक्ति है, जो उनके चिंतन को भी इतना आकर्षक बना देती है कि पाठक उसमें प्रवेश करने में ही नहीं, उलझते चले जाने में भी सम्मोहन का अनुभव करता है

अज्ञेय जैनेंद्र की शैली की प्रायः स्वीकृत सरलता को भी सतही मानते हैं, 'मैं कहूँ कि उनके आख्यान साहित्य का उपन्यास और कहानी का-शिल्प भी इस प्रवृत्ति और इस परिस्थिति का उदाहरण है। उसमें भी अनिवार्यतया एक सतही ऋजुता है और सतह के नीचे अनेक बारीकियों का उलझाव। जैनेंद्रजी अपने लेखन में अथवा प्रश्नोत्तर में, बराबर इससे इनकार करते हैं और कहते हैं कि वे शिल्प के बारे में जानते ही नहीं, सतर्क शिल्पी होने की बात तो दूर। लेकिन सचाई यह है कि आज के हिंदी आख्यानकारों और विशेषतया कहानीकारों में सबसे अधिक 'टेक्नीकल' वही हैं। टेक्नीक उनकी प्रत्येक कहानी की और (पहले उपन्यास को एक सीमा तक अपवाद मानकर) सभी उपन्यासों की आधारशिला है।'²

अज्ञेय ने जैनेंद्र के कथासाहित्य के शिल्प की चर्चा की है, चिंतनपरक साहित्य की शैली के विषय में वे मौन हैं। इस संदर्भ में डा० विजयेंद्र स्नातक ने पर्याप्त मुखर होकर कहा है, 'प्रश्नकर्ता के मन में मूल प्रश्न एक रहता है किंतु समाधाता जैनेंद्र उसे शाखा-प्रशाखा में फैलाकर पूरा वट-वृक्ष बना देते हैं। उत्तर की ऐसी विदग्ध विचक्षण शैली अन्यत्र दुर्लभ है।'³ तथा, 'प्रश्न

को सुलझाने की शैली भी जैनेंद्र की सर्वथा मौलिक है। वे उलझन से विचलित नहीं होते, उलझन के पेच वे स्वयं पैदा करते हैं, उनमें फंसते निकलते हैं। यह सुलझाने की उनकी स्वाभाविक प्रक्रिया बन गई है।⁴

जैनेंद्र के शिल्प की सायासता अथवा अनायासता के संबंध में आलोचक एकमत नहीं हैं। जैनेंद्र के साहित्य में शिल्प के प्रति सायास होने का कोई स्पष्ट संकेत संभवतः पाठक को नहीं मिलता, यही कारण है कि इतना सहज प्रतीत होता है, परंतु सर्वथा सहज वह नहीं है।⁵

डॉ० रामचरण महेंद्र ने जैनेंद्र को शिल्प-विधान के प्रति सर्वथा उदासीन मानकर उसके कारणों की भी खोज की है, 'अपनी चिंतनशील भावुकता के कारण ही जैनेंद्र जनसाधारण तक उतने व्यापक रूप में नहीं पहुँच पाए, जितने कि प्रेमचंद्र। विचार-प्रधानता के कारण जैनेंद्र किसी शिल्पविधान की चिंता नहीं कर सके, पर उनकी शिल्पहीनता ही उनकी कहानियों की सबसे बड़ी कला है। मनोरंजन नहीं, विचारों का उत्प्रेरण ही उनका सबसे बड़ा लक्ष्य है।'⁶

विचारप्रधानता को जैनेंद्र के व्यक्तित्व, चिंतन अथवा साहित्य में अस्पष्टता एवं उलझाव का कारण मानना संगत नहीं कहा जा सकता। कथासाहित्य में ही नहीं, जैनेंद्र के निबंधों अथवा प्रश्नोत्तर-ग्रंथों में भी अस्पष्टता की समस्या सामने आती है। जैनेंद्र जीवन के चिंतन प्रश्नों में रुचि लेते हैं, उनका विश्लेषण तथा समाधान प्रस्तुत करते हैं, परंतु पाठक की दृष्टि में जीवन जटिल से जटिलतर होता जाता है। जैनेंद्र के 'समय और हम' में प्रस्तुत, अहं संबंधी विवेचन के संदर्भ में डा० विजयेंद्र स्नातक ने इसी अस्पष्टता एवं दुर्बोधता का उल्लेख करते हुए लिखा है, 'परिभाषा के अभाव में स्वरूपबोध सामान्य पाठक के लिए नितांत दुर्बोध हो गया है। दो सौ पृष्ठों में जो कहा गया है, उसे प्रारंभ में दो पंक्ति और दो पृष्ठों में अवश्य कहना चाहिए था।' श्री रामचंद्र तिवारी इसे जैनेंद्र में चिंतन की तेजस्विता का अभाव मानते हैं। 'समय और हम' में विभिन्न विषयों पर दिए वक्तव्यों के प्रति वे लिखते हैं—'ये वक्तव्य, अन्य वक्तव्यों की भाँति, कुछ ऐतिहासिक तथ्यों की चर्चा करते हैं और तत्संबंधी विभिन्न घटनाओं और परिस्थितियों के विषय में जैनेंद्र के मत मात्र को प्रकट करते जान पड़ते हैं। वे समस्या पर आक्रमण नहीं करते। समस्याओं के साथ मानसिक रूप से जूझने का प्रयत्न वहाँ दिखाई नहीं देता। उनके कारणों और उनसे संबंधित परिस्थितियों आदि के विश्लेषण और अध्ययन की ओर उनकी विशेष रुचि नहीं है। व्यक्ति-विशेष द्वारा किसी समस्या से संबद्ध तत्त्वों के विश्लेषण का यह अर्थ नहीं होता कि उस क्रिया में से उसका समाधान निकल आएगा, पर समाधान निकालने के लिए यह अनिवार्य है कि समस्या का समुचित विश्लेषण और मंथन हो। वर्तमान सामाजिक समस्याएँ अत्यंत जटिल हैं। किसी फार्मूले या गुर-विशेष के उपयोग से, अथवा सदृच्छा मात्र से उनका समाधान नहीं प्राप्त किया जा सकता। उनका कार्यकारी समाधान प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि अनेक मनीषियों द्वारा विभिन्न पहलुओं से उनका विश्लेषण किया जाए और फिर उन विश्लेषणों पर अन्वेषक दृष्टि डाली जाए। ऐसी स्थिति में ही यह संभवना हो सकती है कि समस्या-विशेष को सुलझाने के लिए कोई उपयोगी सूत्र दृष्टिगोचर हो जाए। 'समय और हम' से पाठक ऐसे विवेचनों की आशा कर सकता है, पर इनकी दिशा में उसमें प्रयत्न नहीं किया गया है। ऐसा प्रयत्न, जैसा कि जैनेंद्र के कथासाहित्य से हमें आभास मिलता है, जैनेंद्र की प्रकृति में नहीं है। वे श्रद्धा से कातर हैं और समन्वय से अभिभूत। वे संसार-सरिता के तट पर खड़े होकर उसके प्रवाह को भावपूर्ण विनम्रता

की दृष्टि से देख रहे हैं। उनकी दृष्टि कहती है—जो हो रहा है, वह ठीक ही है, उससे हम भाग नहीं सकते। हाँ सावधान, यह तट कहीं पैरों के नीचे से न निकल जाए, नहीं हम और तुम जो धारा से अलग रहना ही उचित समझते हैं, कहीं के न रहेंगे? ⁸ जैनेंद्र के उपन्यासों की कला का विवेचन इस तथ्य को और स्पष्ट कर देता है। अपने उपन्यासों में जैनेंद्र अपने मुख्य पात्र को एक प्रकार के उलझाव अथवा एक मनोवैज्ञानिक गुत्थी के रूप में सामने लाते हैं, उसमें एक प्रकार का चमत्कार अथवा अबूझता लक्षित होती है। वे इन पात्रों के ऊपरी व्यवहारों का चित्रण करते हैं और भीतर से जो उन व्यवहारों का संचालन कर रहा है, उसे अव्यक्त या पर्दे के पीछे रखते हैं। शेष सारा उपन्यास उसी गुत्थी को खोलने अथवा उस अव्यक्त को व्यक्त करने की क्रिया ही है। किंतु उपन्यास को समाप्त कर लेने पर भी पाठक जिस मनःस्थिति में रहता है, उसका विश्लेषण जैनेंद्र के शब्दों में इस प्रकार है—‘ भवितव्य ही होता है। नियत का लेख बंधा है।’ ज्ञानी जन कह गए हैं कि परम कल्याणमय ही इस सृष्टि में अपनी परम लीला या विस्तार कर रहा है। ‘और लीला तेरी है, जीते-मरते हम हैं। क्यों?’ उतर नीरव भाषा में सदा मुखरित है। ‘जो जैसा जानता है वैसा ही पढ़े।’ ⁹ ये बातें लेखक ने पर्याप्त गंभीरता से कही हैं, ये लेखक की मान्यताएँ हैं। कठिन परिस्थितियों में उनमें चिंतक की तथा दार्शनिक की तार्किक प्रबलता लक्षित नहीं होती। ऐसे समय पर वह अपनी मान्यताओं पर पैर टेक लेते हैं और वहाँ से उन्हीं मान्यताओं के रंग में रंगकर ही सारे संसार को देखते हैं। उनके पैरों के नीचे आस्तिकता की चट्टान का आधार है। यह अस्तिकता अर्थात् आध्यात्मिकता जैनेंद्र के चिंतन की मूल विशेषता है। अपने समस्त लेखन-कर्म का उतरदायित्व वे ईश्वर को ही दे देते हैं।

कथात्मक कृति में लेखक का चिंतन प्रायः कृति के प्रतिपाद्य के माध्यम से ग्रहण किया जा सकता है। प्रतिपाद्य कहानी, चरित्र, ध्वनि, कथा-वस्तु तथा शेष अन्य तत्वों की परस्परता से निष्पन्न होता है। कभी-कभी लेखक किसी एक विधि-विशेष पर प्रतिपाद्य को वहन करने का दायित्व डाल देता है। प्रतिपाद्य कभी कृति के समग्र-प्रभाव से व्युत्पन्न होता है तो कभी निष्कर्ष अथवा विवरण के द्वारा। यह निष्कर्ष लेखक कभी अपने शब्दों में तथा कभी अपने किसी पात्र के शब्दों में व्यक्त करता है। यदि किसी एक पात्र विशेष को लेखक प्रतिपाद्य को संप्रेषित करने का माध्यम बना लेता है, तथा उसके आचरण एवं संवादों के ‘माध्यम’ से अपने विचार व्यक्त करता है तो वह लेखक का प्रवक्ता पात्र कहलाता है। ऐसी स्थिति में कथात्मक कृति में से लेखक के विचार जान लेना अत्यंत सहज हो जाता है, किंतु अधिकांशतः रचना के प्रतिपाद्य तक पाठक की पहुँच इतनी सीधी नहीं होती। प्रायः विभिन्न पात्रों के विचारों के परस्पर घात-प्रतिघात में से ही लेखकीय विचार स्पष्ट हो पाते हैं। कोई पात्र पूर्णरूपेण लेखक का प्रवक्ता नहीं होता तथा किसी पात्र के समस्त विचारों को ठीक-ठीक लेखक के विचार नहीं कहा जा सकता।

प्रमुख प्रतिपाद्य के अतिरिक्त रचना में आए अन्य अनेक आनुषंगिक प्रसंग एवं विचार भी लेखकीय चिंतन का महत्वपूर्ण अंग होते हैं। अतः लेखक का चिंतन, कृति के प्रमुख प्रतिपाद्य तक ही सीमित नहीं किया जा सकता। कभी-कभी गौण प्रतिपाद्यों के रूप में प्रमुख प्रतिपाद्य का ही विस्तार प्रस्तुत किया जाता है, किंतु कभी वह जीवन के किसी अन्य पक्ष अथवा समस्या से संबद्ध भी हो सकता है। गौण-प्रतिपाद्य को प्रमुख प्रतिपाद्य के रूप में प्रतिष्ठित कर दिए जाने पर लेखक के विचारों का उचित मूल्यांकन नहीं हो सकता। इस संदर्भ में भी पाठक से विशेष

सावधानी अपेक्षित होती है।

जैनैद्र के अधिकांश उपन्यासों में कथा-आख्याता भी वर्तमान है। यह आख्याता कथा का संदर्भ छोड़कर जैनैद्र के विचारों को प्रस्तुत करने में विशेष सहायक सिद्ध हुआ है। फिर भी उसका लेखक से तादात्म्य नहीं किया जा सकता। 'त्यागपत्र' का जज हो या 'कल्याणी' का वकील, उनका उपन्यास के एक पात्र के रूप में ही चित्रण हुआ है। वह लेखक से अलग एक स्वतंत्र व्यक्ति है, तथा उपन्यास के अन्य पात्रों से वह किसी-न-किसी रूप में संबद्ध भी है। जैनैद्र ने अपने साहित्य के माध्यम से साहित्यिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक चिंतन प्रस्तुत ही नहीं, प्रचारित भी किया है। इस बहुआयामी चिंतन के विश्लेषण-निष्कर्षण के बिना जैनैद्रकुमार का न तो साहित्यिक मूल्यांकन ही किया जा सकता है, न ही सामाजिक।

संदर्भ

1. मन्मथनाथ गुप्त, वही, पृ० 71
2. 'The problems of style, therefore, are really problems of personality- of practical psychology, Style, F.L. Lucas, P. 38
3. जैनैद्र : व्यक्ति, कथाकार और चिंतक (सं० बाँकेबिहारी भटनागर), पृ० 54
4. समीक्षात्मक निबंध, डॉ० विजयेंद्र स्नातक, पृ० 226
5. वही, पृ० 228
6. 'Jainendra Kumar 's style is lucid and appears unaffected but is in fact studied. That perhaps is the consequence of his superb craftsmanship. He can fashion words using them as he likes, with extreme deliberation but without giving any hint of a laboured style.' The Hindustan Times Weekly, Feb, 14, 1971, p. 7, Col. 3-4.
7. जैनैद्र : व्यक्ति, कथाकार और चिंतक, पृ० 76
8. समीक्षक निबंध, डॉ० विजयेंद्र स्नातक, पृ० 233
9. समसामयिक हिंदी साहित्य : उपलब्धियाँ, सं० मन्मथनाथ गुप्त, पृ० 170-171

602 हुड्डा कालोनी
सिरसा (हरियाणा)
मो० 09813034228

डॉ० महीपसिंह के कथासाहित्य में चित्रित राजनीतिक पक्ष का अनुशीलन

रविंद्रकुमार (शोध छात्र)
डॉ० निर्मला देवी (शोध निर्देशिका)
रीडर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग
जे०वी० कॉलेज, बड़ौत (बागपत)

मनुष्य समाज में रहता है, इसलिए उसके सामाजिक संबंध भी होते हैं। राजनीतिक तंत्र सामाजिक संबंधों का ही एक परिणाम होता है। यह आवश्यक नहीं कि समाज का प्रत्येक सदस्य राजनीतिक कार्यवाहियों में रुचि ले। अतएव प्रत्येक नागरिक राजनीतिक नहीं होता, परंतु बहुत सारे लोग ऐसे होते हैं, जिन्हें शासन, देश, संस्था एवं अपने हितों के विषय में जानने-सोचने की चिंता लगी रहती है। इसलिए वे राजनीतिक क्रियाओं से जुड़े रहते हैं। महीपसिंह के कथासाहित्य में जनसाधारण की राजनीतिक गतिविधियों से संलिप्तता स्पष्ट रूप से चित्रित हुई है।

राजनीति (पॉलिटिक्स) शब्द की उत्पत्ति यूनानी शब्द 'पोलिस' से हुई, जिसका अर्थ 'नगर-राज्य' से है। ईसा से 500 वर्ष पूर्व यूनानी लोग छोटे-छोटे नगर-राज्यों में रहते थे, जिन्हें पोलिस कहा जाता था। यूनान के दार्शनिकों ने इन्हीं नगर राज्यों की स्थिति और राजनीतिक गतिविधियों को पॉलिटिक्स का नाम दिया था। अरस्तु के अनुसार—'राजनीति, एक प्रभुसत्तापूर्ण राजनीतिक संबंधों की नीति है।' डैल महोदय के अनुसार—'राजनीतिक संस्थान इस प्रकार मानव-संबंधों का एक ऐसा सतत् रूप है, जिसके अंदर पर्याप्त मात्रा में शक्ति, प्रशासन या सत्ता निहित होती है।'²

डैल महोदय के मतानुसार ही उनका मानना है—'ऐसा कोई भी मानव-समुदाय नहीं है, जिसके अंदर कहीं-न-कहीं किसी-न-किसी रूप में 'राजनीति' न्यूनाधिक अंश में मौजूद न हो। व्यक्तिगत क्लबों, व्यापारिक संघों, धार्मिक संगठनों, नागरिक समुदायों, आदिम जाति-संघों, कुलों तथा परिवारों सभी में कहीं-न-कहीं सत्ता का एक अंश विद्यमान होता है, जिसका तात्पर्य यह हुआ है कि सभी कुछ-न-कुछ अंश में राजनीतिक अवश्य हैं, चाहे भले ही वे संप्रभु न हों।'³

डॉ० महीपसिंह जी के कथासाहित्य का रचनाकाल 1956 से प्रारंभ हुआ। इस समय देश में काफ़ी उथल-पुथल हुई, जिसे राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक क्षेत्रों में देखा जा सकता है। यह भारत के नव-निर्माण का समय रहा है। देश ने अनेक क्षेत्रों में प्रगति की, पर अनेक कारण ऐसे भी रहे हैं, जिनसे प्रगति का लाभ जनसामान्य को नहीं मिल पाया, जनसामान्य की आशाओं एवं विश्वास को ठेस पहुँची। इसी समय देश ने अनेक युद्ध लड़े तथा

अनेक आंतरिक दंगों एवं आपात जैसी समस्याओं का सामना किया, जिनका प्रभाव सामान्य जनजीवन पर भी पड़ा।

इन बदलती हुई परिस्थितियों का प्रभाव कथाकार महीपसिंह पर बराबर पड़ता रहा है और वे बदलते हुए समय को अपने उपन्यासों एवं कहानियों में अपने ढंग से अभिव्यक्त करते रहे हैं। देश-विभाजन, सांप्रदायिक दंगे, आपातकाल, धार्मिक झगड़ों आदि को महीपसिंह ने एक तरह से सीधे झेला है। 1984 के सिखविरोधी दंगों ने महीपसिंह को अत्यधिक उद्वेलित किया। महीपसिंह जी ने इन समस्याओं के प्रति कभी सीधे आक्रोश व्यक्त नहीं किया, अपितु अप्रत्यक्ष भाव से अपने लेखन के माध्यम से उपन्यासों एवं कहानियों के पात्रों द्वारा आक्रोश एवं विरोध मुखरित किया है। महीपसिंह जी के कथासाहित्य में चित्रित राजनीतिक पक्ष का उद्घाटन निम्न बिंदुओं के आधार पर किया जाएगा—

राजनीतिक चेतना

महीपसिंह के उपन्यासों एवं कहानियों के पात्र, समाज की छोटी-बड़ी समस्याओं से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक की समस्याओं के विषय में चिंतनशील हैं। डॉ० महीपसिंह के कथासाहित्य के पात्र राष्ट्रीय चेतना से पूर्ण हैं। उनमें अपनी जन्मभूमि, राष्ट्रभाषा आदि के प्रति लगाव है। देश-विभाजन एवं सांप्रदायिक दंगों को आधार बनाकर लिखे प्रसिद्ध उपन्यास, 'अभी शेष है' व 'बीच की धूप' में पात्रों के दिलों में अपनी जन्मभूमि के लिए प्रेम, उनसे बिछड़ने के दर्द को प्रमुखता के साथ उकेरा है। 'अभी शेष है' के भाइया जी अपनी पौत्री को अपनी जन्मभूमि की यादों के विषय में बता रहे हैं—

'भाइया जी के चेहरे पर वर्षों के लंबे पसार में फैली हुई मुस्कराहट उभर आती। वे मनजीत का हाथ पकड़कर अपनी छाती पर रख लेते और कहते, 'झल्लिए', ये यादें जुबान पर नहीं... यहाँ बसती हैं... दिल में...दिल की धड़कनों में।'¹⁴

इनके कथासाहित्य के पात्र बाज़ार में आयी महँगाई के कारण उत्पन्न समस्या के विषय में चिंतित हैं। वे इस समस्या के निराकरण के उपायों पर भी चर्चा करते हैं। पात्र अपने प्रदेश से इतर भी अन्य प्रदेशों की समस्याओं पर तर्क-वितर्क करते रहते हैं। इस प्रकार का विचार-विमर्श पात्रों की राजनीतिक चेतना या चिंतनशीलता का प्रतीक है। 'और भी कुछ' कहानी का पात्र अपनी मित्र को अपने देश के लोगों की समस्या से परिचित करा रहा है—

'मिस लिडिन, मैं नहीं जनता कि दुनिया के अन्य लोगों की अपेक्षा हमारे देश का आदमी कितना 'टेंस' है और यदि है तो इसका कारण सिर्फ़ मिर्च नहीं है। लंबी गुलामी, ग़रीबी, बेरोज़गारी और बेहिसाब आबादी आदि बहुत से कारण इस तनाव के होंगे।'¹⁵

इनके पात्रों में राजनीतिक चेतना के साथ-साथ मानवता भी है। वे देश, राष्ट्र, समाज के विकास के लिए नैतिक मार्ग को ही सही मानते हैं। देश के विकास के लिए विज्ञान के अंधाधुंध प्रयोग को सही नहीं मानते। कथासाहित्य में पात्रों ने यह कहने का प्रयास किया है कि अंधाधुंध विकास की दौड़ में एक मानव दूसरे मानव का शत्रु बन रहा है। स्वार्थ के लिए विज्ञान के दुष्प्रयोग को संपूर्ण मानवता के लिए हानिकारक बताया है।

महीपसिंह के कथासाहित्य में युवा पुरुष पात्र राजनीति में सहभागिता प्राप्त करना चाहते

हैं। 'वह' कहानी का नायक अल्प आयु में ही पार्लियामेंट का सदस्य बन गया और नेतृत्व प्राप्त कर देश के विकास में सहयोग प्रदान करना चाहता है—

'यह विजय देवराज की नहीं, तरुणाई की विजय है, उस बूढ़ी पीढ़ी के खिलाफ़, जो गद्दी से चिपकी रहना चाहती है, जो नौजवानों को आगे नहीं बढ़ने देना चाहती है।'⁶

महीपसिंह के उपन्यासों में प्राचीन मान्यताओं एवं मिथकों को तोड़ने की क्षमता है। उनमें विरोध का स्वर मुखर हो उठता है। उनके कथासाहित्य के विभिन्न पात्र इस धारणा को तोड़ने में सक्षम हुए हैं कि राजनीति के क्षेत्र में वृद्ध नेता ही जा सकते हैं।

ये पात्र देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत हैं। वे अपने देश के लिए अपने प्राणों का बलिदान करने के लिए भी तैयार हैं। 'युद्धमन' के कोहली साहब के बेटे व दामाद सेना में हैं और युद्ध कर रहे हैं। उन्होंने अपने मन को हर परिस्थिति के लिए मजबूत बना लिया है कि चाहे परिणाम जो भी हो। कोहली साहब का यह व्यवहार उनकी देशभक्ति की भावना को प्रकट कर रहा है—

'मेरे बेटे और दामाद और बहुत से नजदीकी रिश्तेदार सेना में हैं। युद्ध चल रहा है, सैकड़ों लोग मर रहे हैं। किसी के साथ कुछ भी हो सकता है। जिसके साथ आज नहीं होगा, कल होगा। युद्ध आज बंद हो जाए तो कल फिर शुरू होगा। सेनाओं का काम है युद्ध करना, उन्हें जीतना, उनमें मरना।'

देश-विभाजन संबंधी राजनीतिक समस्याएँ

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् देश-विभाजन की समस्या ने अनेक लोगों को प्रभावित किया। किसी से उनका घर छूट गया तो किसी का जमा-जमाया रोजगार बर्बाद हो गया। विभाजन के कारण लोग अपनों से बिछड़ गए। महीपसिंह जी के उपन्यास व अनेक कहानियाँ विभाजन के दर्द को प्रकट करती हैं। देश-विभाजन के उपरांत 1984 के दंगों ने भी मध्यवर्गीय समाज को प्रभावित किया है। दंगे-फ़साद के कारण भी अनेक लोगों को निर्वासन की स्थिति से जूझना पड़ा है, कई बार उजड़ना पड़ा है। विभाजन के समय हुए सांप्रदायिक दंगों का भय आज तक समाज में व्याप्त है। सांप्रदायिकता रूपी ज़हर आज तक देश के लोगों को गला रहा है, जिसका परिणाम समाज में अनेक बार सामाजिक, आर्थिक, मानवीय हानि के रूप में दृष्टिगोचर होता है।

डॉ० महीपसिंह के प्रसिद्ध उपन्यास 'अभी शेष है' और 'बीच की धूप' में देश-विभाजन एवं सांप्रदायिक दंगों की समस्या एवं उनसे उपजे भय और दर्द को प्रमुखता से चित्रित किया गया है। इन उपन्यासों के पात्र विभाजन के कारण अनेक सामाजिक, आर्थिक हानियों को झेलते व विभाजन के दर्द में कसकते चित्रित हुए हैं। 'अभी शेष है' में माइया जी का परिवार पाकिस्तान से उजड़कर हिंदुस्तान आकर बस गया है। भगवंत का कथन उनके उजड़ने व अपनों से बिछड़ने के दर्द को प्रकट कर रहा है—

'काम-धंधे न लगते, तो भूखो मरते।' भगवंत खीजकर बोला, 'बदमाशों ने हमारे पास कुछ भी तो नहीं छोड़ा था। मैं बहुत छोटा था, पर मुझे याद है, फ़सादियों ने हमारे कैंप पर हमला किया था। ताया जी, बड़े वीरजी, बहन वीरा को घसीटकर वो ले गए थे। ताईजी का रो-रोकर बुरा हाल हो गया था। सारे कैंप में अफरा-तफरी मची हुई थी। वह बात याद आती है तो आज

भी रूह काँप उठती है। कुछ घंटों बाद फ़सादी आए थे और ताईजी की गोद में तायाजी और वीर प्रेमसिंह के खून में सने कपड़े फेंक गए थे...।⁷⁸

महीपसिंह की कहानियों में 'दिल्ली कहाँ है', 'पानी और पुल' देश-विभाजन की समस्या और उनसे उपजे दर्द को प्रकट करती है, तो 'एक मरता हुआ दिन', 'पारदर्शी दीवार', 'शहर' आदि कहानियाँ 1984 ई० के दंगों से पीड़ित लोगों के दर्द एवं समस्याओं को दर्शाती हैं। 'सहमे हुए', 'पहले जैसे दिन', 'दुःख' आदि कहानियाँ साम्प्रदायिकता की समस्या को प्रमुखता से प्रकट करती हैं।

देश के बंटवारे के पश्चात कुछ भारत के कुछ लोग पाकिस्तान चले गए, तो कुछ पाकिस्तान के कुछ लोग भारत आकर बस गये। निर्वासित होने के बाद दूसरे स्थान पर बसने के बाद भी उनके दिलों में अपनी जन्मभूमि के लिए कसक बनी रही। कुछ इसी प्रकार के भाव को महीपसिंह की प्रमुख कहानी 'दिल्ली कहाँ है' दर्शा रही है, जब लेखक घूमने के लिए पाकिस्तान जाते हैं, तो वहाँ का एक नागरिक उनसे भारत के विषय में पूछ रहा है—

'आप हिंदुस्तान में कहाँ रहते हैं?'

'दिल्ली में।' मैं बोला, पर उसी के साथ मैंने महसूस किया, उसकी आँखें एकदम तरल हो आयी हैं।

'दिल्ली में किस इलाक़े में?'

'करोल बाग में'...मैं बोला।

'मैं फ़ैज रोड पर रहता था?'

'आप यहाँ कब आए?' मैंने पूछा।

'मुल्क के बँटवारे के वक़्त। बँटवारा क्या हुआ, हमारा तो ख़ानदान ही बँट गया। आधे रिश्तेदार यहाँ, आधे वहाँ, हम एक-दूसरे के लिए परदेशी बन गए हैं। आपके पास थोड़ा वक़्त हो तो आप दिल्ली के बारे में बताइए।' मैंने उसकी आँखों में झाँका—'क्या आप उसके बाद एक बार भी दिल्ली नहीं गए?'

उसने अपनी गर्दन हिला दी।

'लेकिन इतने साल बाद भी दिल्ली मेरे दिल में धड़कती है।' उसने मेरा हाथ उठाकर अपनी छाती पर रख दिया—'आप मेरे दिल की धड़कन महसूस कर रहे हैं?'

निर्वासन की स्थिति व जन्मभूमि और मातृभूमि से बिछड़ने की कसक को प्रकट करती कहानी 'पानी और पुल' का यह भाव दर्शनीय है। कहानी की नायिका जब अपने बेटे के साथ पाकिस्तान में पंजा साहब की यात्रा के लिए जाती है तो मार्ग में उनके पैतृक गाँव के कुछ लोग मिल जाते हैं, जिनका वार्तालाप इस प्रकार है—

'तुम मूलासिंह के बेटे हो', कई लोग एक साथ चिल्लाए।

'तुम मूलासिंह की बीवी हो... रवेलसिंह की भाभी? कैसे हैं सब लोग...? कहते-कहते कितने ही हाथ हमारी ओर बढ़ने लगे। लोग हमारे संबंधियों में सबकी कुशल-क्षेम पूछते हुए अपने हाथ की पोटलियाँ मुझे और माँ को थमाते जा रहे थे। उनमें बादाम, अखरोट, किशमिश आदि सूखे मेवे बँधे हुए लग रहे थे। मैं और माँ गुमसुम से उन्हें ले-लेकर अपनी सीट पर रखते जा रहे थे। देखते-देखते बर्थ छोटी-छोटी कपड़ों की पोटलियों से भर गई।

मैं हक्का-बक्का सा यह सब देख रहा था। माँ अपने सिर का कपड़ा बार-बार सँभालती हुई हाथ जोड़ रही थी। खुशी से उनके होंठ फड़फड़ा रहे थे। मुँह से निकल कुछ भी नहीं रहा था और लगता था कि आँखें अभी चू पड़ेंगी।¹⁰

प्रस्तुत कहानी में भारत के विभाजन का कारण रहे दो धर्म या संप्रदाय ने सामान्य जन के दिलों का बँटवारा कर दिया। सदियों से साथ-साथ रहने वाले लोगों को अलग-अलग कर दिया। भारत के बँटवारे की एक रेखा कागज पर खिंची, भूमि पर उतरी और लोगों के दिलों को चीरती हुई निकल गई। इस कहानी में लेखक ने भावनाओं को बड़े ही मार्मिक ढंग से चित्रित किया है। यह कहानी दो स्तरों पर चलती है। इसमें पत्थर और लोहे से बना पुल संबंधों की ऊपरी कठोरता और भावुकता का, क्रूर और कठोर राजनीति का प्रतीक है और पुल के नीचे से बह रहा निर्मल जल मानवता, आत्मीयता, प्यार और करुणा का प्रतीक है।

विभाजन के पश्चात् संप्रदाय, धर्मवाद, जातिवाद की समस्या से देश अभी उभरा ही था कि 1984 में हुए दंगों ने देश के वातावरण को संप्रदायवाद, धार्मिक विवाद, जातिवाद आदि से भर दिया। इन धार्मिक झगड़ों के कारण देश को अनेक आर्थिक, सामाजिक हानियाँ उठानी पड़ीं। समाज में सांप्रदायिकता के प्रसार के कारण प्रत्येक वर्ग उससे प्रभावित दिखाई पड़ता है। समाज का एक संप्रदाय दूसरे से भयभीत व सहमा हुआ दिखाई पड़ता है। श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या पश्चात् समाज में एक विशेष धर्म के सभी लोगों को दूसरे धर्म के लोग हत्यारे समझने लगे तथा एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गए।

‘एक मरता हुआ दिन’ का नायक हरनामसिंह जब गुरुद्वारे में मत्था टेककर वापस आ रहा था तभी दूसरे धर्म के लोगों द्वारा घेर लिया जाता है। हरनामसिंह व अन्य लोगों का कथन साम्प्रदायिक दंगों की झलक प्रस्तुत करता है—

‘क्यों बे सरदार, तूने इंदिरा गाँधी को मारा है...।’

‘मैंने...?’ उसके मुँह से निकला—‘मेरा इस काम से क्या वास्ता?’

‘तूने नहीं तो तेरी जात वालों ने इंदिरा गाँधी को मारा है...।’ उसी के साथ एक हथौड़े जैसा थप्पड़ उसके मुँह पर पड़ा। उसकी आँखों के सामने अंधेरा छा गया। फिर उस पर डंडे बरसने लगे।¹¹

उपर्युक्त कहानी के अन्य पात्र हरनामसिंह को संपूर्ण सिख समुदाय का प्रतीक मानकर उसमें इंदिरा गांधी के हत्यारों की छवि देखते हैं। वे उसे गांधी का हत्यारा समझकर मारपीट करते हैं। अर्थात् संपूर्ण सिख संप्रदाय हिंदू संप्रदाय की नफ़रत का शिकार हुआ। कहानी में हरनामसिंह के विश्वास का भी खून हुआ है।

‘शहर’ कहानी का नायक निर्वासित होने के बाद भी उस शहर में किसी काम के बहाने या घूमने वहाँ आता-जाता रहता है, जहाँ उसने जीवन के साठ साल गुज़ारे हैं। वह शहर उससे भूले नहीं भुलाया जाता है। वहाँ की यादें उसे हर पल कचौटती रहती है। नायक एवं नायक के छोटे भाई के कथन से यह भाव यहाँ स्पष्टता से दिखाई पड़ता है—

‘अब आप अपने आपको उस शहर से समेट ही लीजिए... यही अच्छा रहेगा।’ मैंने बड़े बुजुर्गाना अंदाज़ में कहा।

मैंने देखा, उनके चेहरे पर फिर वही उदासी उभर आई है। उन्होंने गिलास उठाया एक

लंबा घूँट लिया ओर बोले—‘अब तो होड़ सी लगी दिखती है - मैं अपने आपको उस शहर से समेटता हूँ या वक्त मुझे समेटता है।’¹²

सरकार के प्रति असंतोष

डॉ० महीपसिंह जी के कथासाहित्य के पात्र महानगरीय हैं। वे शिक्षित एवं जागरूक हैं। वे किसी भी घटनाक्रम पर अपने विचार बड़ी प्रस्फुटता के साथ प्रस्तुत करते हैं। समस्या चाहे पारिवारिक स्तर की हो या समाज या राष्ट्रीय की, व उनसे अछूते नहीं रहते। वे समाज में फैलती अनेक बुराइयों के लिए चिंतित हैं। वे समाज में बढ़ रहे भ्रष्टाचार एवं राजनीति के क्षेत्र में बढ़ रहे अपराधीकरण से चिंतित हैं, तथा उसका विरोध भी करते हैं। देश के चिंतनशील नागरिक होने के नाते मध्यवर्गीय पात्रों में सरकार की गलत नीतियों के प्रति असंतोष की भावना है। वे राजनीति में बढ़ रहे भ्रष्टाचार पर व्यंग्य करने के प्रति स्पष्टतः मुखर हैं। रिश्वतखोरी, अफ़सरशाही, भ्रष्टाचार आदि समस्याओं से युवा समाज पीड़ित है। डॉ० महीप सिंह की प्रसिद्ध कहानी ‘सत्यमेव जयते’ में सरकारी कर्मचारियों, अफ़सरों की रिश्वतखोरी व भ्रष्ट आचरण को दिखाया है। इनके उपन्यास एवं कहानियों के पात्र इन भ्रष्ट अफ़सरों पर व्यंग्य करते हैं।

इसके बाद श्रीवास्तव बोले—उन्होंने कहा, हम तो देश के सेवक हैं। जहाँ भी जाएँगे, देश की सेवा ही करेंगे।’ पीछे से फुसफुसाहट हुई, ‘साला पचास हजार हार्ड कैश बनाकर जा रहा है।’

कुमार बाबू ने कहा, ‘देश की उन्नति का सारा भार आप लोगों पर है...।’ फिर फुसफुसाहट हुई ‘और आपकी उन्नति का सारा भार तो हम पर है।’ कुलमार बाबू कह रहे थे, ‘आप लोगों ने जिस तरह हमारे साथ को-आपरेट किया है, हमें पूरी आशा है कि उसी तरह हमारे सक्सेसरों के साथ भी करेंगे...पीछे से धीरे-से किसी ने कहा, ‘जी हाँ जिस तरह आपका पेट भरा है, उसी तरह आपके सक्सेसरों का भी भरेंगे।’¹³

‘बीच की धूप’ उपन्यास में सरकार के भ्रष्ट आचरण को दर्शाते हुए इमरजेंसी में स्वतंत्रता, विश्वास और न्याय को समाप्त होते हुए बताया है। यहाँ पर सरकार के मनमाने रवैये का विरोध हुआ है, जिसे एक विज्ञापन द्वारा प्रकाशित किया गया है—

‘इसका मतलब समझिए-डि’ ऑक्रेसी अर्थात् डेमोक्रेसी लोकतंत्र, टी० रूथ, अर्थात् टूथ-सत्य के प्रिय पति, एल०आई०बर्टी अर्थात् लिबर्टी-स्वतंत्रता के पिता फेथ-विश्वास, होप-आशा, जस्टीशिया-न्याय के भाई का 26 जून को देहावसान हो गया। ‘देखिए कितनी चतुराई से इस विज्ञापन में इमरजेंसी की घोषणा की बखिया उधेड़ी गई है।’¹⁴

निष्कर्ष

डॉ० महीपसिंह का कथासाहित्य राजनैतिक चेतना से परिपूर्ण है। इनके उपन्यास तथा कहानियों के पात्र राष्ट्र के विकास में अपना योगदान देना चाहते हैं। मध्यवर्गीय पात्र देश और समाज की छोटी-बड़ी समस्याओं से लेकर राष्ट्रस्तर तक की समस्याओं के प्रति चिंतित हैं। युवा पात्र तो देश की राजनीति में बढ़-चढ़कर भाग लेना चाहते हैं। उनका मानना है कि देश का नेतृत्व युवाओं के हाथ में होना चाहिए, तभी राष्ट्र विकास कर सकता है। इन पात्रों में देशसेवा एवं देशप्रेम की भावना है। वे देश के विकास के लिए अपना पूर्ण सहयोग देने के लिए तत्पर दिखाई पड़ते

हैं।

देश-विभाजन के पश्चात् मध्यवर्गीय समाज निर्वासन के दुःख से पीड़ित दिखाई पड़ता है। उजड़ने का दर्द पात्रों के चेहरों पर स्पष्ट दिखाई पड़ता है। निर्वासन अर्थात् स्थान-परिवर्तन के कारण इनके कथासाहित्य के पात्रों को अनेक आर्थिक हानियाँ भी उठानी पड़ी हैं। पात्रों के हृदय में उजड़ने का दर्द भी है, तथा अपनी जन्मभूमि या कर्मभूमि के छूटने की कसक भी। इन पात्रों के दिलों में उनकी जन्मभूमि एक भाव बनकर रहती है।

डॉ० महीपसिंह ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में राजनीतिक पक्ष को प्रस्तुत करते हुए विभाजन की समस्या व उससे उपजे दुःख व समाज में फैली सांप्रदायिकता की समस्या को उजागर किया है। कथाकार महीपसिंह ने अपने उपन्यास एवं कहानियों के पात्रों को इन समस्याओं को झेलते व इनमें जीते हुए दिखाया है। इन पात्रों में अपने देश के प्रति प्रेम है। उनमें समाज में सहयोग व देश के विकास की भावना कसक रही है। महीपसिंह जी ने अपने उपन्यासों व अनेक कहानियों में राजनीति के क्षेत्र में गिरते मानवीय मूल्यों को भी प्रकट किया है तथा गिरते हुए राजनीति के स्तर पर व्यंग्य कर अपना विरोध प्रकट किया है।

संदर्भ

1. डॉ० के०एन० वर्मा, पाश्चात्य राजनीतिक विचारधाराएँ, पृ० 696
2. वही
3. वही
4. डॉ० महीपसिंह, अभी शेष है, पृ० 16
5. डॉ० महीपसिंह, संबंधों का सन्नाटा, पृ० 31
6. डॉ० महीपसिंह, सुबह की महक, पृ० 260
7. डॉ० महीपसिंह, क्षणों का संकट, पृ० 127
8. डॉ० महीपसिंह, अभी शेष है, पृ० 65
9. डॉ० महीपसिंह, संबंधों का सन्नाटा, पृ० 139
10. डॉ० महीपसिंह, सुबह की महक, पृ० 252
11. डॉ० महीपसिंह, संबंधों का सन्नाटा, पृ० 133
12. वही, पृ० 170
13. डॉ० महीपसिंह, सुबह की महक, पृ० 242
14. डॉ० महीपसिंह, बीच की धूप, पृ० 23

इतिहास और तरीखों का परस्पर संबंध

डॉ० नरेशचंद्र शर्मा

मनुष्य एक जिज्ञासु प्राणी है। अपने उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिए समय-समय पर वह विचार करता आ रहा है। समय को बाँटने के लिए सबसे पहले उसने दिन और रात को बाँटा। समय को घंटा और घंटा को मिनट में, मिनट को सेकेंड में सेकेंड को डेका सेकेंड में बाँटा। इसी कड़ी में तरीखों को महीनों और वर्षों में बाँटा, क्योंकि किसी विषय, वस्तु का ज्ञान करने के लिए सबसे पहले तारीखों का ज्ञान होना आवश्यक है।

एक समय था, जब इतिहासकार तरीखों के जादू में खोए रहते थे। कब किस राजा का राजतिलक हुआ, कब कौन-कौन से युद्ध लड़े गए? इन बातों को लेकर बहस चलती थीं। आम लोगों को समझने के लिए इतिहास को पर्याय माना गया। हम सभी लोगों को यह कहते हुए सुना होगा—इतिहास एक उबाऊ है और इसकी तरीखों को रटते चले जाओ। क्या इतिहास के बारे में यह धारणा सही है? इतिहास का जन्म समय-समय पर आनेवाले बदलावों से ही होता है। इतिहास का सीधा संबंध अतीत से होता है, कि चीजें किस तरह की थीं और उन चीजों में क्या व्यापक बदलाव आए? जैसा कि हम अतीत और वर्तमान का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए समय का जिक्र करने लगते हैं। अतीत की 'पहले' और वर्तमान की 'बाद' में बात करने लगते हैं।

रोज़मर्रा की जिंदगी में हम आस-पास की वस्तुओं पर कुछ-न-कुछ ऐतिहासिक सवाल उठाते हैं। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि हम जो कुछ देख रहे हैं, मानो वह हमेशा से है। कभी-कभी हमारे सामने अचंबे के क्षण आते हैं और हम उत्सुक होकर ऐसे सवाल पूछते हैं, जो वाकई ऐतिहासिक होते हैं। जब हम रेलगाड़ी में सफ़र करते हुए खिड़की पर खड़े होकर झाँककर देखते तो मन में जिज्ञासा उत्पन्न होती कि रेलवे का निर्माण कब हुआ होगा? पुनः सवाल मन में उठने लगता है कि जब रेलगाड़ी नहीं थी, तब लोग अपनी यात्राओं को कैसे पूर्ण करते थे? सुबह-सुबह जब कोई व्यक्ति अख़बार पढ़ रहा होता है, तो मन यह जानने को उत्सुक हो उठता है कि जब अख़बार नहीं छपते थे तो उस समय लोगों को समाचार की कैसे जानकारी मिलती थी?

ये सभी ऐतिहासिक सवाल हमें समय के विषय में सोचने के लिए प्रेरित करने लगते हैं। समय को साल और महीनों के पैमाने पर नापा नहीं जा सकता। कई बार ऐसी प्रतिक्रियाओं के लिए कोई तरीख तय करना वाकई ग़लत होता है कि जो एक लंबे समय तक चलती रहती है। भारतवासियों ने अचानक सुबह-सवेरे चाय पीना शुरू नहीं कर दिया था। चाय का स्वाद धीरे-धीरे ही उनकी जुबान पर चढ़ गया होगा। ऐसी प्रतिक्रियाओं के लिए कोई स्पष्ट तिथि नहीं हो सकती। ऐसे ही हम ब्रिटेन शासन की स्थापना के लिए कोई स्पष्ट तिथि नहीं बता सकते। भारत का राष्ट्र आंदोलन कब शुरू हुआ। अर्थव्यवस्था और समाज व्यवस्था में क्या-क्या बदलाव

आए इनके बारे में बताना भी संभव नहीं है। इस तरह की सारी चीजें एक लंबे समय तक घटती हुई हैं। इन घटित बातों को केवल हम अवधि की ही बात कह सकते हैं। एक लगभग सही अवधि के बारे में बता सकते हैं, जब उसमें खास बदलाव दिखाई देने लगे होंगे।

तो फिर लोग इतिहास को तारीखों से जोड़कर क्यों देखते हैं? इन तारीखों के जुड़ाव की एक वजह है। एक समय था, जब युद्धों और बड़ी-बड़ी घटनाओं के ब्यौरों को इतिहास मान लिया जाता था। इतिहासकारों से ही राजाओं व महाराजाओं और उनके शासन दरबार-संबंधी नीतियों के बारे में लिखा होता था। इतिहासकार यह भी लिखते थे, कौन से साल किस राजा ने ताज पहना, किस साल उसका विवाह हुआ, उसके घर में बच्चा पैदा कब हुआ, कौन से साल उसने कौन-कौन सी लड़ाइयाँ लड़ीं और वह कब मरा और उसकी मृत्यु के बाद कौन सा शासक गद्दी पर बैठा। इन घटनाओं के लिए निश्चित तिथि कही जा सकती है और इस तरह के इतिहास में तिथियों का महत्व बना रहता है।

अब इतिहासकार बहुत सारे दूसरे मुद्दों पर भी बात करने लगे हैं। वे इस पर भी सोचने लगे हैं कि लोग कैसे अपनी रोजी-रोटी चलाते थे? क्या पैदा करते थे? क्या खाते थे? शहर कैसे बने? और कैसे उनका विस्तार हुआ? किस तरह रियासतें बनीं? कैसे नए विचार पनपे? और समाज और संस्कृति किस प्रकार बदली? जिन तारीखों को हम चुनते हैं, उन तारीखों के इर्द-गिर्द अतीत की कहानी सुनते हैं। वे तारीखें अपने आपमें महत्वपूर्ण नहीं होतीं, लेकिन इन तारीखों से कुछ खास घटनाओं को महत्वपूर्ण मानकर चलने लगते हैं। अगर अध्ययन का विषय बदल जाए तो नए बिंदुओं पर ध्यान देने लगते हैं।

इस संदर्भ में मनन करने योग्य बात यह है कि भारत में ब्रिटिश इतिहासकारों ने जो भी इतिहास लिखे, उनमें उनके प्रत्येक गवर्नर जनरल का शासनकाल महत्वपूर्ण है। ये इतिहास प्रथम गवर्नर जनरल से शुरू होकर आखिरी बायसराय लार्ड माउंटबेटेन के साथ खत्म होते थे। अलग-अलग अध्यायों में हम दूसरे गवर्नर जनरल-हेस्टिंग्स, बेल्लेजली, बेन्टिंग, डलहौजी, कैनिंग, लोरेन्स, लिटन, लार्डरिपन, कर्जन, हार्डिंग, इरविन के बारे में भी हम अध्ययन करते हैं। इन जनरलों और बायसरायों का कभी खत्म न होने वाला इतिहास का सिलसिला ही छाया रहता था। इतिहास की इन किताबों में इन तारीखों का महत्व इनके अधिकारियों, उनकी कार्यशैली, नीतियों और गतिविधियों से ही तय होता था। यह ऐसे था मानों इन लोगों के जीवन के बाद कोई ऐसी चीज नहीं थी, जिसको जानना महत्वपूर्ण हो। इन लोगों के जीवन का क्रम ब्रिटिश भारत के इतिहास में अलग-अलग अध्यायों का विषय बन जाता था।

जब हम कोई किंवदंती लिखते हैं तो उसे टुकड़ों और अलग-अलग अध्यायों में विभक्त कर देते हैं। हम इसलिए ऐसा करते हैं ताकि हर अध्याय में कुछ-न-कुछ सामंजस्य बना रहे। इस कहानी को इस ढंग से लिखते हैं ताकि उस कहानी को आसानी से समझा जा सके और याद रखा जा सके। इन कहानियों में हम उन प्रक्रियाओं और घटनाओं पर जोर देते हैं जो इस कहानी के लिखने में सहायक होती हैं, जो इतिहास जिस गवर्नर जनरल के जीवन के इर्द-गिर्द चलता है, उसमें भारतीयों की कोई भी गतिविधियाँ माइने नहीं रखती। उनके लिए वहाँ कोई स्थान नहीं होता। ऐसे में फिर क्या किया जाए? जाहिर है कि हमें अपने इतिहास की रूप-रेखा अलग से निर्धारित करनी पड़ेगी। इसका मतलब यह है कि अब तक जिन तिथियों को हम लिख रहे

थे, वे महत्वपूर्ण नहीं रहेगी और नई तिथियाँ महत्वपूर्ण हो जाएँगी।

1817 ई० में स्कॉटलैंड के अर्थशास्त्री और राजनीतिक दार्शनिक जेम्स मिल ने भारतीय इतिहास को तीन विशाल खंडों में 'हिस्ट्री ऑफ़ ब्रिटिश इंडिया' (ब्रिटिश भारत का इतिहास) नामक किताब में लिखा। उन्होंने भारत के इतिहास को तीन कालखंडों में विभाजित किया—हिंदू, मुस्लिम और ब्रिटिश। इन कालखंडों को ज्यादातर लोगों ने स्वीकार कर लिया है।

हम इतिहास को अलग-अलग कालखंडों में बाँटने की कोशिश क्यों करते हैं? इसका भी एक कारण है। हम एक समय की विशेषता को, उसके केंद्रीय तत्त्वों को पकड़ने की कोशिश करते हैं। इसलिए यह शब्द महत्वपूर्ण हो जाते हैं, जिनके माध्यम से हम समय को बाँटते हैं और यही शब्द हमारे अतीत के विचारों को दर्शाते हैं। यह शब्द एक अवधि से दूसरे अवधि के बीच आए उत्थान-पतन को भी बताते हैं।

जेम्स मिल को लगता था कि एशियाई समाज सभ्यता के मामले में यूरोपियों से बहुत पीछे है। जेम्स मिल को यह मालूम था और बाद में मुसलमान तानाशाहों का राज चलता था। यहाँ केवल धार्मिक व जातिगत बंधनों और अंधविश्वासों का बोलवाला था। मिल इस विषय में सोचता था कि भारत को सभ्यता की राह पर केवल ब्रिटिश शासन ही ले जा सकता है। इन कामों के लिए जरूरी था कि भारत में कला, शोध, संस्थान, यूरोपियन शिष्टाचार और कानूनों को लागू किया जाए। मिल तो यहाँ तक कहता था कि ब्रिटिशों को भारत के संपूर्ण क्षेत्र पर कब्जा कर लेना चाहिए ताकि अँग्रेजों के माध्यम से भारतीयों को सुखी जीवन प्रदान किया जा सके। जेम्स मिल का मानना था कि ब्रिटिश की मदद के बिना भारत प्रगति नहीं कर सकता।

इतिहास की इस धारणा में अँग्रेजी शासन प्रगति और सभ्यता का प्रतीक था। ब्रिटिशकाल से पहले भारत में अंधकार का दौर था। क्या हम इस धारणा को स्वीकार कर सकते हैं? क्या इतिहास के किसी दौर को हिंदू, मुसमान का दौर कहा जा सकता है? क्या इन सारे दौरों में धर्म एकसाथ नहीं चलते थे? किसी युग को केवल उस समय के शासकों के धर्म के हिसाब से तय करने की क्या जरूरत थी? अगर हम ऐसा करते हैं तो इसका मतलब यह कहना चाहिए कि औरों के जीवन, औरों के तौर-तरीकों का कोई महत्व नहीं होता। प्राचीन भारत में सारे शासकों का एक ही धर्म होता था। यह याद रखने योग्य बात है।

अँग्रेजों द्वारा सुझाए गए वर्गीकरण से अलग हटकर इतिहासकार भारतीय इतिहास को आमतौर पर प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिककाल में बाँटकर अध्ययन करते हैं। इस विभाजन की भी अपनी एक समस्या है। इतिहास को कालखंडों में बाँटने की समझ भी पश्चिम से आई। पश्चिम में आधुनिककाल को विज्ञान, तर्क, लोकतंत्र, मुक्ति और समानता जैसी आधुनिकता की ताकतों को विकास का युग माना जाता है। ब्रिटिशों के लिए मध्यकाल वह समाज था, जहाँ आधुनिक समाज की ये विशेषताएँ मौजूद रही हों। क्या हम अपने अध्ययन के लिए आधुनिककाल की इस अवधारणाओं को स्वीकार कर सकते हैं? अँग्रेजों के शासनकाल में लोगों के पास समानता, स्वतंत्रता और मुक्ति नहीं थी और न ही यह आर्थिक विकास और प्रगति का दौर था। बहुत से इतिहासकार इस युग को औपनिवेशिक युग कहते हैं। अँग्रेजों ने हमारे देश को जीतकर स्थानीय नवाब और राजाओं को दबाकर उन पर अपना शासन स्थापित किया। यह अध्ययन करने योग्य बात है कि उन्होंने अर्थव्यवस्था और समाज पर नियंत्रण स्थापित किया। उन्होंने आवश्यक

वस्तुओं को सस्ती कीमतों पर खरीदा। उन्होंने जरूरी फ़सलों की खेती कराई और उनकी इन कोशिशों से क्या बदलाव आए? ब्रिटिश शासन के समय मूल मान्यताओं में पसंद-ना-पसंद, रीति-रिवाज, रहन-सहन में क्या परिवर्तन हुआ?

अँग्रेजों द्वारा तैयार किए गए रिकॉर्ड इतिहास जानने का एक महत्वपूर्ण स्रोत होता है। अँग्रेजों की मान्यता थी कि चीजों का लिखना बहुत जरूरी है। उनके द्वारा लिए गए निर्णय, हर योजना, नीतिगत फ़ैसले, सहमति और जाँचों को साफ़-साफ़ लिखना बहुत जरूरी था, क्योंकि इनको लिखने के बाद उन पर गहन अध्ययन किया जा सकता था और उन पर वाद-विवाद भी किया जा सकता था। अँग्रेजों की इस पद्धति में ज्ञापन, टिप्पणी और प्रतिवेदन पर आधारित एक नई संस्कृति का जन्म हुआ। अँग्रेजों को इस बात का ज्ञान था कि तमाम दस्तावेजों और पत्रों को सुरक्षित रखना जरूरी है। लिहाजा उन्होंने इस बिंदु पर ध्यान देते हुए अभिलेख-कक्ष बनवाए। राजकीय दफ़्तर, कलैक्टर, कमिश्नर के दफ़्तर, प्रांतीय सचिवालय, कचहरी सभी के लिए उन्होंने रिकार्ड कक्ष बनवा दिए।

उन्नीसवीं सदी के आरंभ में प्रशासन की एक शाखा से दूसरी शाखा के लिए भेजे गए पत्रों और ज्ञापनों को आज भी इन अभिलेखागारों में ज़िलाधिकारियों द्वारा तैयार किए गए नोट्स और रिकॉर्डों को पढ़ा जा सकता है या ऊपर बैठे हुए अफ़सरों द्वारा प्रांतीय अधिकारियों को भेजे गए निर्देश और सुझाव पढ़े जा सकते हैं। उन्नीसवीं सदी के आरंभ समय में इन दस्तावेजों की सावधानीपूर्वक नक़ल कराई गई। इन दस्तावेजों के लिखने के लिए उन्हीं लोगों को नियुक्त किया जाता था, जिनका हस्तलेखन सुंदर होता था। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक छपाई की तकनीक का विकास हो गया और इस तकनीक के माध्यम से सरकारी विभाग के दस्तावेजों की कई-कई प्रतिलिपियाँ बनाई जाने लगीं। अँग्रेजों के औपनिवेशिक शासन के दौरान सर्वेक्षण का कार्य भी बहुत महत्वपूर्ण हो गया। अँग्रेजों का विश्वास था कि किसी देश पर शासन चलाने से पहले वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों का सही ढंग से अध्ययन कर लेना चाहिए।

उन्नीसवीं सदी के शुरुआती दिनों में अँग्रेजों ने पूरे देश का नक्शा तैयार करने के लिए बड़े स्तर पर सर्वेक्षण कराया। प्रत्येक गाँव में राजस्व सर्वेक्षण कराया। इस सर्वेक्षण से वहाँ की धरती, सतह, मिट्टी की गुणवत्ता, वहाँ के पेड़-पौधे, जीव-जंतुओं, जलवायु, स्थानीय इतिहास व कृषि फ़सलों का भी उन्होंने पता लगाया। अँग्रेजों को इस बात का ज्ञान था कि किसी क्षेत्र में शासन चलाने से पहले वहाँ की इन सभी बातों का ज्ञान होना आवश्यक है। उन्नीसवीं सदी के आख़िर से भारत में प्रत्येक दस साल बाद वहाँ के निवासियों की गणना की जाने लगी। जनगणना के माध्यम से सभी राज्यों में रहने वाले लोगों की संख्या, उनकी जाति, धर्म, इलाके उनके कार्यक्षेत्र के विषय में जानकारियाँ एकत्रित की जाती थीं। इसके अलावा वनस्पति सर्वेक्षण, प्राणी वैज्ञानिक सर्वेक्षण, पुरातत्वीय सर्वेक्षण मानवशास्त्रीय सर्वेक्षण, वन सर्वेक्षण और निम्न प्रकार के सर्वेक्षण किए जाते थे।

रिकॉर्ड्स के इस विशाल भंडार से हम बहुतकुछ पता लगा सकते हैं। इन रिकॉर्डों के माध्यम से ही यह पता चलता है कि सरकारी अफ़सर लोग क्या सोचते थे? उन अफ़सरों की दिलचस्पी किन-किन वस्तुओं में थी और वह किन-किन वस्तुओं को बचाए रखना चाहते थे। इन रिकॉर्ड्स से हमें समझने में यह मदद मिलती है कि देश के दूसरे लोग क्या महसूस करते

थे। उनकी कार्यवाहियों की क्या वजह थी?

जब हम ऐसे दूसरे स्रोतों की तलाश में निकलते हैं तो भी उनमें कोई कमी नहीं रहती, लेकिन सरकारी रिकॉर्ड के मुताबिक उनको ढूँढना कठिन साबित होता था। इस लिहाज से लोगों की डायरियों, तीर्थयात्राओं और यात्रा करते समय यात्रियों के वार्तालाप, महत्त्वपूर्ण लोगों की जीवनगाथा और स्थानीय स्तर पर बाजारों में बिकने वाली लोकप्रिय पुस्तक-पुस्तिकाएँ और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं। जैसे-जैसे छपाई की तकनीक आई और इसी तकनीक से अखबारों का जन्म हुआ और इन्हीं अखबारों के माध्यम से बाजार में लोगों में परस्पर विभिन्न मुद्दों को लेकर बहस की जाने लगी। अखबारों के माध्यम से ही नेताओं, समाजसुधारकों ने अपने विचारों को फैलाने का काम किया। कवियों और उपन्यासकारों ने अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए लिखा। लेकिन ये सारे स्रोत उन्हीं लोगों द्वारा रचे गए थे, जो पढ़ना-लिखना जानते होंगे। इनसे हम यह पता नहीं लगा सकते कि आदिवासी और किसान, खाद्यानों में काम करने वाले मजसदूर या सड़कों पर जिंदगी गुजारने वाले गरीब किस तरह अनुभवों से गुजर रहे थे।

संदर्भ

1. एंड्रियास वोल्वासेन, इंपीरियल डेल्ही: द ब्रिटिश कैपिटल ऑफ दी इंडियन एंपायर, सी०ए० बेली, सं०, एन० इलस्ट्रेटेड हिस्ट्री ऑफ़ मॉडर्न इंडिया, 1600-1947
2. कोल्सवर्दी ग्रांट, रूरल लाइफ़ इन बंगाल
3. कॉलिन कैपबेल, नैरेटिव ऑफ़ दि इंडियन रिवोल्ट फॉम इट्स आउट ब्रेक टू द कैप्चर ऑफ़ लखनऊ
4. गौतम भद्र०फ्रॉम इन इंपीरियल प्रॉडक्ट टू ए नेशनल ड्रिंक : दि कल्चर ऑफ़ टी कंजम्प्शन इन मॉर्डन इंडिया
5. मैथ्यु एच, एडने, मैपिंग एन एंपायर : द ज्योग्राफिकल कंस्ट्रक्शन ऑफ़ ब्रिटिश इंडिया
6. नॉमो इवेन्सन, दि इंडिया मेट्रोपॉलिस : ए व्यू टुवर्ड द वेस्ट
7. आर०एच० फिलीमोर, हिस्टॉरिकल रिकॉर्ड ऑफ़ द सर्वे ऑफ़ इंडिया
8. रॉबर्ट मोटगॉमरी मार्टिन, दि इंडिया इंपायर
9. रुद्रांगु मुखर्जी एवं प्रमोद कपूर, डेटलाइ-1857 : रिवोल्ट अगेंस्ट द राज
10. सूजन एस० बीन, पैंकी इंडिया : अमेरिकन कमर्शियल एंड कल्चर एन्काउंटर्स विद इंडिया इन पेज ऑफ़ सेल, 1784-1860
11. सूजन स्ट्रॉंग, सं, दि आर्ट्स ऑफ़ दि सिख किंगडम
12. एम०एस०के, सं० दी, गोल्डन काम: इन इंग्लिश लैडीज लाइफ़ इन मुगल डेल्ही : रेमिनिसेंसज़ बाप एमिली, लैडी कलाइब, बैली एंड बाप हर फादर सर टॉमस मेटकॉफ़ टॉमस मेटकॉफ़ इंपीरियल विजन : इंडियन आर्किटेक्चर एंड प्रिंटेंस राज
13. तिजीयाना एवं जियानो बाल्दीत्सोन, हिडेन ट्राइब्स ऑफ़ इंडिया

द्वारा श्री राजू चौहान
बड़े बिजलीघर के पीछे
रामपुर भूड रोड
हसनपुर (अमरोहा)

‘अंचल’ के काव्य में प्रगतिशील स्वर

डॉ० पूजा मुरारिया वधवा

हिंदी साहित्य में अनेक काव्यधाराएँ आईं और लुप्त हो गई हैं। जब किसी काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ क्षीण हो जाती हैं तथा दूसरी प्रकार की प्रवृत्तियाँ प्रमुख होने लगती हैं, तब एक नई काव्यधारा का सूत्रपात होता है। प्रगतिवादी काव्यधारा भी इसी का परिणाम है। पेरिस में सन् 1935 में स्थापित ‘प्रगतिशील लेखक संघ’ का प्रथम अधिवेशन भारत में सन् 1936 में हुआ, जिसकी अध्यक्षता महान् लेखक एवं साहित्यकार प्रेमचंद ने की। भारतेंदु युग से ही काव्य में नई मानसिक चेतना झलकने लगी। कवियों ने समाज को प्रगति की ओर ले जाने वाले विचारों, भावों को वाणी देना आरंभ कर दिया, जिसके फलस्वरूप प्रगतिवाद का उदय हुआ। ‘प्रगति अँग्रेजी के प्रोग्रेस’ का रूपांतर है। ‘प्रोग्रेस’ का अर्थ होता है, आगे बढ़ना, एक ऐसा परिवर्तन लाना, जो किसी वस्तु के गुण या परिमाण में वृद्धि ला सके।’ हिंदी साहित्य कोश के अनुसार—

‘प्रगतिवाद सामाजिक यथार्थवाद के नाम पर चलाया गया। वह साहित्यिक आंदोलन है, जिसमें जीवन और यथार्थ के वस्तुसत्य को उत्तर छायावादकाल में प्रश्रय मिला और जिसने सर्वप्रथम यथार्थवाद की ओर समस्त साहित्यिक चेतना को अग्रसर होने की प्रेरणा दी।’

प्रगतिवाद को मार्क्सवाद, साम्यवाद आदि नाम दिए गए। इसका मुख्य उद्देश्य साहित्य में सामाजिक यथार्थवाद का प्रशिक्षित करना, छायावाद की विकृतियों को नष्ट करके एक नए साहित्य की स्थापना करना था। प्रेमचंद के उपन्यासों में बौद्धिक जागरूकता देखने को मिलती है। प्रेमचंद ने छायावाद की प्रवृत्तियों का खंडन करते हुए आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का समर्थन किया।

अनेक लेखकों ने राष्ट्रीय चेतना, किसान, मजदूर, समाज के उपेक्षित वर्ग, पदलित वर्ग चेतना को अपनी लेखनी का विषय बनाया। श्री रामेश्वर शुक्ल अंचलजी भी उन्हीं प्रगतिवादी लेखकों में से एक प्रतीत होते हैं, यद्यपि इनके काव्य में सौंदर्य-वर्णन, प्रेम-पिपासा, तृष्णा आदि का वर्णन है, किंतु एक विशेष अवधि के पश्चात् इनकी रचनाओं में प्रगतिवाद का स्वर सुनाई देता है। इन्हें उत्तर छायावाद का मुख्य कवि माना जाता है।

बच्चन मूलतः आत्मानुभूति के कवि हैं, किंतु अंचलजी के काव्य में रूमानी संवेदना की प्रधानता लक्षित होती है। ‘किरण वेला’, ‘प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी’, ‘लाल चूनर’ में इनका प्रगतिवादी स्वर सुनाई देता है। अंचलजी के काव्य में वेग है। इनकी रचनाओं में निम्न वर्ग और पूँजीवाद के संघर्ष का चित्रण है।

मानव को आर्थिक, राजनीतिक, आंतरिक सामंजस्य से मुक्ति दिलाना एक सच्चे कवि का दायित्व होता है और अंचलजी इस आधार पर सही सिद्ध होते हैं। अंचलजी को समाज, राष्ट्र और प्रकृति का चित्रण करने वाला कवि माना जाता है। उनकी रचनाओं में विद्रोह के स्वर भी सुनाई देते हैं।

‘किरण वेला’ की अनेक कविताओं में आज की विसंगतियों का दबाव, जीवन का संघर्ष तथा उससे उत्पन्न पीड़ा का वर्णन है, किंतु कवि ऐसे में पराजय नहीं मानता। प्रगतिवादी कवि के रूप में अंचलजी आर्थिक विषमताओं तथा पूँजीवादी शोषण से मानव के लिए संघर्ष करते प्रतीत होते हैं।

डॉ० नगेंद्र ने मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित काव्यधारा को प्रगतिवादी काव्यधारा मानते हुए लिखा है। ‘यह नाम उस काव्यधारा का है, जो मार्क्सवादी दर्शन के आलोक में सामाजिक चेतना भावबोध को अपना लक्ष्य बनाकर चली।’³

डॉ० ओमप्रकाश शर्मा भी डॉ० नगेंद्र के विचारों से सहमत दिखाई देते हैं, ‘वे मानते हैं कि कवियों ने समाज को प्रगति की ओर ले जाने वाले विचारों, भावों में से मार्क्सवादी विचारों को वाणी देना आरंभ कर अपना दृष्टिकोण संकीर्ण बना लिया और उसका नाम प्रगतिवाद रख दिया।’⁴

‘अंचल’ स्वयं को प्रगतिवादी कवि नहीं मानते। इनकी रचनाओं में अनेक स्थानों पर शोषक-शोषित, पूँजीपति-गरीब, मालिक-मजदूर का वर्णन देखने को मिलता है। अनेक रचनाओं में मार्क्सवाद का प्रभाव दिखाई देता है, किंतु ‘अंचल’ ने स्वयं यह स्वीकार किया कि सामाजिक अनुभवों से प्रेरित होकर जनता के अभाव, उत्पीड़न और शोषण का वर्णन इन्होंने किया है। ‘किरणवेला’ में ‘मजदूर की अंधी लडुकी’, ‘बढ़ते आते’, ‘विद्रोही’, ‘युगप्रतीक’, ‘विसर्जन’, ‘शोषिता’ आदि अनेक ऐसी कविताएँ हैं, जिनमें प्रगतिशीलता का स्वर प्रधान है।⁵ उन्होंने व्यंग्यात्मक शैली में समाज का अहित करने वाली रूढ़ियों का विरोध किया। अंचलजी के काव्य में प्रगतिवाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ मिलती हैं—

क्रांति का आह्वान

‘अंचल’ के काव्य में क्रांति का बहुत ऊँचा स्वर सुनाई पड़ता है। इन्होंने सामाजिक, आर्थिक तथा बौद्धिक क्रांति का समर्थन किया। क्रांति का विचार प्रगतिवादी कवियों को रूस से मिला। अनेक कवियों ने मार्क्स के क्रांतिकारी विचारों का समर्थन किया। ‘पंथ-दान’ कविता में ‘अंचल’ क्रांति की माँग करते हैं—

‘है जाग रहा कितनों का गम, पर तेरा तो सबसे महान,
ओ मानवता के संकेतक! युग माँग रहा है पंथ-दान।’⁶

‘मरण त्योहार’, ‘सहसा किसने यों ललकारा’, ‘आह्वान’, ‘मानव की राह यह’, ‘लालचीन’, ‘मेरा शोणित करता क्रंदन’ को दर्शाया है।

दलितवर्ग के प्रति सहानुभूति

समाज में शोषक और शोषित ये दो वर्ग हमेशा से हैं। अनेक कवियों ने इस वर्ग-वैषम्य को मिटा देने के प्रयत्न किए। ‘अंचल’ ने भी इस दिशा में अनेक गीत लिखकर समाज को साम्यवाद की प्रेरणा दी। उनके मन में दलितवर्ग के प्रति सहानुभूति का भाव विद्यमान रहा। उन्होंने अपने अनेक गीतों में किसानों, मजदूरों को संगठित होकर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने को कहा। ‘अंचल’ ने ‘सर्वहारा’ कविता में गरीबों की आर्थिक स्थिति का चित्रण किया—

‘यही परिवार खड़ा है, भूखे शिशु अकुलाती माता,
बच्चे से जिसको केवल पैदा कर देने का नाता।’⁷

कवि ने कृषकों की स्थिति का चित्रण किया है तथा दूसरी ओर विलासिता का जीवन जीने वाले धनवानों से उनकी तुलना करके विषम स्थिति का वर्णन किया है। वह 'मज़दूर की अंधी लड़की' में निर्धन व्यक्ति की दीन अवस्था का वर्णन करता है—

'दृष्टि-हीन दुर्गंध भरी वह,
भूख गंदगी, नग्न गरीबी में,
कहीं नहीं मेहनत मज़दूरी भी कर सकती।'⁸

राष्ट्रीय चेतना

प्रगतिवादी कवियों की अनेक रचनाओं को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें राष्ट्रीय चेतना से कोई सरोकार नहीं, परंतु वास्तव में ऐसा नहीं है। प्रगतिवादी कवि मार्क्सवादी विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित हुए, जिसके फलस्वरूप उन्होंने दलितवर्ग से जुड़ी हुई रचनाएँ लिख डालीं। 'अंचल' के काव्य में राष्ट्रीय प्रेम के अनेक गीत मिलते हैं। 'युग प्रतीक' में 'अंचल' कहते हैं—

बढ़ते ही जाते हो शोषण की प्रतिहिंसा से मतवाले,
नई सुबह से पहले ही तुम मानवता का वैषम्य मिटाते,
किन संघर्षों के भूखे तुम आज चिता पर सेज बिछाते।⁹

राष्ट्रीय चेतना में सांप्रदायिक भावों का विरोध करने वाले, युद्ध के स्थान पर शांति की स्थापना करनेवाले तथा नवनिर्माण की कामना के सूचक गीत आते हैं। 'अंचल' देश की उन्नति के लिए वर्गवैषम्य को दूर करना चाहते हैं। इनकी रचनाओं में देश की धरती के प्रति प्रेम के भाव व्यक्त हुए हैं। 'अंचल' के हृदय में अपने देश के प्रति प्रेमभाव अनेक गीतों में झलकता है। 'जनगीत' में कवि का राष्ट्रप्रेम व्यक्त होता है—

जयलोक-युद्ध, जयलोक-गीत, जयलोक-शक्ति, जयलोक वीर
जयगान तुम्हारे गाने को जन-जन की वाणी है अधीर¹⁰

'अंचल' ने 'दुर्गावती', 'गांधी, तुलसीदास, बापू को विषय बनाकर अनेक गीत लिखे। 'इनको भूल ना जाना', 'आलोक नहीं मरता है', 'जन-जन के मन में', 'नवयुग की दीवारें' आदि अनेक ऐसे गीत हैं, जिनमें 'अंचल' की राष्ट्र के प्रति चेतना को जाग्रत करने के भाव दिखाई देते हैं।

लोकचेतना

प्रगतिवादी काव्य से पूर्व काव्य में लोकजीवन के प्रति प्रेम का अभाव है, प्रगतिवादी कवियों का काव्य जनजीवन का काव्य है, इसलिए इनके गीतों में लोक-उत्सव, तीजत्यौहार, रहन-सहन का वर्णन है। 'अंचल' ने भी अपने चारों ओर के दैनिक क्रिया-कलापों, उत्सवों का वर्णन किया है। 'यह फागुन की रात', 'मधुगीत', 'रस के बूँदा परै', 'आना जाना जरूर पंथी सावरियाँ' आदि अनेक गीत हैं, जिनमें 'अंचल' ने ग्रामीण जीवन तथा आंचलिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है।

समसामयिक बोध

'अंचल' ने प्रगतिवादी कवियों के समान केवल रूप का ही गुणगान नहीं किया, अपितु

अपने समय की तथा राष्ट्र की समस्याओं पर भी विचार किया। वे अपने समय की राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं से लोगों को अपने गीतों के माध्यम से अवगत कराते रहे। उन्होंने बेकारी, गरीबी, विभाजन, गांधीजी की हत्या आदि का उल्लेख किया। 'वेद ऋचाएँ थी साँसों में', 'बापू', 'गाँधी के निधन के बाद प्रथम स्वाधीनता दिवस', 'काफ़िला' आदि अनेक ऐसे गीत हैं, जिनके माध्यम से 'अंचल' लोगों को सचेत रहने का उपदेश देते हैं—

जिसको अनगिनत शहीदों ने अपने बलिदानों से आँका,
लघुता के क्षुद्र धरातल में सोया संहारक बल लेकर,
तुम नूतन अभियानों से ये अवरोधी मार्ग बदल डालो!¹¹

'अंचल' ने प्रगतिवादी कवियों के समान संपूर्ण विश्व को एक ही दृष्टि से देखा। 'लाल चीन' कविता में 'अंचल' अनेक समस्याओं का वर्णन करते हैं।

व्यंग्यबोध

प्रगतिवादी कवियों का व्यंग्य बड़ा तीखा है। गरीबी तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण इन कवियों ने धर्म के प्रति कहीं-कहीं अनास्था का भाव व्यक्त किया है। 'अंचल' ने 'वर्तमान', 'नवयुग का दीप जलाये', 'मरणत्यौहार', 'जमींदार और किसान', 'पूँजीपति और मजदूर' आदि गीतों में व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग है। व्यंग्य के द्वारा 'अंचल' ने पूँजीपतियों को निम्नवर्ग का शोषण करने से रोका है।

प्रकृति-चित्रण

प्रगतिवादी कवियों में छायावादी कवियों के समान सौंदर्य से भरा वर्णन नहीं है। इन कवियों ने अपनी कविताओं में सादगी से युक्त प्रकृति-चित्रण किया है। बसंत के आगमन पर कवि कहीं-कहीं मादकता से युक्त सौंदर्य से हटकर भिन्न प्रकार का प्रकृति-चित्रण करता है। प्रगतिवादी काव्य के प्रकृति-चित्रण का ही नई कविता के प्रकृति-चित्रण में विकास हुआ है। 'अंचल' ने थके-हारे किसानों का वर्णन किया है। कहीं-कहीं कवि को उदासी के भाव दिखाई देते हैं—'लादे सदियों का भार चला जा रहा मूक तेरा जीवन।'

नारी-भावना

प्रगतिवादी कवियों की सच्ची सहानुभूति दलितवर्ग के प्रति दिखाई पड़ती है। 'अंचल' ने नारी को युगों से शोषण और अत्याचार की शिकार दिखाया है। यदि मानव ने नारी का श्रृंगार भी किया, तो उसके पीछे उसका अपना स्वार्थ ही दिखाई पड़ता है। 'अंचल' ने नारी की स्वतंत्रता के विषय में भी अनेक कविताएँ लिखीं। 'अंचल' ने नारी को अत्याचारों से मुक्त कराने की अपने गीतों में कोशिश की है। नारी-जाति को संकोच तथा भय त्यागने के सुझाव दिए हैं। 'अंचल' ने नारी के प्रति जिस प्रकार का चित्रण किया है, वह यथार्थवाद से युक्त है। यद्यपि 'अंचल' ने नारी के प्रेम को अपना संबल माना है। अनेक स्थानों पर उसके गुणों के बजाय शरीर का ही चित्रण किया है—

'भरे-भरे आते हैं क्यों ये तेरे व्याकुल नलिन-नयन?
किस रोदन से किस उसाँस से फूल उठा स्नेहाकुल मन'¹²

निष्कर्ष

‘अंचल’ ने प्रगतिवादी विचारधारा को अपने गीतों में स्थान दिया। यद्यपि वे स्वयं को प्रगतिवादी नहीं मानते, किंतु उनकी रचनाओं में क्रांति, हिंसा, अत्याचार का विरोध, शोषक तथा शोषित का वर्णन दृष्टव्य है। उनके गीतों में राष्ट्र के प्रति प्रेम का वर्णन ठीक वैसा ही है, जैसा प्रगतिवादी कवियों में है। ‘अंचल’ के काव्य में साधारण जनजीवन से उपमान लेकर भाषा को सहज तथा स्वाभाविक रूप से अलंकृत किया गया है। उन्होंने अनेक प्रकार के अलंकारों का प्रयोग अपनी प्रगतिशील कविताओं में किया है। ‘किरणवेला’, ‘करील’, ‘लालचूनर’ ऐसे संग्रह हैं, जिनके गीतों में ‘अंचल’ का प्रगतिवादी स्वर सुनाई देता है।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य कोश भाग-1, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, संपादक धीरेंद्र वर्मा, पृ० 509
2. वही, पृ० 511
3. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ० नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृ० 622
4. आधुनिक हिंदीकाव्य की प्रवृत्तियाँ, डॉ० ओमप्रकाश शर्मा, वोहरा प्रकाशन जयपुर, पृ० 75
5. ‘अंचल’ समग्र, हिंदी प्रचारक संस्थान पिशाचमोचन (किरणवेला) पृ० 682
6. वही, पृ० 72
7. वही, पृ० 104
8. वही, पृ० 102
9. ‘अंचल’ समग्र, करील, पृ० 149
10. वही, पृ० 159
11. वही, पृ० 157
12. ‘अंचल’ समग्र, हिंदी प्रचारक संस्थान पिशाचमोचन (करील), पृ० 160

डॉ० पूजा मुरारिया वधवा
प्रवक्ता, विद्यादीप डिग्री कॉलेज
बिलासपुर, सहारनपुर (उ०प्र०)

प्राचीन भारतीय राजा के 'अधिकार और दायित्व'

डॉ० पूनम शर्मा

राजा का दायित्व अपने देश में शांति, सुरक्षा बनाए रखना, प्रजा के कल्याण के लिए प्रति क्षण सजग रहना है। आंतरिक उपद्रवों से सुरक्षा और बाह्य आक्रमणों से उत्पन्न युद्धजन्य परिस्थितियों ने ही राजा की आवश्यकता को जन्म दिया। राजा को प्रजा की रक्षा करनी ही है, अतः उसको विशेष अधिकार दिए गए थे। जिस युग में प्रजा ने राजा का निर्वाचन किया था, वही राजा को प्रजा का संरक्षक मानता था, स्वामी नहीं। उसके अधिकार सीमित थे।¹

राजा स्वेच्छाचारी नहीं था। राजकोष उसकी व्यक्तिगत संपत्ति नहीं थी। व्यक्तिगत उपयोग के लिए वह स्वेच्छाचारी बनकर राजकोष का उपभोग नहीं कर सकता था।²

राज्याभिषेक के अवसर पर उसे प्रतिज्ञा करनी होती थी, वह स्वेच्छाचारी नहीं होगा और प्रजा की रक्षा करेगा।

कौटिल्य ने राजा और सैनिक को समान कोटि में रखा था। दोनों प्रजा की रक्षा करते हैं और राज्य से वेतन प्राप्त करते हैं। राज्य-अभिषेक की प्रक्रियाओं से स्पष्ट है कि राजा सीमित अधिकारों से संपन्न और स्वेच्छाचारी नहीं है। प्रजा के प्रतिनिधि उस पर नियंत्रण रखते हैं।³

राज्याभिषेक से पहले दिन राजा को रानियों के घरों पर जाना होता था। विशेष विधि को संपन्न करके राजा को राज्याभिषेक के लिए अनुमति देते थे। अगले दिन राज्याभिषेक समारोह होता था। राज्याभिषेक सभा के सदस्य और प्रजा के प्रतिनिधि राजा की गति-विधियों पर नियंत्रण रखते थे। उनकी सहमति के बिना राजा के लिए अपनी स्थिति को बनाए रखना कठिन ही था।

वैदिकयुग के बाद राजा के अधिकारों में वृद्धि हुई। राज्यों के विस्तार, राजाओं की सैन्य शक्ति को बढ़ाया गया। अब राजाओं पर नियंत्रण रखने वाली और उसको निर्वाचित करने वाली संस्थाओं की तुलना में राजा की शक्ति अधिक होगी। मूल-ग्रंथों के निर्माण के अंत तक लगभग पाँचवीं शताब्दी ई०पू० तक राजा पूर्णतः अधिकार-संपन्न हो चुका था। मंत्रिमंडल तथा अन्य राजकीय संस्थाओं के सदस्य राजा द्वारा नियुक्त किए जाने लगे थे। उनका कार्य केवल मंत्रणा ही देना रह गया था।

महाभारतकार का कहना है कि राजा ही काल का कारण होता है और यह काल राजा का कारण है। इस विषय में संशय करने की आवश्यकता नहीं है। राजा को चाहिए कि वह पूर्ण रूप से दंड का पालन करे। इसी अवस्था में सतयुग का प्रवर्तन होता है और अधर्म नहीं रहता, सब अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं।⁴

राजा द्वारा दंडनीति के तीन चौथाई अंश का पालन करने पर त्रेतायुग, आधा अंश का

पालने करने पर द्वापर युग और पालन न करने पर कलयुग होता था।⁵ सतयुग का सृष्टा राजा ही है। त्रेता, द्वापर और कलयुग का कारण भी राजा ही है।⁶

परंतु राजा के दैवी अधिकारों से संपन्न होने और निरंकुश हो जाने पर भी धर्म का दबाव इतना अधिक था कि उसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता ही था। राजशास्त्र के लेखकों ने यह स्पष्ट कर दिया था कि राजा को मनमानी करने का अधिकार नहीं है। उसको राजकीय विभागों में शास्त्रीय मर्यादाओं का पालन करना चाहिए। इसके साथ ही पुरोहित और विद्वान राजा को न्याय युक्त हितकारी उपदेश देते रहते थे। वह राजा की अपेक्षा अधिक सम्मानित थे। वृहदारण्यक उपनिषद् में कहा है कि धर्मबल पर निर्बल व्यक्ति भी सबल पर अधिकार कर सकता है, जो धर्म है, वह सत्य है। धर्म तथा सत्य एक ही है।⁷

कामंदकों का कथन है कि न्यायाधीशों को निर्भय होकर राजा की गलतियाँ बतानी चाहिए। कौटिल्य ने कहा था कि अविनीत और अनुशासनहीन राजा पर विपत्तियाँ आ सकती हैं। बुरे और अयोग्य राजा का प्रजाजन परित्याग कर देते हैं।⁸

परंतु यह सारी बातें सिद्धांत में रहीं। व्यावहारिक रूप में राजा सर्वोपरि हो चुका था। वह सर्वसर्वा था और अपरिमित शक्तियों का स्वामी था। उस पर कोई भी व्यक्ति नियंत्रण नहीं कर सकता था। मनु और पारासर ने स्पष्ट कह दिया था कि राजा ब्रह्मा है, शिव है, विष्णु है, इंद्र है। कर्मों के अनुसार प्रजा के लिए वह दाता, नियामक है। नारद का कहना है कि राजा किसी के आश्रित नहीं है, वह नियंत्रित है। प्रजा उसके आश्रित है, पर शास्त्रों के विरुद्ध वह भी नहीं जा सकता।

राजा का अधिकार राजकोष और सेना पर भी हो गया था। उपग्रह, ग्रह, नीति, विदेश नीति के निर्धारण में पूरी तरह से स्वच्छंद था। करों का निर्धारण भी वहीं करता था। न्याय का सर्वोच्च अधिकारी था। राजा की प्रसन्नता और क्रोध किसी भी व्यक्ति के लिए सुख और दुःख के कारण बन सकते थे।

राजा की प्रसन्नता में लक्ष्मी, पराक्रम में विजय और क्रोध में मृत्यु का निवास मान लिया था।⁹ दैवत्य की प्रतिष्ठा हो जाने पर राजा के अधिकारों में और वृद्धि हुई। धर्मशास्त्रकारों और पुरोहितों ने राजा के दैवत्य का और असीमित अधिकारों का समर्थन किया। भौतिक बल के साथ ही साथ राजा ईश्वरीय बल से भी संपन्न हो गए। राज्य के साथ ही उनको धर्म पर भी पूरा अधिकार प्राप्त हो जाने से वे पूर्णतः निरंकुश हुए। धर्मशास्त्रकारों ने कहा है कि राजनिंदक और राजद्वेषी व्यक्ति न केवल भौतिक सुखों से वंचित होता है, अपितु परलोक में भी बुरी गति को प्राप्त करता है।

इस युग में ऐसी अवस्था में राजा को सन्यमार्ग पर लाने पर और कर्तव्य का पालन करने के लिए कर्तव्य की भावना ही सबल हो सकती थी। परलोक से डरने वाले और धार्मिक भावना से प्रवाहित राजा अपने कर्तव्य का पालन करते थे। वह प्रजा को सुख, समृद्धि और सुरक्षा प्रदान करते थे। शास्त्रों के शासन में प्रजाओं को दुःखों और कष्टों से तथा आपत्तियों से बचाने वाला राजा कोई रक्षक नहीं था। (मनुस्मृति, 7/11)

चाटुकार लोग निरंतर राजा की प्रशंसा में लगे रहते थे। वह राजा के अंदर अविद्धमान गुणों की अभिव्यंजना करते थे। कादंबरी में शुकनासोपदेश से यह स्पष्ट होता है।¹⁰

कर्तव्य

शास्त्रों में राजा के कर्तव्यों का विस्तार से वर्णन किया गया है। प्रजा के द्वारा राजा को

कर दिया जाता है। राजा प्रजा की रक्षा करता है। राजा में इंद्र, वरुण आदि देवताओं के अंशों की कल्पना की गई है। उनमें जो गुण है, वही राजा के कर्तव्य हैं। इंद्र विजय प्राप्त करता था। राजा को भी शत्रु पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। वरुण प्रजा का कल्याण करता है। पापी और अपराधियों को दंड देता है। अतः राजा को भी प्रजा का कल्याण करना चाहिए, दुष्टों को दंड देना चाहिए, दूरदृष्टि वाला होना चाहिए। राज नियमों का पालन करना चाहिए। प्रजा में सुख-शांति बनाई रखनी चाहिए।

प्राचीन शास्त्रों के अनुसार प्रजा के सुख में अपना सुख, प्रजा के हित में अपना हित होना चाहिए।¹¹ राजा का शरीर भोगों को भोगने के लिए नहीं, प्रजा की रक्षा के लिए होता है। धर्म की रक्षा के लिए राजा होता है। महाभारत में राजा के कर्तव्य कहे गए हैं—यज्ञ करना, दान देना, प्रजा की रक्षा करना, धर्म का पालन करना, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना, मित्रों का पालन करना।¹² विष्णुधर्मोत्तरपुराण में राजा के कर्तव्य इस प्रकार बताए गए हैं—

1. प्रजा की रक्षा और पालन करना।
2. वर्णाश्रम धर्म के नियमों का पालन करना।
3. दुष्टों को दंड देना।
4. न्याय करना।¹³

संस्कृत कवियों ने राजा के कर्तव्यों का विस्तृत निर्देश किया है।³ मुरारी नामक कवि का कथन है—

1. राजा वैदिक संस्कृत का रक्षक है।
2. उत्तरीय का संस्थापक है।
3. यज्ञ आदि क्रियाओं की अवधि संपन्न कराता है।
4. धर्म, दान, दया, वीरता उसमें होनी चाहिए।
5. लोकरक्षा रूपी यज्ञ में दीक्षित होता है।
6. उसके राज्य में प्रजा प्रसन्न रहती है।
7. सज्जन लोग संतुष्ट रहते हैं।
8. ब्राह्मण उसकी विजय की कामना करते हैं।¹⁴

राजा राजसूय और अश्वमेध यज्ञों को संपन्न करता है। धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करता हुआ राजा प्रजा की रक्षा करता है। वह राज्य का शासन अपने मंत्रियों और गुरुजनों के परामर्श से करता है। तप और दान राजा के कर्तव्य हैं। घर में आए याचकों की कामना उसे पूरी करनी चाहिए। तपोवन की रक्षा करनी चाहिए। ब्राह्मण, ऋषियों, पुरोहितों आदि के प्रति विनीत व्यवहार करना चाहिए।¹⁵

यज्ञ करना

यज्ञों का संपादन करना, राजाओं का प्रमुख कर्तव्य था। यज्ञों का राजनीतिक उपयोग भी था। अश्वमेध और राजसूय यज्ञों का राजनीतिक उपयोग अधिक था।¹⁶

राजा स्वयं यज्ञ करे और अपनी प्रजा में यज्ञों को संपादन कराए। दान देना राजा का परम कर्तव्य था, देशकाल का विभाजन करके शतपात्र के लिए दान देना धर्मवृद्धि करता है।¹⁷

राजा का कर्तव्य है कि असहाय, वृद्ध, अंगहीन, पागल, विधवा, अनाथ, रोगी आदि की सहायता करे।¹⁸

वर्णाश्रम व्यवस्था

वर्णाश्रम व्यवस्था भारतीय संस्कृति का मूल और समाज की संरचना का आधार है। इस परंपरा की रक्षा करना राजा का परम कर्तव्य माना गया था। महाभारतकार में चातुर्वर्ण वर्ण की धर्म की रक्षा करना राजा का सनातन धर्म माना है।¹⁹

धर्मशास्त्रों के अति संस्कृत कवियों ने भी राजा के इस कर्तव्य का समर्थन किया है। महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंश काव्य में राजा के कर्तव्य की ओर संकेत किया है।²⁰

प्रजा की रक्षा और मनोरंजन करना

प्रजा की रक्षा करना, पालन करना, मनोरंजन करना, राजा के प्रमुख कर्तव्य माने गए हैं। शुक्र ने लिखा है कि प्रजा का परिपालन और दुष्टों का निग्रह राजा के परम धर्म हैं।²¹

महाभारत में लिखा है कि प्रजा का रंजन करने के कारण ही राजा को राजा कहते हैं।²²

लोक का रंजन करना, राजा का सनातन धर्म है।²³

कालिदास का कथन है कि प्रजा का रंजन करना ही राजा का कर्तव्य है।²⁴

भावभूति की मान्यता है, राजा प्रजा के अनुरंजन में तत्पर रहे।²⁵

राजा को प्रिय से प्रिय वस्तु का त्याग करना भी पड़ सकता है।²⁶

उत्तम शासन द्वारा प्रसन्न करने के कारण ही राजा को राजा कहा जाता है।²⁷

प्राचीन राज शास्त्री का कहना है कि राजा को प्रजा के प्रति, पिता के समान व्यवहार करना चाहिए। याज्ञवल्क्य ने भी लिखा है कि राजा को प्रजा के प्रति व सेवकों के द्वारा पितृतुल्य व्यवहार करना चाहिए।²⁸

रामायण में राम के गुणों का वर्णन किया गया है—

राम प्रजा के साथ पितृवत् व्यवहार करते थे। प्रजा के दुःख में दुःखी होते थे। प्रजा के आमोद-प्रमोद में लगे रहते थे।²⁹

प्रजा के हित की दृष्टि से सम्राट अशोक ने यह घोषणा की थी—

मेरे भोजन के समय, मंत्रणा के समय, अंतःपुर में रहते समय, मनोरंजन के समय भी प्रजा अपना निवेदन प्रस्तुत कर सकती है।

न्याय की व्यवस्था

प्रजा में न्याय का वितरण करना भी राजा का प्रमुख कर्तव्य है। वह सर्वोच्च न्यायाकृत होता है। न्यायी राजा की कीर्ति चारों ओर फैलती है।

यूँ तो भ्रष्टाचार हर युग में रहता है। पहले भ्रष्टाचार आटे में नमक के बराबर होता था, लेकिन आज यह दानवरूपी हो गया है। चारों ओर फैला यह भ्रष्टाचार हमारे समाज और देश की नींव को खोखला कर रहा है। हमारा देश प्राचीन काल से एक संस्कृति में बँधा देश है इस देश की संस्कृति और समृद्धि ने विश्व के देशों को अपनी ओर आकर्षित किया। नीचे कुछ पंक्तियाँ दी हैं, जिससे पता चलता है कि भ्रष्टाचार बहुत प्राचीन है और अब यह कैसे दानव के समान विस्तृत हो गया—

यूँ तो रहा है हर देश में भ्रष्टाचार,
लेकिन आज कल ज्यादा हो गई भरमार।
पहले था यह ऐसे जैसे आटे में नमक,

अब जरूरी है है हर भ्रष्टाचारी को सिखाना सबक।

हमारा देश हमेशा से अति आकर्षक रहा है। इसी आकर्षण के कारण हमारे देश पर विदेशी आक्रांता ललचाई दृष्टि से देखने लगे और योजनाबद्ध तरीके से इस संस्कृति-प्रधान देश पर आक्रमण के लिए उतावले हो गए। उन्होंने आक्रमण के द्वारा इस देश की संस्कृति और समृद्धि को तहस-नहस कर दिया। जब विभिन्न देशों की संस्कृतियाँ एक जगह इकट्ठी हुईं तो इन संस्कृतियों में आपसी संघर्ष होना शुरू हो गया।

यूँ तो भ्रष्टाचार ने अपने पैर एक दिन में नहीं पसार लिए होंगे। इस भ्रष्टाचार को विकसित होने के लिए बहुत लंबा समय लगा होगा। समय इस बात का प्रमाण है कि भारत ने कुरीतियों के विरुद्ध का कठोर संघर्ष किया है और इन कुरीतियों पर देश ने विजय प्राप्त की है। जब विदेशी आक्रांता यहाँ आए तो उन्होंने संस्कृति और नीतियों को तोड़-मरोड़कर रख दिया और उन्होंने यहाँ की छिन्न-भिन्न संस्कृति का लाभ उठाया। नीचे पंक्तियाँ देखिए—

लाभ उठाते हैं विदेशी भी इस बात का,
कि संकटमय है भारत, लाभ उठाओ संताप का।
इसलिए हो जाएगा इस पर विदेशी राज,
धूल में मिल जाएगी शान-शौकत और साज।

विदेशियों ने हमारी वैदिककालीन शिक्षा को तहस-नहस कर दिया। वैदिककालीन शिक्षा का खर्चा स्वयं विद्यार्थी के अभिभावक वहन करते थे। भारतीय शिक्षा में जीवन की परम सुख की प्राप्ति का लक्ष्य रखा जाता था। आचार्यकुल में विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे और देश की संस्कृति और विकास में पूर्ण सहयोग करते थे। प्राचीनकालीन शिक्षा पर आधारित ये पंक्तियाँ देखिए—

पढ़ाते थे निःस्वार्थ होकर सभी गुरुजन,
शिक्षा ऐसी थी जिससे हो जाए सज्जन।
देते थे तन-मन से पूर्ण सहयोग विद्यार्थी को,
इसलिए नहीं कोई रह पाता उनकी शिक्षा से दुर्जन।

अँग्रेजों ने वैदिककालीन शिक्षा को समाप्त कर पाश्चात्य शिक्षा को बढ़ावा दिया और शिक्षा पर आने वाले खर्च का व्यय सरकार स्वयं वहन करने लगी, क्योंकि सरकार को सरकार चलाने के लिए अपनी शिक्षा-पद्धति के द्वारा तैयार किए गए अफ़सरों की आवश्यकता थी। आज हमारा देश अपनी सभ्यता को छोड़कर पैसों के पीछे भाग रहा है। शिक्षण-संस्थाएँ व्यवसाय के रूप में उभरकर सामने आ गईं। इनका उद्देश्य शिक्षा देना नहीं, बल्कि धन कमाना है और धन को अर्जित करना है, क्योंकि हम बात देशी करते हैं और मानसिकता विदेशी रखते हैं और अपना देश भी आपसी संघर्ष में भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रहा है। नीचे पंक्तियाँ देखिए—

बढ़ावा मिलता है आपसी संघर्ष से भ्रष्टाचार को,
तरस रही है चारों तरफ़ जनता पाने के लिए न्याय को।
अगर बढ़ता रहा यह दिनो-दिन भ्रष्टाचार,
तो फ़ायदा कुछ भी जीवन का नहीं, हो बेकार।

जब पाश्चात्य शिक्षा में सुख का प्रमुख आधार धन है तो वहाँ भ्रष्टाचार होना आवश्यक

हो जाता है। जब विदेशी सोच हम अपने मन में रखते हैं और अपनी वैदिक संस्कृति को त्याग देते हैं तो भ्रष्टाचार ही होगा। अगर हम भ्रष्टाचार को दूर करना चाहते हैं तो हमें इसे रोकने के लिए अंकुश लगाना होगा। नीचे पंक्तियाँ देखिए—

इसलिए लगाना होगा हमें भ्रष्टाचार पर अंकुश,
तब ख़त्म हो जाएगा यह राज निरंकुश।
इसलिए ख़त्म करना होगा हमें आज,
अगर रखनी चाहते हो मानवता की लाज।

यह हम नहीं कह सकते कि भ्रष्टाचार हमारे ही देश में है, अपितु विश्व के सभी देशों में अपनी जड़ों को जमा चुका है। यह किसी देश में कम और किसी में ज्यादा है। हमारी संस्कृति विश्व की संस्कृतियों से प्रधान है। अगर हमें वास्तव में भ्रष्टाचार को मिटाना है तो हमारी खोई हुई वैदिक शक्ति को पुनः प्रदान करना होगा, क्योंकि यह कल्याणकारी थी। इस संस्कृति में पवित्रता, तप, विनम्रता, संतोष आदि की प्रधानता बनी रहती है। अगर हम वैदिक दृष्टि से देखें तो हमें प्रकृति से उतना ही लेना चाहिए, जितना आवश्यक है। अगर हम प्रकृति से ज्यादा संचय करते हैं तो पर्यावरण का संतुलन डगमगाने लगता है। वैसे ही जब एक व्यक्ति भ्रष्टाचार से अधिक धन संचित कर लेता है तो रक्तक्रांति होना स्वाभाविक है।

शत्रुओं का विनाश और आंतरिक सुरक्षा

राजा के पद का आविर्भाव युद्धजन्य परिस्थितियों ने किया। अतः उसको अपनी प्रजा की रक्षा के लिए युद्ध-संचालन में निपुण, सेना संचालन में निपुण, गुप्तचरों द्वारा शत्रुओं की गतिविधियों की जानकारी होनी चाहिए।

संक्षेप में अपनी प्रजा की रक्षा, वर्णाश्रम व्यवस्था, न्याय-व्यवस्था, दुष्ट-दमन, भयों से प्रजा की रक्षा, शत्रुओं पर विजय आदि राजा के प्रमुख कर्तव्य हैं।

संदर्भ

1. तं हि विशो न राजनं वृणाना ऋग्वेद 10-104-8
2. कौटिल्य अर्थशास्त्र 4, 2-3-5
3. महाभारत 1258, 115, 116
4. कालो वा कारणं राज्ञः राजा वा कालकारणम्,
इति ते संशयो मा भूद् राजा कालस्य कारणम्।
दंडनीत्यां यथा राजा सम्यक् कात्स्येन वर्तते,
तदा कृतयुगं माम कालः श्रेष्ठः प्रवर्तते। —महाभारत शांतिपर्व 69, 6-1
5. महाभारत 69, 14-24
6. राजा कृतयुगसृष्टा त्रेतायाः द्वपरस्य च,
युगस्य च चतुर्थस्य राजा भयति कारणम्। —वही 69.25
7. वृहदारण्यक उपनिषद्-4-14
8. यस्य प्रसादे पद्या श्रीविजययच्छ पराक्रमे,
मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयो हि सः।

9. अपरे तु स्वार्थनिष्पादनपरैर्धनं पिशित-ग्रासं गृध्रैस्थाननलिनीबकैः,
धूतं विनोद-इति, पराराभिगमनं वैदग्ध्यमिति, मृगया श्रम इति, पानं विलास इति। -कादंबरी पृ० 332
10. प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्,
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु हितं हितम्। -अर्थशास्त्र 1.19
11. यज्ञं देहि प्रजां रक्ष धर्मं समनुपालय,
अमित्रान् अहि कौन्तेय मित्राणं परिपालय। -महाभारत 12.13
12. धर्मशास्त्र इतिहास-8.2 पृ० 601
13. अनर्घराघव 7.10
14. अनर्घराघव 7.11
15. अनर्घराघव 25.26
16. यज्ञेन राजा कर्तुंभिविधैराप्तदक्षिणैः,
धर्मार्थं चैव विप्रेभ्यो दधाद्रोगांधनानि च। -मनुस्मृति 7.79
17. आश्वलायन श्रौतसूत्र 10.6
ऐतरेय ब्राह्मण 49.1
18. स्वे-स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः,
वर्णानामाश्रमाणां च राजा सृष्टोडघऽभिरक्षिता। -मनुस्मृति 7.35
19. चातुर्वर्ण्यस्य धर्माशयं रक्षितव्या महीभूताः,
धर्मसंकररक्षा च राजा धर्मः सनातनः।
महाभारत शांतिपर्व 57.25
20. नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत्स एव धर्मो मनुना प्रणीतः,
निर्वासिताऽप्येवमतस्त्वयाऽहं तपस्विसामान्यमवेक्षणीया। -रघुवंश 14.67
21. नृपस्य परमो धर्मः प्रजानां परिपालनम्,
दुष्टनिग्रहणं चैव न नीत्या ते बिना ह्युभे। -शुकनीतिसार 1.14
22. रंजितःश्व प्रजाः सर्वांस्तेन राजेति शब्दसते। -महाभारत शांतिपर्व 54-125
23. लोकरंजनमेवात्र राजा धर्मः सनातनः, -वही 57.11
24. राजा प्रकृतिरेजनात्। -रघुवंश 4.12
25. युक्तं प्रजानाममनुरेजने स्यास्तस्याद् यशो यत्परमं धनं वः। -उत्तररामचरितम् 1.11
26. स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमापि,
आराधनाय लोदस्य मुचतो नास्ति म व्यथा। -उत्तररामचरितम् 1.11
27. हिंदू पौलिमिटिक्स भाग, 12 खंड-22 पृ० 3
28. यज्ञावल्क्यस्मृतिं, 1.3.34
29. रामायण, 2.2.28.47

द्वारा श्री राजू चौहान
बड़े बिजलीघर के पीछे
रामपुर भूड रोड
हसनपुर (अमरोहा)

कृष्णा सोबती के औपन्यासिक चरित्रों में नारी-विमर्श

इंद्रजीत वर्मा

कृष्णा सोबती का नाम उनके विस्तृत रचनाधर्मिता के कारण आदर व सम्मान के साथ लिया जाता है। सोबती जी के उपन्यास साहित्य की प्रासंगिकता नारी-विमर्श के कारण नारी उत्थान में उन्हें मील का पत्थर साबित करता है। कृष्णा सोबती हिंदी की ऐसी सशक्त नारीवादी लेखिका हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं में नारी उत्पीड़न को नारीवादी परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है।

प्रश्न उठता है—नारी-विमर्श क्या है? तो परिवार, मातृत्व, शिशुपालन सहित समस्त सामाजिक गतिविधियों एवं संस्थाओं में स्त्री की भूमिका, अन्य सामाजिक, आर्थिक शोषण, उत्पीड़न के साथ ही गतिविधियों एवं संस्थाओं में स्त्री की भूमिका, अन्य सामाजिक, आर्थिक शोषण, उत्पीड़न के साथ ही यौन भेद पर आधारित स्त्री उत्पीड़न, स्त्री मुक्ति से जुड़ी सभी जटिल समस्याओं को साहित्य में चिंतन का विषय बनाना ही स्त्री विमर्श है।

‘स्त्री विमर्श मूलतः स्त्रियों की पुरुषों के बराबर, समुदाय, समाज एवं राष्ट्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की स्वायत्तता के लिए किया जाने वाला संघर्ष है तथा यह स्त्री के प्रति समाज के दृष्टिकोण और मानसिकता में परिवर्तन के लिए भी संघर्षरत है।’

‘अपने पचास-पचपन वर्ष के सामाजिक एवं साहित्यिक जीवन से गुजरते हुए कृष्णा सोबती जी ने स्त्री जीवन के जिन पहलुओं को देखा, जाना और परखा उसका दस्तावेजी रूप उनके विभिन्न उपन्यासों में देखने को मिलता है। इनके उपन्यासों में स्त्री-शोषण के विविध आयाम व मुक्ति की तमाम कुलबुलाहटों से लेकर धर्म, जाति, समाज, परिवार व पितृसत्ता में जकड़ी यौन-नैतिकता के नाम पर यौन-दमन का दंश झेल रही स्त्री का यथार्थ अंकन हुआ है।

कृष्णा सोबती ने अपने औपन्यासिक चरित्रों के माध्यम से नारी शोषण, विद्रोह, शोषण के विरुद्ध उसका संघर्ष, उसका जीवन द्वंद्व तथा स्वतंत्रता का यथार्थ अंकन किया है। जहाँ उनकी स्त्री पात्र परंपरागत जीवन मूल्यों के प्रति विद्रोह करते नजर आती हैं, वहीं अस्मिता की तलाश कर उसे सार्थकता प्रदान करती हैं। उनकी सभी पात्र-अमानवीय अत्याचारों के प्रति विद्रोह करते नजर आती हैं। वे समाज में व्याप्त रूढ़ियों एवं कुरीतियों के प्रति संघर्षशील रहती हैं और उससे छुटकारा पा लेती हैं। वे सामाजिक आर्थिक अव्यवस्था के खिलाफ मुखर विद्रोह कर अपना अधिकार जताती हैं।

‘डार की बिलुड़ी’ की ‘पाशो’, ‘सूरजमुखी अँधेरे के’, की ‘रत्ती’, ऐ लड़की की मरणासन्न-‘अम्मू’ व उसकी अविवाहिता पुत्री ‘दिलोदानिश’, की ‘महक’, ‘कुटुंब’, और ‘छुन्ना’, ‘मित्रो मरजानी’ की ‘सुमित्रावती’ (मित्रो), ज़िदगीनामा की ‘महरी’ व ‘विधवा ब्राह्मणी-लकखमी’ आदि ऐसे स्त्री पात्र हैं, जिनके माध्यम से कृष्णा सोबती ने नारी-विमर्श का

सफल दस्तावेज प्रस्तुत किया है। उन्होंने परिवार, मातृत्व, शिशुपालन, पतिसेवा सहित सभी पुरुष स्थापित सामाजिक गतिविधियों व संस्थाओं में स्त्री की भूमिका को दर्शाया है। स्त्रियों के सामाजिक, आर्थिक शोषण, उत्पीड़न, यौन भेद पर आधारित उत्पीड़न, स्त्री मुक्ति से संबंधित जटिल समस्याओं को उजागर किया है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री के शोषण, उसके विरुद्ध संघर्ष, मुक्ति व स्वातंत्र्य का सूक्ष्म व यथार्थ अंकन किया है। स्त्रियों को पुरुषों के बराबर वैधानिक राजनीतिक, शारीरिक, मानसिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों में निर्णय लेने की स्वतंत्रता हेतु संघर्ष तथा स्त्री के प्रति समाज का परिवर्तित दृष्टिकोण अपने पात्रों के माध्यम से बखूबी करवाया है।

सोबती के उपन्यासों में परंपरागत जीवन-मूल्यों में विरोध दिखाई देता है, जिसमें पात्र सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ता नज़र आता है। स्त्री अस्मिता एक नए मूल्यबोध के साथ एक नया संस्कार और नई भाषा लिए हमारे सामने आती है। स्त्री के अधिकार उनकी शारीरिक आवश्यकताओं की मुखर माँग करने वाले इनके पात्र प्राणवान और जिजीविषा संपन्न हैं। इनके यहाँ स्त्री-पुरुषों में विभाजन नहीं है, न ही उच्छृंखलता है। स्त्री को जीवन जीने की पूरी-पूरी स्वतंत्रता है।

जिस समाज में स्त्री का जन्म होना ही शर्मनाक घटना मानी जाती है, 'मित्रोमरजानी' की 'मित्रो' ऐसी मान्यताओं की धज्जियाँ उड़ती नज़र आती है। न तो उसे घूँघट की परवाह है और न ही परदे में रहने की। पुरुष स्थापित नारी सुलभ शर्म व हया भी उसको छू नहीं पाती, उसकी जबान भी गुमसुम नहीं होती—'सरदारी ने कड़ककर पूछा—नज़र नीची करती है कि नहीं 'मझली बहू ने ऐसा कुछ नहीं किया।' बड़ी-बड़ी भूरी आँखें घरवालों का सामना किए रहीं।² 'मित्रो' पुरुष सत्तात्मक यौन नैतिकता, यौनाचरण का अंधाअनुकरण नहीं करती, बल्कि अपनी कामेच्छाओं की पूर्ति हेतु उस अनुशासन को तोड़ती नज़र आती है। उसने पैतृक यौनाचरण के प्रतिमानों को ध्वस्त कर दिया जो स्त्री की अस्मिता को रौंद उसकी यौनेच्छा पर अंकुश लगाते थे। 'मित्रो' एक ऐसी स्त्री है जो अपने भीतर की ज्वाला, यौनेच्छाओं को प्रकट करती है। जब परिवार में उसके अपने मातृत्व पर प्रश्नचिह्न लगाया जाता है तो वह खुले शब्दों में अपने पति की नपुंसकता की ओर संकेत करती है—'मेरा वश चले तो गिनकर सौ कौरव जन डालूँ पर अम्मा! अपने लाडले बेटे का भी आड़तोड़ जुटाए, निगोड़े उस पत्थर की बुत में भी कोई हरकत तो हो, धनवंती के बदन पर काँटे उग आए—छि: छि: बहू ऐसे बोल-कुबोल नहीं उच्चारें जाते।'³ लेखिका ने पहली बार स्त्री के इस दर्द को मुख्य रूप से उजागर किया है। स्वयं सोबती जी के शब्दों में—'पुरानी नीवों शहतीरों को हिलाने वाला 'मित्रो' का सा जलजला उठ ही आए तो आप ही बन जाती है—मित्रो मरजानी की—सी कहानी।'⁴

'दिलोदानिश' की 'छुन्ना बीबी' भी विधवा के वैधव्यपूर्ण जीवन जीने की समाज व्यवस्था को तोड़ती है—'अपने से उम्मीद यही की जाती है कि पूजा-ध्यान में दिल लगाए, ब्रत करे, तीर्थों को जाए, अपने अंदर बाहर की तरंगों को शांतकर भक्तिभाव से विधवा बन जाए। पहनने-ओढ़ने की मुमानियत। हम अड़े हैं कि कुछ भी कहिए हम बिना किनारे की सफेद धोती न पहनेंगे।'⁵

'ऐ लड़की' की 'अम्मू' को अपनी पुत्री को दी जाने वाली हिदायत उसे सामाजिक

रूढ़ियों को तोड़ बाहर आने के लिए है। संस्थागत इकाइयाँ जैसे परिवार, समाज अपनी रूढ़ मान्यताओं व परंपराओं में किस प्रकार एक स्त्री की अस्मिता को आच्छादित कर उसके शोषण का मार्ग प्रशस्त करते हैं, यह अम्मू की बात से स्पष्ट होता है—‘सब की खूबियाँ निगल जाता है यह परिवार। गृहस्थ में पाँव रखकर स्त्री का जो मंथन मर्दन होता है, वह भूचाल के झटकों से कम नहीं होता, औरत सहन कर लेती है—क्योंकि उसे सहन करना पड़ता है।’⁶

परिवार नामक संस्था में कर्तव्यों की दुहाई देकर पुरुष समाज स्त्री का किस कदर शोषण करता है, अम्मू ने बखूबी बयान किया है तथा अपनी पुत्री को इसे तोड़ इससे आजाद होने की हिदायत दी है—‘हाँ शादी के बाद औरत पूरे परिवार के लिए शिकारे की माँझी बन जाती है। झील में तिरती नाव और शिकारे तो देखे हैं न तुमने, उन पर परिवार मजे-मजे झूमते हैं और चप्पू चलाती है औरत उम्रभर चलाती जाती है।’⁷

‘सूरजमुखी अँधेरे के’ की ‘रत्ती’ भी बचपन में ही बलात्कार की पीड़ा से गुजरी ऐसी स्त्री है, जिसके पास समाज में अवहेलना, लाक्षणा पाने का मानों लाइसेंस है पर वह इस समाज-निर्धारित स्त्री योनी के प्रभुत्व व यौन शुचिता की रूढ़ धारणा को अस्वीकार कर शरीर के बहुआयामी और संपूर्ण की गहन और व्यापक आत्मीयता द्वारा जीवन को विकसित होने से स्वयं को बचा लेती है। ‘जिंदगीनामा’ की ‘चाची महरी’ का ससुराल को छोड़ प्रेमी संग चला जाना, विधवा ब्राह्मणी का सैयदजादे के प्रेम में जान देने को उतावला होना। यह सब पात्र सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह व संघर्ष करते नज़र आते हैं।

लेखिका के प्रायः सभी पात्र स्व-अस्मिता की तलाश एवं उसकी सार्थकता सिद्ध करते नज़र आते हैं। ‘डार से बिछुड़ी’ की ‘पाशो’ जिजीविषा से पूर्ण ऐसी दिलेर औरत है जिसने आत्महत्या की-सी कायरता इतना शोषण होने पर भी नहीं दिखाई। जीवन में लगातार संघर्ष कर तथा स्वयं के होने के अहसास को ही ‘पाशो’ को फिर से अपने ‘डार’ में मिलाती है जो उसकी अस्मिता की कद्दावरता की सूचना देता है।

‘रत्ती’ अपने अतीत से मुक्ति पा लेने के लिए छटपटाती है, जो उसकी जिजीविषा को व्यक्त करती है। वह हार मानकर बैठ जाने वाली या समाज व परिवार के उलाहने सुन आत्महत्या करने वाली स्त्री भी नहीं है। उसकी अस्मिता की रक्षा उस हिम्मत में नज़र आती है, जिसमें उसकी स्थिति उच्छ्वलता में न बदलकर उस घटना से स्वयं को मुक्त करने के प्रयास में है।

‘अम्मू’ के माध्यम से लेखिका ने स्त्री की अस्मिता से खासा परिचय कराते हुए कहलवाया है—‘मैं’, ‘तुम’ नहीं और ‘तुम’, ‘मैं’ मैं हूँ।’ यह मैं यहाँ स्त्री का अहंभाव नहीं बल्कि वह भाव है, जो स्त्री को समाज में व्यक्ति होने का अहसास कराता है। अम्मू का यह कथन कि ‘तुम किसी के अधीन नहीं स्वाधीन हो’ स्त्री की उस स्थिति का परिचय देता है जिसमें वह अपने पति व पिता के घर के अतिरिक्त भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व गढ़ने की हिम्मत रखती है।

‘दिलोदानिश’ की ‘महक’ व कुटुंब’ अपनी अस्मिता को लेकर बाद में बहुत सतर्क व सचेत दिखाई देती है। महक अपने बच्चों को भी पराया होता देख अपने अस्तित्व पर मँडराते काले बादलों को भाँप जाती है—‘रेत में पाँव धँसे जाते हैं, तपती धूप और रेगिस्तान दीख रही है। यही दो झोपड़ियाँ और वह भी वकील साहब की हुई।’⁸ अब उसे अपनी पहचान हो गई है—‘आज से पहले तो हम औरत नहीं थे। ओढ़नी थे, अँगिया थे, सलवार थे। जूती अपनी थी

और पाँव किसी और को सौंप रखे थे।⁹

अपनी माँ का कारुणिक जीवन देख और 'सरदारी लाल' की वफ़ादारी उसकी शारीरिकता खंडित कर ऐसे समर्पण को तैयार करती है, जिसमें अपनी अस्मिता की पहचान है—'मित्रो अपने बूते पर घूरती है, लड़ती है, मसखरी करती है, टक्कर लेती है, सीनाजोरी भी और एक फुंकारती घड़ी में अपनी माँ की संज्ञा को अलगनी पर टँगते देख स्वयं ही अपने फरफराते उफनते कपड़ों को सहेज-समेट परले सिर से अपने साथ आ लगती है, अपने को ढूँढ लेती है।'¹⁰

स्त्री-जीवन तब तक शोषण का शिकार होता रहेगा, जब तक वह आर्थिक रूप से पुरुषों पर आश्रित होगा। आर्थिक स्वावलंबन ही उसे इस नारकीय जीवन से मुक्त कर सकता है। सोबतीजी के पात्र आर्थिक स्वावलंबन हेतु संघर्ष करते हैं। लेखिका ने 'दिलोदानिश' की 'बउजा जी' के माध्यम से यह बात स्पष्ट की है—'हमसे पूछो तो मर्द को गुमराह करने वाला फ़कत हुस्न और जवानी नहीं, उसकी कमाई है, जो उसे खुदमुख्तारी देती है।'¹¹ 'ऐ लड़की' की 'अम्मू' भी 'बउजा जी' की इस बात ने पूर्ण समर्थन कर एक वैकल्पिक व्यवस्था का आह्वान किया है—'उसका वक्त तब सुधरेगा जब वह अपनी जीविका आप कमाने लगेगी।'¹² आगे अम्मू ने स्पष्ट कहा है, 'जो हाथ अर्जित करता है वही मनचाहा वितरण भी कर सकता है।'¹³

'दिलोदानिश' की 'महक बानो' जीवन के अंतिम वर्षों में हक़ीकत का मुक़ाबला कर इस निर्णय पर पहुँचती है, वह जेवरों पर हक जमाने को तैयार हो जाती है—'हमारे जेवर तो हम तक पहुँचाए। अब हम और इंतजार न करेंगे।'¹⁴ वकील 'कृपानारायण' द्वारा हथियाए गए जेवरों को पाकर महक का समूचा व्यक्तित्व आत्मविश्वास से भर उठता है।

आज तक स्त्री के साथ समाज ने मानवीय ढंग से बर्ताव नहीं किया और न ही उसे पूर्ण मनुष्य रूप में स्वीकार किया। इसलिए उसके साथ अमानवीय अत्याचार होता रहा। स्त्री के प्रति क्रूरता दिखाने को पुरुषों ने 'पुरुषत्व' की संज्ञा दी है और स्त्री के पिटते और दबे रहने को 'स्त्रीत्व' की। अमानवीय अनाचार के विरुद्ध सोबती के प्रायः सभी चरित्र अपनी परिस्थितियों से लड़ते हुए दिखते हैं।

'मित्रो' जैसी क्रांतिकारी पात्र का पति भी अपनी असमर्थता तथा 'मित्रो' की मुखर अभिव्यक्ति से चिढ़कर उस पर अत्याचार करता है—'गुरुदास' घरवाली से कुछ कहने ही जाते थे कि मझली बहू के कमरे से धौल-धप्पे की आवाज़ सुनकर सहम गए। धनवंती ने हाथ मल-मल दिए। फिर वही मार-पिटार्ई। उड़े-उड़े बालों में सौदाई-सी मझली बहू सरदारी लाल से हाथ छुड़वाती थी और तहबंद कसे सरदारी पटाक-पटाक धौल जमाता था।'¹⁵

विधवा होने में स्त्री का कोई दोष नहीं होता, लेकिन इसकी सारी जिम्मेदारी स्त्री पर थोपी जाती है। उसके यौन उछाहों को शमित करने के लिए उसे स्वादहीन भोजन दिया जाता है, उसके कपड़े सादा होते हैं, उसे अमंगलसूचक मान किसी शुभकार्य के समय उसकी उपस्थिति वर्जित होती है।

'दिलोदानिश' की 'छुन्ना बीबी' विधवा होने पर इन अत्याचारों से गुज़रती है। उसे ससुराल और मायके दोनों स्थानों पर घोर मानसिक-यंत्रणा से गुज़रना पड़ता है। युवा शरीर और यौन आकांक्षाएँ उसके शरीर को उलझनों से भर देते हैं। इस अमानवीय अत्याचार का विरोध कर

वह भुवन से विवाह का निर्णय लेती है।

‘डार से बिछुड़ी’ की ‘पाशो’ अर्धसामंतवादी समाज में कई बार बेची-खरीदी जाती है। अंत में एक ऐसे परिवार के हाथों बेच दी जाती है, जहाँ उसे चार पुरुषों की पत्नी के रूप में रहकर चारों की कामवासना को तृप्त करना पड़ता है। चारों के अमानवीय अत्याचार सहना उसकी नियति है।

पुत्र को ही जन्म देने की बात एक स्त्री पात्र के मुँह से कहलवा लेखिका ने यह स्पष्ट कर दिया है कि नारी उत्पीड़न में पुरुषों का साथ स्वयं स्त्रियों ने भी दिया है, जो एक विचारणीय प्रश्न है ‘कहीं लड़की आई तो मालन मुझसे बुरा कोई न होगा, माँ-बेटी दोनों को तबले डाल आऊँगी समझी।’¹⁶

द्रौपदी के रूप में तिल-तिल जीने वाली पाशो पर कहर बरसाया जाता है—‘जो कहोगे सो करूँगी, मुझे मत मारो..... मुझे न’¹⁷ ‘रत्ती’ छोटी बच्ची है, तभी उसके साथ बलात्कार हुआ, जैसे-जैसे वह बड़ी होती है, उसके अंदर की चोट बाहरी तौर पर उसे अपने कब्जे में ले लेती है। वह मानती है—‘बलात्कार केवल कानून की दफ़ा नहीं, मात्र रसभंग ही नहीं, छोटे बच्चों के अधिकचरे खेल भी नहीं—अमंगल लहर की वह टूट आसंग स्थिति है जिसे अपने चाहने से स्रोत तक लौटा लाना जन्म-जन्मांतर-सा ही अनिश्चित है।’¹⁸

लेखिका ने अपनी सभी रचनाओं में ‘मित्रो’, ‘छुन्ना’, ‘रत्ती’, ‘पाशो’, ‘अम्मू’, ‘महक’, ‘कुटुंब’, ‘चाची महरी’ आदि स्त्री-पात्रों के माध्यम से जहाँ पारंपरिक लीक तुड़वाया है, वहीं स्व अस्मिता की रक्षा हेतु संघर्ष के माध्यम से स्त्रियों को सशक्त होने के लिए प्रेरित किया है।

सोबती जी के स्त्रियों ने चरित्रों उन तमाम खोखली पुरुष अंकित लक्ष्मण रेखाओं को तोड़ा हैं, जिन्होंने वर्षों से स्त्री को यौनाचरण, तुच्ची यौन नैतिकता, थोथे सामाजिक-पारिवारिक आचरण को पुरुषप्रधान मर्यादाओं में बुरी तरह जकड़ा हुआ था। सोबती जी का लेखन स्त्रियों को यथास्थितिवाद से बाहर निकाल, उसमें साहस व निर्भीकता पैदा करने वाला है। कह सकते हैं कि सोबती जी के लेखन में नारी-विमर्श व सशक्तीकरण पर बल दिया गया है, जो नारी विमर्श पर कार्य करने वालों को एक नया दृष्टिकोण प्रदान करता है।

संदर्भ

1. कमलेश्वर के कथा साहित्य में स्त्री-विमर्श, डॉ॰ करुणा शर्मा, पृ॰ 59
2. मित्रो मरजानी, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 12
3. वही, पृ॰ 75
4. सोबती एक सोहबत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
5. दिलोदानिश, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 65
6. ऐ लड़की, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 63
7. वही, पृ॰ 63
8. दिलोदानिश, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
9. वही
10. सोबती एक सोहबत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 388
11. दिलोदानिश, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ॰ 74

12. ऐ लडकी, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 74
13. वही, पृ० 85
14. दिलोदानिश, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 174
15. मित्रो मरजानी, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 12
16. डार से बिछुड़ी, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 40
17. वही, पृ० 86
18. सोबती एक सोहबत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 391

संपादक-विद्यालय पत्रिका 'ज्योति पुंज'
सी 3/3, आचार्य निकेतन, मयूर विहार फेस-1
दिल्ली 110091

नारी-चेतना : सामान्य परिचय

अरविंदकुमार

नारी प्रकृति का रूप है, परमपुरुष की इच्छा का प्रतिफलन है। प्रसिद्ध है कि जगन्नियता को जब एकाकी रमने में कुछ ऊब-सी हुई तो वे स्वकीय इच्छा-शक्ति से एक से दो हो गए। उस तरह से प्रकृति की सुरुचिपूर्ण रमणसृष्टि है। वह पुरुष की पूरक है। उसे आदिकाल से ही समस्त सृष्टि की संचालिका शक्ति माना जाता है। नारी के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। नारी के संयोग से ही संसार आगे बढ़ता है।

नारी हमेशा से ही पुरुष की प्रेरणा रही है। नारी का शारीरिक सौंदर्य अगर पुरुष को लुभाता है, इसकी शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति करता है तो नारी का आत्मिक सौंदर्य पुरुष के कार्यों की प्रेरणा भी बनता है। नारी पुरुष को निराशा के क्षणों में आशा देती है, दुःख में दिलासा देती है और उसके कर्म में उत्साह भरती है।

नारी-परिभाषा एवं स्वरूप

प्रत्येक शब्द का इतिहास है। उसका स्वतंत्र अस्तित्व है। शब्द अपने वाच्य के स्वरूप का भी संकेत करता है। नारी अर्थ के बोधक शब्द भी नारी के स्वरूप पर बहुत प्रकाश डालते हैं। कवियों की दृष्टि में नारी माया-सी, दुर्बोध, प्रकृति-सी बहुरूपी, साथ ही सहानुभूति-सी सरल रही है। यदि शब्दों के विकास के साथ मानव सभ्यता के विकास का अध्ययन किया जाए तो ज्ञान होगा कि नारी उतने ही अंश में रहस्यमयी है, जितने अंश में संसार की कोई भी वस्तु। विषम समाज में विषम स्थिति होने के कारण नारी के विभिन्न स्वरूप होते हुए मानव की नारी के साथ शारीरिक, रागात्मक, और धार्मिक संबंध होने के कारण नारी के स्वरूप-भेद हुए। ये भेद-प्रभेद इतने जटिल बन गए हैं कि आज शब्द के आधार पर नारी के वास्तविक स्वरूप को समझना कठिन है। किसी एक शब्द से नारी के स्वरूप की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। फिर भी, जिस तरह एक छोटे से ओस बिंदु में संपूर्ण सूर्यमंडल प्रतिबिंबित हो जाता है, उसी प्रकार नारी-वाचक छोटे से छोटे शब्द में भी उसकी जाति, उसके गुण, उसकी क्रिया अथवा इच्छा झलक जाती है। साथ ही नाम रखने वाले समाज की मानसिक स्थिति, बौद्धिक उन्नति और सांस्कृतिक चेतना भी व्यक्त हो जाती है।

प्राणिजगत में 'नारी' शब्द 'नर' समानांतर है। इसका प्रयोग स्त्रीलिंग वाची मादा प्राणियों के रूप में होता है, किंतु मानव-समाज में 'नारी' शब्द इस सामान्य अर्थ में गृहीत नहीं है, क्योंकि उसका स्थान नर से कहीं बढ़कर है। यही नहीं, रूप-आकार, शरीर संगठन, कार्य-व्यापार एवं जीवन-यापन की विविध स्थितियों में नारी विधाता की उच्चतम परिकल्पना सिद्ध हुई है, फिर भी नारी की परिभाषा और स्वरूप को अच्छी तरह जानने के लिए 'नारी' शब्द की व्युत्पत्ति को

जानना बहुत आवश्यक है।

नारी शब्द की व्युत्पत्ति

‘नारी शब्द नृ अथवा नर’ से बना है। नृ+ड.ीष=नारी-नरस्य समान धर्म नारी, नृ+अ+ड.ीन=नारी।¹ नारी शब्द नर से उत्पन्न माना जाता है। ‘यास्क ने ‘नर’ शब्द को नृत से बनाया है— नृत्यति कर्मसु’ अर्थात् काम की पूर्ति के लिए मनुष्य हाथ-पैर नचाता है। नारी के लिए स्त्री शब्द का प्रयोग भी होता है। यह शब्द उसे पुरुष के लैंगिक सहयोगी के रूप में स्त्री की व्युत्पत्ति के विषय में निरूक्ताकार का मत है कि स्त्री शब्द स्त्रयै धातु से बना है। यास्क के मतानुसार सत्यै का अर्थ लज्जा से सिकुड़ना है। टीकाकार दुर्गाचार्य नारी की ‘स्त्री’ संज्ञा उसके लज्जाशील होने के कारण मानता है, किंतु पाणिनी के धातु पाठ में ‘स्त्रयै’ का अर्थ लजाना नहीं मिलता। धातु पाठ के अनुसार ‘स्त्रयै’ शब्द का अर्थ है ‘शब्द करना’ तथा इकट्ठा करना। जान पड़ता है कि नारी का स्त्री नाम संभवतः उसके वाचाल होने के कारण ही पड़ा।

महर्षि पतंजलि ने अपनी ‘अष्टाध्यायी’ में समझाया है कि नारी को स्त्री इसलिए कहते हैं कि गर्भ की स्थिति उसके भीतर रहती है। उन्होंने एक दूसरी व्युत्पत्ति भी की है—शब्द स्पर्श-रूपसंगंधाना गुणानां स्त्रयान-संधातम-स्त्री’ अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इन सबका समुच्चय ही स्त्री है।² इससे स्पष्ट है कि नारी शब्द की व्युत्पत्ति उनके शब्दों में मानी गई है।

नारी के पर्यायवाची शब्द

वैदिक साहित्य में नारी के लिए निम्नलिखित पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग हुआ है।

1. निरुक्त में कहा है, ‘मानयन्ति एनः पुरुषः’। पुरुष उसका सम्मान करते हैं, अतः उसे मेना कहा गया है।
2. नारी नर की सहयोगिनी है, अतः उसे ‘योषा’ कहा गया है।
3. वह सौंदर्य को बिखेरती है—वयति सौंदर्यम्। अतः उसे वामा कहा गया है।
4. नारी पुरुष के मन का आनंदित करती है, अतः वह ‘प्रमदा’ है।
5. यह काम्या होने से ‘कामिनी’, रम्या होने से ‘रमणी’, संतति उत्पन्न करने के कारण ‘जननी’, ‘जाया’ और तेजस्विनी होने के कारण ‘भाषा’ कहलाती है।
6. माता, पत्नी, भगिनी, पुत्री आदि सभी रूपों में पूजनीय होने के कारण उसे ‘महिला’ कहा गया है।
7. ‘पति द्वारा उसका भरण-पोषण होता है, अतः वह ‘भार्या’ कहलाती है।³

स्त्री को ललना इसलिए कहते हैं कि यह मानसिक भाव की द्योतक है। यह लल-इच्छा करना से बना है। स्त्री में लालसा, इच्छा, चाह प्रबल होती है। अतः उसे ललना कहते हैं। नारी को ‘महिला’-इलय+आ=महिला। मह का अर्थ पूजा है।

‘पूज्य’ होने के कारण स्त्री का नाम महिला पड़ा—⁴ वह नारी जो क्रोध करनेवाली हो वह ‘भामिनी’, जो क्रोध और आवेश में भयंकर रूप धरण करे वह ‘चंडी’, जो नशे के कारण उन्मत्त-सी दिखाई दे वह ‘मतकाशिनी’, जिसका राजा में पूजनयी हो, वह ‘महिषी’ जो केवल भोग के लिए हो वह भोगिनी और जो पुरुष के सभी धर्मों में साथ दें वह सहधर्मिणी कहलाती है।⁵

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि नारी पर्यायवाची शब्दों में ‘स्त्री योषित, अबला,

योषा, वनिता, महिला, भीरु, कामिनी, प्रमदा, मानिनी, कांता, ललना, सुंदरी, रमणी, भामिनी, चंडी, भोगिनी, पत्नी, सहधर्मिणी, भार्या, स्वयवरा, पतिवरा, कुलपालिका⁶ आदि प्रमुख हैं। इस प्रकार नारी अपने प्रत्येक पर्याय को सार्थक सिद्ध करती है। नारी के बारे में प्रयुक्त होने वाला प्रत्येक शब्द नारी के किसी न किसी गुण अथवा उसकी विशेषता का द्योतक है।

नारी-भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के मत:

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने नारी के संबंध में अपने भिन्न-भिन्न मत दिए हैं। उनमें से कुछ विद्वानों के मत इस प्रकार हैं—

भारतीय विद्वानों के मत

1. प्रेमचंद जी के अनुसार—‘पुरुष विकास के क्रम में नारी के पीछे-पीछे है। जिस दिन वह भी पूर्ण विकास तक पहुँचेगा, वह स्त्री हो जाएगी। वात्सल्य, स्नेह, कोमलता, दया इन्हीं आधारों पर सृष्टि थमी हुई है और ये स्त्रियों के गुण हैं।⁷
2. स्वामी विवेकानंद जी के अनुसार—‘स्त्रीपूजन से ही समाज की प्रगति होती है। जिस देश अथवा समाज में स्त्री पूजन नहीं होता वह देश अथवा समाज कभी ऊँचा नहीं उठ सकता। पश्चिमी देशों के अधःपतन के कारण उन्होंने शक्तिरूपिणी स्त्री की अवेहलना माना है।⁸
3. रवींद्रनाथ ठाकुर ने अपनी रचना ‘मानसी गीत’ में नारी को ‘भगवान की अद्भुत कृति’ माना है।⁹
4. महादेवी वर्मा के अनुसार—‘पुरुष प्रतिशोधमय शोध है, स्त्री क्षमा। पुरुष शुष्क कर्तव्य है, स्त्री सरस सहानुभूति। पुरुष ब्रह्मा है तो नारी हृदय की प्रेरणा।¹⁰
5. डॉ० राधाकृष्णन के अनुसार—‘एक पशु जिसका प्रशिक्षण नारी करती है। नारी मूलतः पुरुष की शिक्षिका है, तब भी जब वह बच्चा होता है और तब भी जब वह वयस्क होता है।¹¹
6. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है—‘जहाँ कहीं अपने आपको उत्सर्ग करने की, अपने आपको खपा देने की भवना प्रधान है, वही नारी है।¹²

पाश्चात्य विद्वानों के मत

1. मैगडूगल और फलूगल के अनुसार—‘मनोविज्ञान के अनुसार पुरुष की अपेक्षा वात्सल्य-भाव की मात्रा स्त्री में अधिक होती है।¹³
2. ए०एस० अल्टेकर के अनुसार—‘नारी सुकुमार, परिश्रमी, कोमल और पराधीन है। उसकी चरम महत्ता गृहिणी रूप में और मातृत्व के विकास में ही है। वह प्रेम करने के लिए बनी है। नारी कवयित्री, दार्शनिक दिग्गज, विदुषी ब्रह्मवादिनी हो सकती है, किंतु अपने युग की प्रतिक्रियावादी परंपराओं में पोषित न होने के कारण संस्कृत काव्याकारों ने भी उसका सभा में वाक्चातुर्य, प्रतिभा-प्रदर्शन नहीं दिखलाया है।¹⁴
3. पेट्रिका ब्रानका के अनुसार—‘नारी पत्नी, माता, उपभोक्ता, गृहिणी, स्वास्थ्य-निर्देशक, शिक्षिका, सहयोगी, सलाहकार और अर्थमंत्री अनेक रूपों में एक ही समय में सेवा करते हुए घर की बागडोर सँभालती है।¹⁵

भारतीय कवियों के मत

प्राचीन और नवीन भारतीय कवियों ने भी नारी के संबंध में अपने अलग-अलग विचार व्यक्त किए हैं। जो इस प्रकार हैं—

1. कबीर के अनुसार—‘पतिवरता मैली भली काली कुचिर कुरूप पतिवरता के रूप पर वारों कोटि सरूप।’¹⁶
2. तुलसी के अनुसार—‘जिन प्रतिबिंब बसऊ गहि जाई, जानि न जाई नारि गति भाई।’¹⁷
3. मैथिलीशरण गुप्त के अनुसार—‘अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आँचल में है दूध आँखों में पानी।’¹⁸
4. जयशंकर प्रसाद के अनुसार—‘नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग-तल में, पीयूष-स्रोत-सी बहा करो, जीवन के सुंदर समलत में।’¹⁹
5. बिहारी के अनुसार—‘ज्यों-ज्यों पाषक लपट-सी, पिहयो सौ लपटाति, त्यों-त्यों छही गुलाब सौ, छतियाँ अति सियराति।’²⁰

इस प्रकार नारी की भिन्न-भिन्न विद्वानों एवं कवियों ने अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं।

नारी-स्वरूप विवेचन

नारी शब्द की व्युत्पत्ति, उसके पर्यायवाची शब्दों, भारतीय विद्वानों, कवियों एवं पाश्चात्य चिंतकों के मतों का विवेचन-विश्लेषण करते हुए हम इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि जैसे सृष्टि अनादि और अनंत है, उसी प्रकार नारी भी सनातन है। वह मानव-जाति की सभ्यता एवं सामाजिक विकास का मूल आधार है। उसी से घट का जन्म हुआ, परिवार बने और समाज तथा राष्ट्र का क्रमिक विकास होता गया।

नारी शक्तिस्वरूपा, पुरुष की जननी और माता के रूप में स्नेह, ममता और आनंद का आगार है। वह ब्रह्म की तरह सृष्टि का उत्पादन करती है और विष्णु की तरह पालन करती है। वह प्रेम की प्रतिमा, आकर्षणमयी, अलौकिक सौंदर्य से परिपूर्ण, मानवीय गुणों का आगार और पारिवारिक जीवन में स्नेह सुख की सरिता का स्रोत है। उसने अपने व्यक्तित्व से काव्य, कला को प्रभावित और प्रेरित किया है। वह सदैव कलाकारों, कवियों और साहित्यकारों का आकर्षण बिंदु रही है।

‘चेतना’ की व्याख्या

प्राणी मात्र में रहने वाला वह तत्त्व है जो उसे निर्जीव जड़ पदार्थ से भिन्नता प्रदान करता है। ‘चित्’ संज्ञा ने-धातु में युक्त, अन टाप प्रत्ययों के संयोग से चेतना शब्द की निष्पत्ति होती है। जिसका अभिप्राय है मन की वह वृत्ति या शक्ति, जिससे जीव या प्राणी को आंतरिक अनुभूतियों भाषा, विचारों आदि तथा बाहरी घटनाओं, तत्त्वों या बातों का अनुभव या भान होता है।²¹

चेतना शब्द की व्युत्पत्ति से भी इसी आशय की पुष्टि होती है। अमरकोष में इसको बुद्धि, भगवद्गीता में ज्ञानात्मिका मनोवृत्ति तथा दर्शन में इसको स्वयंप्रकाश तत्त्व कहा गया है। विज्ञान के अनुसार चेतना वह अनुभूति है, जो मस्तिष्क में पहुँचने वाले अभिगामी आवेगों से उत्पन्न होती है। मनोविज्ञान की दृष्टि से चेतना मानव में उपस्थित वह तत्त्व है, जिसके कारण उसे सभी प्रकार की अनुभूति होती है। संरचनावादी मनोवैज्ञानिक विल्हेम वुट के अनुसार चेतना में संवेदना, विचार भावना तथा इच्छा सम्मिलित है। उसके अनुसार चेतना का अनुभव दो प्रकार का होता है—संवेदना तथा भावना। संवेदना बाह्यजगत से आती है और भावनाएँ आंतरिक होती हैं।²²

डॉ० महावीर दाधीच के अनुसार, ‘चेतना व्यक्ति की एक ऐसी शक्ति है जो उसे अनुभूति क्षम बनाती है। अनुभूति (भाव) को प्रत्यय (बुद्धि) रूप में और प्रत्ययों को अनुभूति

रूप में परिणत कर सकती है तथा जो साथ-साथ भूत, वर्तमान और भविष्य की परंपरा का कथित, अनुभवों और प्रत्ययों के संदर्भ में निर्माण करती है।²³

चेतना का विकास

चेतना का विकास विभिन्न तत्त्वों और स्थितियों के संयोग और संस्कारों से होता है। सामाजिक वातावरण और इतिहास बोध का इसको विकसित करने में प्रमुख हाथ रहता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने वंशानुक्रम की प्रस्तुति स्वयं में करता है। विशिष्ट प्रकार के संस्कार पैतृक-दाय के रूप में ग्रहण करके विकसित करता है, क्योंकि उसने विभिन्न प्रकार की शिक्षा एवं प्रशिक्षण विविध रूप में प्राप्त किया है। वातावरण और इतिहास बोध के प्रभाव से उसमें नैतिकता, औचित्य, व्यवहार कुशलता, सौंदर्य-बोध, आध्यात्मिक बोध के प्रति जागरूकता आती है। यही चेतना का विकास है। हिंदी के समीक्षा क्षेत्र में 'चेतना' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी 'कॉन्सासनेस' के अनेक अर्थ दिए हैं, जिनमें मुख्य है—प्रतिबोध, चैतन्य, चेतना, संज्ञा, जागृति, ज्ञान, बोध, व्यक्ति की भावनाओं और विचारों की समष्टि, पूर्णता।²⁴

चेतना के रूप एवं परिव्याप्ति

'चेतना के तीन रूप होते हैं—चेतन, अवचेतन और अचेतन।'²⁵ चेतन रूप में उन सभी बातों का समावेश किया जाता है, जो हमारी गतिशीलता को जीवंतता देती है। अवचेतन में वे सभी बातें रहती हैं, जो हमारे ज्ञान के बाहर रहती हैं, जो विस्मृति के अथाह सागर में पहुँच जाती हैं तथा स्मरण करने पर भी, जिनका पुनर्स्मरण संभव नहीं है। 'चेतना की अनुभूतियाँ भी कभी अवचेतन तो कभी अचेतन में परिभ्रमित रहती हैं, वे अनुभूतियाँ निष्क्रिय नहीं वरन् अनजाने ही मानव को प्रभावित करती रहती हैं।'²⁶

सारी सृष्टि का प्रत्येक घटक या तो जड़ है अथवा चेतना। जो जड़ है, उसमें संवेदनात्मकता की प्रबल उत्कंठा और सजगता की प्रवृत्ति का एकांतिक अभाव है। भाववादियों और आध्यात्मवादियों की दृष्टि में पदार्थ-जगत चेतनाजन्य है। वस्तुतः चेतना ही सारी सृष्टि का आधार है। भौतिकवादी चेतना को जड़ तत्त्व को परम अंश की विशिष्ट जातियों की परिणति स्वीकार करते हैं। सार्त्र ने चेतना प्रवाहवाद को साहित्य में महत्त्वपूर्ण माना है। आत्मा और चेतन्य वह सत्य है जिसकी विवेकशक्ति मनुष्य को पशुजगत् से पृथक् अस्तित्व का मानती है।

चेतना एक ऐसा धर्म है, जिसके आलोक में वैयक्तिक और सामाजिक जागृति का धर्म उद्दीप्त होता है। मानव-सभ्यता की दौड़ में सामाजिक जागृति और राष्ट्रीय राजनीतिक भावना की अनुभूतिजन्य चेतना ने सदैव महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

इन अर्थों के आधार पर चेतना समाज-सापेक्ष होती है। सामाजिक अवनति की विविध प्रतिकूल दशाओं में जो प्रतिभाशक्ति दीप्ति बनकर चमक उठे और जिसके प्रभाव से समस्त समाज में नवजागरण की लहर दौड़ जाए, उसी को सामाजिक चेतना का अग्रदूत समझना चाहिए। जिस हृदय में शब्द का प्रमाण अनुप्राणित होता है।

वह सच्ची प्रतिभा युग साहित्य के आयाम में सामाजिक चेतना की सत्य सृष्टि करता है, समाज को दृष्टि और जीवन देता है।²⁷ किसी मनुष्य की चेतना उसकी व्यक्तिगत संपत्ति न होकर सामाजिक उपक्रम का परिणाम होती है। सामाजिक चेतना की तीन विशेषताएँ हैं, वह ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक होती है। युगीन संदर्भ में आज व्यवहार के स्तर पर जो प्रदेय

है, अनुभूति के उद्वेलन का दूसरा नाम चेतना है।

चेतना के समानार्थी शब्द

‘चेतना’ के पर्याय रूप में अथवा उसके समानार्थी के रूप में अनेक शब्द प्रचलित हैं। आज के साहित्य का विवेचन करते हुए ‘चेतना’ के साथ ‘मूल्य’, ‘बोध’ और ‘दृष्टि’ तीन शब्दों का ‘चेतना’ के संदर्भ में तथा परस्पर समता-विषमता के संबंध में थोड़ा-सा विश्लेषण करना समीचीन है। चेतना के सक्रिय सहयोग से मानव अपनी तथा समाज की उन्नति के लिए भाव एवं आचरण को संस्कारित करने के लिए अवधारणाओं, गुणों, प्रतीकों, सिद्धांतों आदि का निर्धारण करता है, जिनको हम ‘मूल्य’ कहते हैं। ‘मूल्य मनुष्य-जीवन के व्यापार को शासित नहीं करते, अपितु दिशा-बोध भी कराते हैं। चलते ही नहीं, किसी ओर चलना है यह भी बताते हैं।²⁸ मानक हिंदी कोष के अनुसार किसी अस्तित्व, प्राकर, स्वरूप आदि का होने वाला मानसिक भाव ही बोध है अथवा शब्दों के द्वारा होने वाला किसी चीज या बात के ज्ञान को बोध कहते हैं। मूल: ‘बोध’ का अर्थ है। वस्तु-तथ्य अथवा सत्य के ज्ञान की प्रक्रिया।

‘दृष्टि’ निर्माण में केवल मात्र ज्ञानात्मक चेतना की ही प्रेरणा नहीं होती अपितु इसमें भावात्मक चेतना भी संचालित रहती है। दृष्टि निर्माण केवल तात्कालिक परिवेश से नहीं होता, अपितु वह उसका अतिक्रमण भी करता है।

दृष्टि शब्द दश धातु से चितन प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न हुआ है, जिसका सामान्य अर्थ देखना होता है। मानक हिंदी कोष के अनुसार इस शब्द का अर्थ है—आँखों से देखकर ज्ञान प्राप्त करने या जानते-समझने का भाव, वृत्ति या शक्ति इस स्तर पर बोध और दृष्टि एक ही अर्थ को ध्वनित करते प्रतीत होते हैं। अतः मूल्य-बोध और दृष्टि में चेतना का प्रवाह विद्यमान है क्योंकि चेतना से विहीन होने पर मूल्य-निर्माण बोध प्राप्ति अथवा दृष्टि उपलब्धि की परिकल्पना भी संभव नहीं। चेतना मूल्य, मूल्य-बोध अथवा दृष्टि परिणाम है। अर्थों में भिन्नता होते हुए भी उनमें एकत्व है।

नारी-चेतना का अर्थ एवं स्वरूप

चेतना शब्द का अर्थ है प्राणिमात्र में रहने वाला वह तत्त्व है जो उसे निर्जीव जड़ पदार्थों से भिन्नता प्रदान करता है। नारी-चेतना का अर्थ हुआ नारी में निहित जागरूक शक्ति। नारी समाज तथा परिवार का एक अभिन्न अंग है। जब तक नारी अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों के प्रति सचेत नहीं होगी तब तक न परिवार ठीक से चल सकता है और न ही समाज। प्राचीनकाल से आज तक नारी में चेतना का निरंतर विकास होता रहा है। वह निरंतर विकास की सीढ़ियों पर चढ़ती रही है। नारी की प्रशंसा में शिवजी बतलाते हैं कि ‘नारी के समान न योग है, न जप है, न तप है, न तीर्थ है। यही इस संसार की सर्वाधिक पूजनीय देवता है, क्योंकि वह पार्वती का रूप है। उसके समान न कुछ था, न ही कुछ होगा।’²⁹

प्रारंभ में नारी केवल एक विलास सामग्री थी। नारी के विभिन्न रूप माँ, बहन, पुत्री आदि अधिक विकसित न हो सके थे। नारी का क्षेत्र बहुत संकुचित था। स्त्रियों को घर की चारदीवारी के अंदर ही रहना होता था। उन्हें पढ़ने-लिखने, नौकरी आदि किसी भी प्रकार की आजादी नहीं थी। नारियाँ एक प्रकार की घुटन भरी जिंदगी व्यतीत कर रही थीं।

ये नारी-चेतना का ही विकास है कि नारी वर्तमान में कंधे से कंधा मिलाकर पुरुषों

के साथ कार्य कर रही हैं। नारी के मन में पुरुष की दासता से मुक्त होने की ललक पैदा होती है। नारी जब शिक्षित भी हो चुकी है। कर्मभूमि उपन्यास की 'सुखदा' पुलिस के सामने खड़ी होकर कहती है—'क्यों भाग रहे हो? यह भागने का समय नहीं है। छाती खोलकर खड़े होने का समय है। दिखा दो कि तुम धर्म के नाम पर किस तरह प्राणों का होम करते हो। भागने वालों की कभी विजय नहीं होती।'³⁰ इस समय स्त्रियाँ जागरूक हो चुकी हैं। वे पुरुषों में शक्ति का संचार हैं। एक बार एक फ्रेंच लेखक ने भी लिखा था कि अगर किसी देश की अवस्था का पता लगाना हो, तो वहाँ कि स्त्रियों की दशा जानना जरूरी है। इसका तात्पर्य है कि जो समाज जितना अधिक उन्नतिशील होगा, वहाँ स्त्रियों की दशा उतनी ही विकसित होगी।

पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से भारतीय नारी ने नई रोशनी, नई सभ्यता के प्रसार में देखा कि वह पति की दासी नहीं है। समाज में नारी को भी पुरुष के समान अधिकार है। बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, विधवा-विवाह और वेश्यावृत्ति के विरुद्ध आंदोलन चरम पर था। प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने लिखा है—'स्त्री-पुरुष एक होकर रहें, दोनों में मतभेद न होने पावे। स्त्री को गर्व न हो कि मैं स्वामी से बड़ी हूँ और न स्वामी को अभिमान हो कि ईश्वर ने सब बुद्धि मेरे ही हिस्से में रखी है। स्त्री घर की मालकिन है और पुरुष बाहर का, लेकिन दोनों में मतैक्य हो दोनों इस पवित्र प्रेम सूत्र में बँधे हो, जहाँ न राज है, न अभिमान, न द्वेष है और न कलह।'³¹ भारतीय दर्शन संस्कृति एवं समाज में नारी को बहुत गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। दर्शन नारी को प्रकृति रूपा मानता है। वह सृष्टि के मूल में है। पुरुष के रागात्मक जीवन में नारी सदैव उच्च स्थान की अधिष्ठात्री रही है, वह परिवार की संचालिका है।

वैदिक साहित्य में नारी के पत्नी रूप को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। वहाँ प्रत्येक द्वारा कन्या की कामना की गई है, पुत्र और पुत्री में कोई भेद नहीं माना गया। पुराणकाल में कन्या को देवी रूपा स्वीकार किया गया है, जबकि श्रीमद्भागवत् में नारी के कन्या-रूप का गुणगान है।

इस प्रकार नारी-चेतना की परंपरा वेदों-पुराणों से चली आ रही है। अँग्रेजी प्रशासन में सुधार लाकर नारी को जाग्रत किया और नारी में स्वाधीनता आंदोलन से पुरुष के समान प्रयत्न किए। स्वतंत्रता के बाद भारतीय नारी ने अधिकाधिक प्रगति की ओर कदम बढ़ाए और देश के उच्चतम प्रशासकीय पदों पर काम किया व अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में भी अपने व्यक्तित्व का प्रभाव सिद्ध किया। स्त्री जागृति हुई उसे पुरुष के समान अधिकार मिले। आज की नारी परंपरा की लीक पाटने की अपेक्षा नई चुनौतियों भरी राहों पर चलने का खतरा उठाने को तत्पर है। परिणामस्वरूप नारी के विकास की गति में अधिकतर बोध विकसित हुआ।

साहित्य में नारी-चेतना की परंपरा

किसी भी साहित्य का नारी-चित्रण उस देश की नारी स्थिति का परिचायक होता है। अतः उसके समुचित अध्ययन के लिए उस देश की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों को पृष्ठभूमि में रखकर देखना आवश्यक हो जाता है। नर-नारी का सहज आकर्षक अनादिकाल से चला आ रहा है। वेदों में भी नारी-चेतना का वर्णन है। वेद ज्ञान के भंडार हैं। उस भंडार में खोज करने पर नारी के महत्त्व को प्रकाशित करने वाले विषय भी आवश्यक दृष्टिगोचर होते हैं। 'कुछ विदुषी नारियाँ अपने सद्गुणों के कारण तथा मंत्रों का साक्षात्कार करने वाली ऋषिकाओं के रूप में प्रतिष्ठित हुई हैं। इनमें धन की देवी लक्ष्मी, शक्ति की दुर्गा और

विद्या की सरस्वती हैं।¹³² साहित्य में नारी-चेतना की परंपरा को जानने के लिए हमें वैदिक काल को भी जानना पड़ेगा। उत्तर वैदिककाल, उपनिषद्काल और संस्कृत साहित्य का क्रमशः वर्णन इस प्रकार है—

वैदिककाल

वेदों में जो कुछ कहा गया है वह सबके लिए है। 'वेद चार हैं—ऋग, यजुः, साम और अथर्व। इनमें से ऋग्वेद में ही कुछ ऐसी बातें पाई जाती हैं जो प्राचीन काल से चली आने वाली आर्य नारी की सभ्यता और संस्कृति पर प्रकाश डालती हैं।¹³³ वैदिक काल में स्त्री को पुरुषों के समक्ष माना जाता था। समाज की ओर से जो सुविधाएँ पुरुष को मिलती थीं, स्त्री को भी प्राप्त थीं। परिवार, समाज तथा धर्म में उसकी प्रतिष्ठा थी, उदाहरण था। वह शिक्षा ग्रहण कर सकती थी। लड़कों की तरह उसका भी उपनयन संस्कार होता था। अपना पति खुद चुन सकती थी। अतः वह स्वयं वश थी। पुनर्विवाह की उसे आजादी थी। वैदिक काल में भी स्त्रियाँ जागरूक थीं। वे पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में तो सक्रिय थीं ही, साथ-ही-साथ धनुषबाण और अस्त्र-शस्त्र बनाने का काम भी करती थी। सभी धार्मिक कार्यों में पत्नी के सहयोग की आवश्यकता होती थी। साधारणतः यज्ञों की संपन्नता भी स्त्रियों के साथ होती थी। सूक्तों में उषा की स्तुति की गई है। इंद्राणी एक स्थान पर अपनी शक्ति का वर्णन करते हुए कहती है—

‘इंद्र की महानता का कारण मैं ही नहीं, मैं सर्वशक्तिमान हूँ और मेरे पति मेरी सामर्थ्य जान लें’¹³⁴ इस प्रकार नारी-चेतना की परंपरा वैदिक युग से प्रारंभ हो गई थी। वैदिक युग में निष्कर्षतः पारिवारिक और सामाजिक दायित्वों में स्त्री-पुरुष से कहीं ज्यादा सक्रिय थी।

उत्तर वैदिककाल

ऋग्वेद के अनुसार वैदिककाल में जीवन के सभी क्षेत्रों में, स्त्रियों को सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था, परंतु इस युग में प्रधानता पुरुषवर्ग को मिलने लगी थी। इस युग में जो प्रधान परिवर्तन हुआ, वह था विवाहेतर वधु का पितृगृह छोड़कर पतिगृह जाना। इस युग में पुरुष-वर्ग अधिकतर तपस्या में संलग्न हो चुका था। तपस्या में नारी को बाधक माना जाने के कारण नारी का तिरस्कार होने लगा। 'इस काल में यौन-नैतिकता के अनुरूप, विवाह-विच्छेद, विधवा-विवाह, ये प्रथाएँ मिटने लगी थीं।'¹³⁵ फिर भी नारी की जागृति के कारण घरेलू और सामाजिक कार्यों में पति-पत्नी का पद समान था। स्त्री की शक्ति को घर में स्वीकार किया जाता था। उसको 'गृह-लक्ष्मी' समझकर सम्मान किया जाता था। जातियों के इतिहास में हम जितना पीछे की ओर लौटते हैं, स्त्रियों की स्थिति उतनी ही गिरी हुई दिखाई देती है। यह बड़ी विलक्षण बात है कि भारत में वस्तु-स्थिति सर्वथा विपरीत है। भारतीय सभ्यता के इतिहास में एक विचित्र बात पाई जाती है। ज्यों-ज्यों हम पूर्ण जीवन की ओर बढ़ते हैं, स्त्रियों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक अवस्था में क्रमशः अच्छाई मिलती रहती है, किंतु सभ्य देशों के इतिहास में इस परंपरा का विरोध पाया जाता है, जबकि भारतीय परिवेश में नारी का सम्मान कुछ कमी के साथ फिर भी बना रहता है।

उपनिषद्-काल

जितने भी दृश्यादृश्य भिन्न-भिन्न रूप वाले जागतिक पदार्थ हैं, सृष्टि के आदि में ये सभी एक ही सर्वाधार शक्तिमान परमात्मा में अंतर्निहित थे, ये उपनिषदों का मुख्य सिद्धांत था।

उस समय के लक्ष्य से उपनिषदों में 'नारी' शब्द का प्रयोग बहुत खोज से मिलता है, तथापि नारी तत्त्व सर्वत्र ओत-प्रोत है। 'नारी तत्त्व सर्वशक्तिमान सर्वाधार श्री सर्वेश्वर प्रभु की शक्ति है, जो माया, प्रकृति, इच्छा, घी, श्री आदि अनेक शब्दों में उपनिषदों में वर्णित हुई है।'³⁶ इस काल में भी नारियाँ जाग्रत थीं। जिनमें मुख्य हैं—मैत्रेयी, गार्गी, नारी की जागरूकता शक्ति, चेतना के कारण ही समाज में इनका आदर था। कहा भी है—'इस काल में कन्याएँ भी युवा पति को प्राप्त करने के लिए ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन बिताती थीं और इस समय का उपयोग ज्ञानार्जन के लिए करती थीं।'³⁷ इस प्रकार नारी अपनी शक्ति का प्रयोग करती थीं।

'उपनिषद् काल में नारी से नर को कम नहीं माना गया है। कहा है—'जब नर जीवरूप में विचरण करता है तो नारी-बुद्धि बनकर सहयोग देती है। यदि नर दिन बनकर श्रम द्वारा तपता है तो नारी रात्रि बनकर उसके श्रम को हरती है। यदि नर मन बनाकर संकल्प-विकल्प करता है तो नारी वाणी बनकर उसका समाधान करती है। यह नर इंद्र बनकर जलवृष्टि करता है तो नारी पृथ्वी बनकर उस जल से प्राणियों का पोषण करती है।'³⁶

इस युग में नारी की जागृति में कुछ कमी आ गई थी। स्त्रियों को वेदों का अध्ययन करने से वंचित कर दिया गया। जिसके फलस्वरूप बाल-विवाह होने प्रारंभ हो गए और स्त्रियों के गौरवपूर्ण पद का हानि पहुँचने लगी। इस उपनिषद् काल में नारी का आदर-सम्मान और अधिकारों की दृष्टि से वह महत्त्व न रहा, जो उसे वैदिक काल में प्राप्त था। अतएव भारतीय नारी की अधोगति का प्रारंभ यहीं से मानना समीचीन जान पड़ता है।

संस्कृत-साहित्य

संस्कृत साहित्य के रचयिताओं में सर्वप्रथम अश्वघोष का नाम लिया जाता है। उनकी रचनाओं 'बुद्ध चरित और सौंदरानंद' में नारी का चित्रण है। 'बुद्ध चरित में यशोधरा का विलाप बड़ा ही कारुणिक और हृदयाद्राविक है। सौंदरानंद में उपमा और रूपकों वाले साहित्य से नारी-सौंदर्य का अच्छा चित्रण हुआ है।'³⁹ कालिदास की अमर कृतियों 'कुमार संभव', 'रघुवंश' और 'मेघदूत' एवं 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' में नारियाँ अपनी तपस्या से पुरुष से अधिक आकर्षक बनकर विश्वव्यापी प्रकृति की दिव्यमूर्तियाँ बन गई हैं। पार्वती ने एकाग्र चित्त से तप करके अपनी अभिलाषा की पूर्ति की। इस प्रकार कालिदास के साहित्य में नारी-चेतना का वर्णन है। कालिदास के पश्चात् संस्कृत के अग्रगण्य महारथियों में कविवर एवं महाकवि भवभूति का सर्वोच्च स्थान है। उनके तीनों नाटक—'महावीर चरित, मालती-माधव एवं उत्तर रामचरित में नारी-जीवन का ही वर्णन है। इनमें दांपत्य प्रेम, प्रेम विवाह का वर्णन किया है। नारी की प्रशंसा में भवभूति ने बड़ी सुंदर पंक्तियाँ कही हैं—'नारी के बिना पुरुष का जीवन अधूरा है और पुरुष के बिना नारी के सहयोग के पुरुषार्थ में कृतकार्य नहीं हो सकता। नारी पशु-प्रवृत्ति की प्रतीक नहीं है, वह तो पुरुष-जीवन में दिव्य गुणों की प्रतिमा है।'⁴⁰

आदिकाल

हिंदी का आदिकाव्य वीरगाथाओं तथा धार्मिक उपदेशों के रूप में लिखा गया है। फिर भी तत्कालीन वातावरण एवं परिस्थितियों के अनुसार इस काव्य में नारी के वीरांगना एवं कामिनी दोनों रूपों के दर्शन होते हैं। इस काल में अधिकांश साहित्य राजकुमारियों के अपहरण तथा उनके फलस्वरूप होने वाले युद्धों का वर्णन मिलता है। 'इस सामंतवादी युग में नारी की स्थिति अच्छी

नहीं थी। रासो काव्य-नायिकाओं के जीवन में नारी-दुर्दशा की कहानी ही कहते हैं।⁴¹

इस काल में नारी-सौंदर्य वर्णन भी स्वस्थ मनोवृत्ति का परिचायक नहीं था। डॉ० उषा पांडे का यह कथन अत्यंत समीचीन जान पड़ता है—‘वीर काव्य में भी नारी के शृंगार-सौरभ की मादकता से बोझिल स्वरूप ही दृष्टिगत होता है। उसके वीरांगना, वीरमता और क्षत्राणी के प्रांजल रूप को शृंगार की धूप ने प्रच्छन्न-सा कर दिया है।⁴² तत्कालीन समाज में नारी, विलास की सामग्री होने के कारण पुरुष की निजी संपत्ति ही मानी जाती थी। मनुष्य स्वयं तो अपनी इच्छा से कई पत्नियों रख सकता था, किंतु नारी के लिए पति की मृत्यु के पश्चात् सती हो जाना उसका कर्तव्य बना दिया गया। उपेक्षित नारीत्व इस प्रक्रिया के फलस्वरूप शृंगार की प्रेरणा बन गई थी।

भक्तिकाल

इस काल के साहित्य में नारी मुख्यतः दो रूपों में अंकित हुई। एक ओर तो वह सामान्य नारी-रूप में निंदा एवं उपेक्षा की पात्र रही, तो दूसरी ओर आराध्य देवताओं की संगिनी के रूप में सम्मानित भी हुई। एक ओर तो इस युग में निर्गुणमार्गी संत कवि थे। जिन्होंने नारी को मुक्तिमार्ग की बाधा एवं पुरुष को विनाश के पथ पर ले जाने वाली माना है। ‘कबीर ने नारी को नरक का द्वार माना है। मल्लूकदास नारी के नेत्रों को भयानक कहते हैं तथा दादूदयाल संसार को पतंगा तथा कनक-कामिनी को दीपक की लौ बताते हैं।⁴³

दूसरी तरफ़ प्रेममार्गी कवि जायसी ने नारी को ब्रह्म का प्रतीक मानकर उसकी प्रशंसा की है। तुलसीदास ने नारी के प्रति घृणात्मक दृष्टिकोण के कारण ही उसे ‘ढोल गँवार शूद्र एवं पशु’ के सादृश्य बताया। डॉ० नगेंद्र के मतानुसार, ‘तुलसीदास के ‘रामचरितमानस’ तथा अन्य ग्रंथों के विभिन्न प्रसंगों में, ऐसी अनेक उक्तियाँ हैं, जो किसी भी देशकाल की नारी के प्रति न्याय नहीं करतीं। उन्होंने नारी की प्रकृति, बुद्धि, विवेक, आचार, व्यवहार, सभी की निंदा की है।⁴⁴ सूर के काव्यों में गोपियों एवं राधा के माध्यम से नारी के प्रेम का जो रूप विकसित हुआ है, वह प्रेममय एवं त्यागमय तो अवश्य है, किंतु साथ ही वह एक असहाय नारी का चित्र भी प्रस्तुत करता है। अतः इस काल के कवियों के नारीविषयक दृष्टिकोण में मतभेद ही रहा है। ‘एक ओर तो उसे मुक्ति-मार्ग की बाधा मानकर उसकी उपेक्षा की है तो दूसरी ओर सीता, पार्वती की वंदना भी की है। एक ओर उसे नागिन व नरक का द्वार कहा है तो दूसरी ओर अपनी आत्मा को भी नारी-रूप में ही अंकित किया है।⁴⁵

रीतिकाल

रीतिकाल में भक्तिकाल की उपेक्षित नारी रीतिकालीन मुक्तक काव्य में आकर्षण की केंद्र बिंदु ‘नायिका बन गई और ये मुक्तक नायिका-भेदोपभेद एवं नख-शिख वर्णन में अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाने लगे। इन कवियों ने राधा-कृष्ण की लीलाओं का जो वर्णन किया है, उसमें भी आध्यात्मिकता की आड़ में नारी के प्रति वासना ही व्यक्त हुई है। उस विलासपूर्ण वातावरण में नारी का केवल कामिनी एवं प्रेयसी रूप ही शेष रह गया। ‘यद्यपि इस काव्य में अंकित प्रेमिकाएँ अधिकांश में परीकथाएँ ही हैं, जिनमें उज्ज्वल पत्नीत्व की गरिमा को खोजने पर निराशा ही मिलती है, फिर भी, प्रिय के ध्यान में आत्मविस्मृत हो अपना ही प्रतिबिंब दर्पण में देखकर रीझने वाली यह प्रेमिका रूपा नारी, प्रेमिका के उत्कर्षमय भाव-संवलित रूप का आदर्श भी प्रस्तुत करती है।⁴⁶

इन कवियों की दृष्टि न तो सीता के पतिव्रत पर गई, न सावित्री के सतीत्व पर, न पार्वती की पावनता पर गई और न ही यशोदा की ममतामयी मातृ-गरिमा पर! रीतिबद्ध कवियों के द्वारा नारी के सामाजिक जीवन के महत्त्व का उद्घाटन हो ही पाया। सभी बँधी-बँधाई लकीर पर उसके अंग-प्रत्यंग की शोभा, हाव-भाव और विलास-चेष्टाओं का वर्णन करते रहे। इस संबंध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्द विशिष्ट रूप में अवलोकनीय हैं। 'यहाँ नारी कोई व्यक्ति या समाज के संगठन की इकाई नहीं है, बल्कि सब प्रकार की विशेषताओं के बंधन से यथासंभव मुक्त विलास का एक उपकरण-मात्र है। देव ने कहा है—

'कौन गने पुर बन नगर कामिनी एकै रीति,
देखल हरै विवेक को चित हरै करि, प्रीति।'¹⁴⁷

आधुनिककाल

आधुनिककाल में सर्वप्रथम भारतेंदुयुग आता है। इस काल के कवियों की दृष्टि नारी के विविध रूपों पर तो अवश्य गई है, किंतु वे उसकी शक्ति के प्रति पूर्णतः आश्वस्त नहीं जान पड़ते। इस युग में नारी के प्रति परंपरागत दृष्टिकोण होते हुए भी नारी निपट भोग्या या उपेक्षित नहीं रही। उसकी हीन-दशा के प्रति भी कवि की सहानुभूति सजग हुई और उसका आवश्यक आदर देने की दिशा में भी ये कवि अग्रसर हुए।

द्विवेदीयुगीन काव्य में नारी-संबंधी दो दृष्टियाँ मिलती हैं—'एक रीतिकाव्य के अवशेष रूप में उसी परंपरा की कड़ी जुड़ी हुई भारतेंदु और बदरीनारायण प्रेमघन की नायिकाएँ'¹⁴⁸ दूसरी युगचेतना से प्रभावित गुप्त और हरिऔध के नारी-चरित्र। गुप्त जी ने नारी-चरित्रों का सर्जन पुरुषों की भोग्या एवं काव्या के रूप में नहीं वरन् पुरुष की संगिनी वाली भावना से किया है। 'साकेत', 'यशोधरा और विष्णुप्रिया' नारी-प्रधान कृतियाँ हैं। गुप्त जी नारी को मानवतावादी मूल्य, भावनाशील दृष्टि और सामाजिक संपन्नता की कसौटी पर परखते हैं।¹⁴⁹

हरिऔध ने 'प्रियप्रवास' के माध्यम से नारी के चरित्र की राधा रूप में प्रेम और कर्तव्य-भावना का अद्भुत सामंजस्य दिखाया है—'सामाजिक संदर्भों में नारी संबंधी समस्याओं—बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, बधिक वैधव्य पर न केवल इनका ध्यान गया वरन् पीड़ित नारी के 'आक्रोश' को भी व्यक्त किया है।'¹⁵⁰

रीतिकाल की नारी चौबीस घंटे भोग-विलास की वस्तु थी और द्विवेदीयुग की नारी सती सीता और सावित्री की भाँति मात्र वंदनीया। यह बदलते हुए सामाजिक संदर्भों की देन है कि छायावादी कवियों में नारी आदर्श और कल्पना के उच्चासन पर आसीन सुकुमार भावना और पुरुष की चिरसंगिनी है। 'प्रसाद के काव्य में नारी का पत्नी, प्रेयसी, गृहणी आदि का चित्रण के अनूठे उपमानों से भरा रूप चित्रित है। प्रकृति में नारी रूप को समाहित कर उदात्त भावभूमि प्रदान की है।'¹⁵¹

'निराला यह मानकर चलते हैं कि 'नारी का सौंदर्य रीतिकालीन कवियों के मांसल चित्रण में सीमित नहीं वरन् विस्तृत, दिव्य और रमणीय है।'¹⁵² इन कवियों ने नारी का भाव-चित्रण ही किया है, नारी-संबंधी अपनी मानसिक प्रतिमा का ही निर्माण किया है। इसलिए इनकी नारी वस्तुनिष्ठ न होकर आत्मनिष्ठ है, माँसल न होकर सूक्ष्म है। वह काल्पनिक और वायसी है।

दूसरी तरफ़ कथा-साहित्य में प्रेमचंद के बाद युग की नारी ने भारतीय समाज की

परंपरागत मान्यताओं को तोड़ा है। उसने स्वावलंबी बनने का प्रयास किया है और शिक्षित होकर समाज में अपने लिए नई राहों को तलाशा है। वह भी पुरुष की तरह स्वतंत्र, स्वच्छंद और आर्थिक दृष्टि में सबल हुई है।

नारी की संपूर्णता का दूसरा पहलू है। वह न केवल पुरुष को पूर्णता प्रदान करती है, बल्कि दुनिया का आधा प्रतिनिधित्व भी उसके हाथों में है।

अनादिकाल से नारी पूजनीय रही है। इसलिए पुरुष को यदि शिव का प्रतिरूप माना गया है, तो नारी को शक्ति का। इस सृष्टि की सुंदरतम कृति नारी ही है। इसलिए उसको सृष्टि की साधना और प्रकृति का मूर्त रूप माना गया है, किंतु सामाजिक परिस्थितियों के चलते वैदिक काल के बाद नारी को निम्न दृष्टि से देखा जाने लगा और रीतिकाल आते-आते नारी एक उपभोग की वस्तु बनकर रह गई।

संदर्भ

1. डॉ० वल्लभदास तिवारी, हिंदीकाव्य में नारी, पृ० 36
2. वही, पृ० 37
3. डॉ० जे०एम० देसाई, आधुनिक हिंदीकाव्य में नारी, पृ० 37
4. कल्याण, नारी विशेषांक, पृ० 130
5. डॉ० वल्लभदास तिवारी, हिंदीकाव्य में नारी, पृ० 37-38
6. अमरकोश-द्वितीय खंड, मनुष्य वर्ग, पृ० 36
7. माताप्रसाद गुप्त, बीसलदेव रासो, छंद-36, पृ० 116
8. डॉ० वल्लभदास तिवारी, हिंदीकाव्य में नारी, पृ० 37-38
9. शिवकुमार शर्मा, हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ० 71
10. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 24
11. डॉ० वल्लभदास तिवारी, हिंदीकाव्य में नारी, पृ० 157
12. वही, पृष्ठ 157
13. Psycho Analytic study of the family by flugal, P. 186
14. एस०एस० एल्टेकर, ग्रेट विमैन ऑफ़ इंडिया, पृ० 157
15. Patricia Branca, women in Eurape since 1975, P 72
16. कबीर, कबीर ग्रंथावली, पृ० 43
17. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा संख्या 47
18. मैथिलीशरण गुप्त, यशोधरा, पृ० 15
19. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, लज्जा सर्ग, पृ० 20
20. बिहारी, बिहारी रत्नाकर, दोहा संख्या 334
21. रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश, पृ० 274
22. रामपाल सिंह वर्मा, मनोविज्ञान के संप्रदाय, पृ० 3
23. डॉ० महावीर दाधीच, आधुनिकता और भारतीय परंपरा, पृ० 10
24. डॉ० हरदेव बाहरी, वृहत् अंग्रेजी-हिंदी कोश, पृ० 275
25. इंद्रदेव तिवारी, सामाजिक उन्नति, पृ० 339

26. हिंदी विश्वकोश, चतुर्थ खंड, पृ० 283
27. डॉ० रत्नाकर पांडेय, हिंदी साहित्य-सामाजिक चेतना, पृ० 157
28. डॉ० महावीर दाधीच, आधुनिकता और भारतीय परंपरा पृ० 10
29. वृहद्-सहित, पृ० 74
30. डॉ० रेखा कुलकर्णी, हिंदी के सामाजिक उपन्यासों में नारी, पृ० 84
31. वही, पृ० 70
32. कल्याण, नारी विशेषांक, पृ० 102
33. वही, पृ० 102
34. डॉ० जे०एम० देसाई, आधुनिक हिंदीकाव्य में नारी, पृ० 18
35. डॉ० प्यारेलाल शुक्ल, भक्तिकालीन काव्य में चित्रित नारी-जीवन, पृ० 9
36. कल्याण, नारी विशेषांक, पृ० 108
37. डॉ० वल्लभदास तिवारी, हिंदीकाव्य में नारी, पृ० 68
38. वही, पृ० 109
39. वही, पृ० 112
40. भवभूति, उतररामचरित, पृ० 30
41. डॉ० जे०एम० देसाई, आधुनिक हिंदीकाव्य में नारी, पृ० 38
42. वही, पृ० 39
43. डॉ० जे०एम० देसाई, आधुनिक हिंदी काव्य में नारी, पृ० 39
44. वही, पृ० 40
45. वही, पृ० 43
46. डॉ० जे०एम० देसाई, आधुनिक हिंदीकाव्य में नारी, पृ० 44
47. शिवकुमार शर्मा, हिंदी साहित्य
48. डॉ० देवेश ठाकुर, प्रसाद के नारी-चरित्र, पृ० 149
49. मैथिलीशरण गुप्त, व्यक्ति और रचना, पृ० 127
50. डॉ० देवेश ठाकुर, प्रसाद के नारी-चरित्र, पृ० 185
51. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, पृ० 46
52. डॉ० इंद्रनाथ मदान, आधुनिक कविता का मूल्यांकन, पृ० 154

पुत्र श्री प्रेमचंद
गाँव डींगर माजरा, तह० घरौंदा
जि० करनाल (हरि०) 132114
मो० 09255747057

जयशंकर प्रसाद के नाटक और धर्मभावना

डॉ० राजाराम अग्रवाल

साहित्य समाज का दर्पण है। यह जब तक समाज के लिए उपदेश है, तभी तक ग्राह्य है। उपादेयता में ही इसकी प्रासंगिकता निहित है। समसामाजिक परिस्थितियाँ लेखक को प्रभावित करती हैं। लेखक के मन पर उन परिस्थितियों के प्रति कुछ विशिष्ट प्रतिक्रिया होती है, यह प्रतिक्रिया साहित्य सृजन का हेतु होती है। साहित्य में नाटक प्रत्यक्ष और सामाजिक विधा है। नाटक का समाज से सीधा संबंध स्थापित होता है। जयशंकर प्रसाद का नाट्य-साहित्य मानव की भावमुक्ति का उद्गम है। प्राचीन इतिहास के युग के प्ररिप्रेक्ष्य में नवीन सामग्री को प्रस्तुत कर प्रसाद जी ने अपने नाटकों को गंभीरता एवं गहन अर्थवत्ता प्रदान की है। धर्म भारतीय समाज को प्रभावित करने वाला सर्वप्रमुख तत्त्व रहा है। भारत का इतिहास धर्म का इतिहास कहा जाए, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

गुप्तकाल, जो भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग कहलाता है, धर्म और कला के क्षेत्र में चरमोत्कर्ष ही इसका हेतु है। जयशंकर प्रसाद जी ने अपने नाटकों और कहानियों में भारतीय इतिहास का गुणगाण किया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में जयशंकर प्रसाद जी के नाटकों में धर्म को किस प्रकार व्याख्यायित किया गया है, इसका संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है।

सर्वप्रथम संक्षेप में धर्म का अर्थ जानना समीचीन होगा। 'धर्म' शब्द 'ध' धातु से निर्मित है। जिसका अर्थ है—धारण शक्ति। अतः किसी भी वस्तु की धारणशक्ति को धर्म कहा जाता है। 'महर्षि कणाद' के अनुसार—'यताश्च्युदयानिःश्रेयाससिद्धिःस धर्म'।

धारण शक्ति का अभिप्राय वस्तु के उस गुण से है, जो उसे अपने स्वरूप में स्थिर रखती है। धर्म व्यक्ति तक सीमित नहीं है। व्यक्ति और समाज के बीच विभाजन की कोई रेखा नहीं खींची जा सकती। धर्म के माध्यम से सामाजिक सुधार संभव है। धर्म संस्कृति का प्रमुख नियामक तत्त्व है। धर्म और ईश्वर को इहलोक के साथ-साथ परलोक और मोक्ष से जोड़कर देखा जाता है। जगदीशचंद्र माथुर का कथन है कि 'जानवर होने के कारण मनुष्य को किसी-न-किसी बाहरी अनुशासन की आवश्यकता है जिसके सहारे वह चल सके। यही धर्म है।'²

भारतीय जीवन पद्धति सदैव धर्म से संपृक्त रही है। जीवन के समस्त क्रियाकलाप धर्म से नियंत्रित एवं क्रियान्वित होते हैं। जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों में धर्म के जिस स्वरूप का वर्णन किया है, वह भारत का सनातन एवं पुरातन धर्म है, जिसे प्रसाद जी ने बड़ा व्यापक माना है और कहा है कि धर्म के बिना राष्ट्रनीति और राजनीति नहीं चलती।³

सनातन धर्म की अखंड धारा में परिवर्तन होते रहे हैं और आज भी जारी है। सुविधा की दृष्टि से हम इसे दो भागों में इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं—प्राचीन धर्म, अर्वाचीन धर्म।

प्रसाद जी ने नाटकों में भारतीय सनातन धर्म के पाँच रूपों का वर्णन किया है—1. वैदिक धर्म, 2. बौद्ध धर्म, 3. भागवत धर्म, 4. शैव धर्म, 5. अर्वाचीन धर्म। शोध-पत्र की सीमा की दृष्टि से जयशंकर प्रसाद जी के नाटकों में धर्म के उपर्युक्त स्वरूपों का अत्यंत संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—वेद-वेदांगों, ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों, सूत्रग्रंथों आदि में वर्णित धर्म को वैदिक धर्म कहा गया है। जयशंकर प्रसाद जी ने वैदिक धर्म का उल्लेख करते हुए संकेत किया है कि पहले आर्य लोग प्राकृतिक शक्तियों को ही देवताओं के रूप में मानते थे। वे देवगणों को अपने अनुकूल बनाने के लिए यज्ञ करते थे और यज्ञों से तृप्त होकर देवगण सदैव आर्यों के अनुकूल रहते थे।⁴

जयशंकर प्रसाद जी ने अपने विभिन्न नाटकों में वैदिक धर्म को अनेक क्रियाकलापों, संस्कारों, संबंधों का चित्रण किया है। राजा-प्रजा के संबंधों का बड़ा ही यथार्थ चित्रण इनमें हुआ है। च्यवन ऋषि जैसे त्यागी ब्राह्मणों का विश्वास था कि धर्म कभी धन के लिए नहीं आधारित होना चाहिए, वह श्रेय के लिए होना चाहिए, प्रकृति के कल्याण के लिए होना चाहिए। इसी धन को तपोधनों का परमधर्म मानते थे।⁵

जयशंकर प्रसाद जी ने वैदिक धर्म में आई जड़ता के फलस्वरूप उत्पन्न बौद्ध-धर्म की विचार-विधि का भी चित्रण अपने नाटकों में किया है।

बौद्ध धर्म उस विचारधारा का स्वाभाविक परिणाम था, जो वैदिक कर्मकांड, हिंसायुक्त यज्ञ के आडंबर और पुरोहितवाद के विरुद्ध भारत में पनप रही थी और जिसका स्वर उपनिषदों में सुनाई पड़ने लगा था। अतः लोगों को एक ऐसे धर्म की आवश्यकता थी, जो सुगम और सरल हो।

बुद्ध जी ने वैदिक धर्म में जो खराबियाँ आ गई थी, उन्हें दूर करके उसी धर्म का पुनरुद्धार किया। उन्होंने अपने मंतव्यों एवं सिद्धांतों के विषय में बार-बार कहा कि 'एषःधम्मो सनातन' अर्थात् यही सनातन धर्म है।⁶

जयशंकर प्रसाद जी ने बौद्ध धर्म की विशिष्ट मान्यताओं का उल्लेख करते हुए स्पष्ट संकेत किया है कि 'महात्मा गौतम बुद्ध ने जब यह देखा कि यज्ञ में निरीह पशुओं की बलि दी जाती थी और पशु-बलि को धर्म कहा जाता था, तब उन्होंने (बुद्ध) यज्ञों में होने वाली बलियों को रोककर करुणा और सहानुभूति की प्रेरणा से कल्याण का प्रचार करना आरंभ किया।'⁷

प्रसाद जी ने लिखा है कि 'बौद्ध धर्म कोई नया धर्म नहीं था, अपितु वह पुरातन मूलधर्म का ही रूपांतर था।'⁸ 'महानिदेश' नामक बौद्धग्रंथ में मिलता है। जब यवन और कुषाणधारी विदेशी राजाओं ने इस धर्म को स्वीकार कर लिया था तभी गुप्तकाल में यह वैष्णव धर्म बन गया था।⁹

भागवत धर्म ने भक्ति को मोक्ष-प्राप्ति का साधन माना है और भक्ति को मुक्ति से भी बढ़कर सिद्ध किया है। वैदिक धर्म में मुक्ति केवल उच्च वर्ग के लोगों को ही प्राप्त थी, परंतु भागवत (वैष्णव) धर्म ने भक्ति के द्वार स्त्री और शूद्र के लिए खोज दिए। जयशंकर प्रसाद जी ने भी अपने नाटकों में यहीं संकेत किया है कि भागवत धर्म के प्रवर्तक श्रीकृष्ण थे। उन्होंने शूद्र गोप से लेकर ब्राह्मण तक की समता का प्रचार किया था, प्राणीमात्र के प्रति समदर्शी होने की प्रेरणा दी थी।¹⁰

जयशंकर प्रसाद जी ने अपने नाटकों में शैव धर्म की ओर भी संकेत दिए हैं। प्रसाद जी ने स्वयं शिव के भयंकर एवं सौम्य दोनों रूप स्वीकार किए हैं। इसी कारण शिव कभी तो रूद्र एवं भैरव बनकर श्रंगीनाद करते हैं तथा दूसरी ओर वे शिव हैं मंगलमय हैं, सुख के धर्म हैं और

जीवन-ज्योति स्वरूप हैं।¹¹

भारत में अँग्रेजी राज्य की स्थापना होते ही हिंदू धर्म की अवस्था अत्यन्त जर्जर हो गई थी। राज्य समर्थित ईसाई धर्म की आँधी ने उस समय भारत को झकझोर डाला था। इससे पुरानी धार्मिक व्यवस्था पर गहरा आघात पहुँचा था। स्वतंत्रता, समानता और व्यक्तिवाद का प्रचार हो रहा था। हिंदू, धर्म की रूढ़ियों, कुरीतियों, अंधविश्वासों और कुसंस्कारों का विनाश होकर धर्म का विशुद्धरूप लोगों के सामने प्रकट हुआ। जयशंकर प्रसाद ने अपने 'कामना' और 'एक घूँट' नाटकों में इस अर्वाचीन धर्म की ओर संकेत करते हुए बताया है कि 'पहले लोग प्राचीन आदर्शों में विश्वास रखते थे। उनके जीवन में महत्वाकांक्षा, अभाव संघर्ष लेशमात्र भी न था।'¹² परंतु विदेशी अँग्रेज जाति की महत्वाकांक्षा ने जब इस (हिंदू) सीधी-साधी जाति पर अपना शासन करने का निश्चय किया, तब सबसे पहले इस जाति के व्यक्तिगत महत्ता के प्रलोभन वाले विचारों को फैलाने के लिए स्वर्ण और मदिरा का प्रचार किया।¹³

प्रसाद ने अपने नाटकों में उत्तर वैदिककाल से लेकर अपने समय तक के उत्तरोत्तर विकसित धार्मिक भावना का निरूपण करके तत्कालीन देशकाल के अनुरूप धार्मिक वातावरण की अत्यंत कलात्मक सृष्टि की है। उन्होंने अपने नाटकों में धर्म के विकृत रूपों की विसंगतियों पर तीखे प्रहार किए हैं। धर्म की आड़ में उभरने वाले तत्त्वों का भंडाफोड़ करके आस्था और विश्वास देने के लिए एकता और प्रेम का संदेश दिया है। इनका मंतव्य है कि मानवता तभी विकसित होगी, जब वह मानव को सौंदर्य और मूल्य दिला सके। आज के धर्म और नैतिकता में पहले मानवीयता का संस्पर्श होना आवश्यक है जिससे व्यक्ति के बीच की दीवार गिर सके।

संदर्भ

1. कणादः वैशेषिक दर्शन 1.2
2. जगदीशचंद्र माथुर, पहला राजा, पृ० 41
3. जयशंकर प्रसाद, जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० 82
4. जयशंकर प्रसाद, करुणालय, पृ० 14
5. जयशंकर प्रसाद, जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० 68
6. डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकारः भारत का प्राचीन इतिहास, पृ० 277
7. जयशंकर प्रसाद, सकंदगुप्त, पृ० 52
8. वही, पृ० 119
9. डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार, प्राचीन भारत का सामाजिक और धार्मिक जीवन, पृ० 88
10. हरिदत्त वेदालंकार, भारत का सांस्कृतिक इतिहास, पृ० 99
11. जयशंकर प्रसाद, राज्यश्री, पृ० 68
12. जयशंकर प्रसाद, कामना, पृ० 12
13. वही, पृ० 16

शेखुपुर दड़ौली
जिला-फतेहाबाद (हरियाणा) 125053
मो० 09896789100

संरचनावाद और सस्यूर

डॉ० राकेश रंजन

'No one has yet seen a signified without a signifier'—Saussure

संरचनावाद कोई आंदोलन या अनुशासन नहीं, बल्कि एक अन्वेषण पद्धति है। यह किसी क्षेत्र-विशेष से संबद्ध सामग्री को देखने और उसकी तर्कसंगत व्याख्या प्रस्तुत करने का एक नजरिया है। दूसरी बात संरचनावाद का मूल आधार भाषा विज्ञान है। इसके अतिरिक्त यह नृतत्वशास्त्र, मनोविज्ञान, राजनीतिशास्त्र, गणित, भौतिक विज्ञान, स्थापत्य, फैशन, भाषा आदि अनुशासनों और सभी सामाजिक व्यवहारों से जुड़ा हुआ है। अध्येय विषय कुछ भी हो, इस प्रविधि में उस पर संरचना की धारणा को सचेत रूप से लागू किया जाता है।¹

संरचनावाद मूलतः यथार्थता-बोध का सिद्धांत है, अर्थात् यथार्थता या विश्व हमारी चेतना एवं बोध का हिस्सा किस प्रकार बनते हैं या हम वस्तुओं के सत्य को उद्बुद्ध किस प्रकार करते हैं या अर्थोत्पत्ति किन आधारों पर है तथा अर्थोत्पत्ति की प्रक्रिया किस प्रकार संभव होती है और कैसे जारी रहती है? संरचनावाद रचना की संश्लिष्टता में विश्वास रखता है। इसकी मान्यता है कि रचना ध्वनि, बिंब, प्रतीक आदि का एक गुंफ है। रचना पर्व-दर-पर्व इतनी जटिल होती है कि उसके अवयवों को विश्लेषित करके ही उसको समझा जा सकता है। संरचनावाद के लिए भी रचना शाब्दिक या भाषिक संरचना है।²

संरचनावाद में संरचना की अवधारणा सस्यूर से गृहीत है, जहाँ भाषा की संरचना का अभिप्राय भाषा के विभिन्न तत्त्वों के मध्य संबंधों का वह तंत्र है, जिसके आधार पर भाषा बोली और समझी जाती है।³

फर्डिनांद सस्यूर (1857-1913 ई०) ने भाषा के संरचनावाद की नींव डाली। इसलिए आधुनिक संरचनावाद और उत्तर-संरचनावाद सस्यूर को अपना जनक मानते हैं।⁴ वैसे सस्यूर के यहाँ भाषिकी एक व्यापकतर विज्ञान, संकेत-विज्ञान (Semiology) का हिस्सा है। सस्यूर कहता है कि विश्व में अर्थोत्पत्ति संभव है संकेतों के तंत्र के निमित्त, जिसमें प्रत्येक वस्तु पारस्परिक संबंधों में गुंफित है। ये संबंध द्विपक्षीय स्वरूप के हैं, अर्थात् जहाँ संगति के वाहक हैं, वहाँ अंतर्विरोध पर भी आधारित हैं। संबंधों के इस तंत्र के प्रकार्य से अर्थ स्थापित होते हैं और वस्तुओं की पहचान संभव हो पाती है। संकेत विज्ञान की खोज और अनुसंधान का बड़ा क्षेत्र संस्कृति है। संस्कृति के प्रत्येक व्यंजक के तल में अमूर्त संबंधों का एक तंत्र क्रियाशील है, जिसकी बदौलत सांस्कृतिक अर्थोत्पत्ति का प्रकार्य जारी रहता है। भाषा तो संस्कृति की केंद्रीय व्यंजक है ही, प्राचीन किस्से-कहानियाँ, मिथक, दंत-कथाएँ, देवमाला, रीति-रिवाज, नातेदारियाँ, रहन-सहन, खान-पान, साज-सज्जा, आचार-व्यवहार, शिष्टाचार, तौर-तरीके, तीज-त्योहार, मेले-ठेले, खेल-तमाशे

इत्यादि संस्कृति के बीसियों वर्ग हैं। प्रत्येक वर्ग में तत्त्वों के पीछे संबंधों का एक तंत्र है, जिसके प्रकार्य से अर्थ का संप्रेषण होता है। इसलिए तत्त्वों में संबंधों का तंत्र, जो स्वरूप की दृष्टि से अमूर्त है तथा जो संगति एवं विरोध के दोहरे प्रकार्य का वाहक है और जिसके निमित्त अर्थ स्थापित होते हैं, संरचना कहलाता है। (स्पष्ट रहे कि संरचना की यह अवधारणा 'नई समीक्षा' की संरचना 'Structure' एवं विन्यास 'Texture' की संकल्पना से नितांत हटकर है तथा इसका अर्थ रूप अथवा ढाँचा भी कदापि नहीं।⁵

संस्कृति अथवा भाषा अथवा साहित्य के किसी व्यंजक या वर्ग की संरचना से अभिप्राय उस व्यंजक या वर्ग के तत्त्वों के मध्य अमूर्त संबंधों का वह तंत्र है, जिसके माध्यम से अर्थ स्थापित होते हैं। संबंधों के इस तंत्र की विशिष्टता यह है कि इसमें प्रत्येक क्षण स्वनियमन एवं आत्म-संगति की प्रक्रिया चलती रहती है और प्रत्येक परिवर्तन एवं रूपांतर अथवा वृद्धि के उपरांत संरचना अपने वृहत् स्वरूप को दोबारा प्राप्त कर लेती है और यह प्रत्येक निमित्त में संपूर्ण और प्रभावकर है। संरचना इतिहास के भीतर है, लेकिन चूँकि प्रत्येक क्षण पूर्ण और प्रभावकर है, इसलिए स्वतंत्र भी है।⁶

सस्यूर की अवधारणाएँ कई अर्थों में क्रांतिकारी अवधारणाएँ रहीं। सस्यूर मानते हैं— भाषा एक व्यवस्था (सिस्टम) है। वह चिहनों की निर्मिति है। चिह्न जो मनमाने अथवा यादश्च्छिक (Arbitrary) और भेदपरक होते हैं। एक भाषाई चिह्न में दो तत्त्व होते हैं। एक स्वर-बिंब (या लिखित बिंब) और दूसरा उसका विचार। पहला तत्त्व 'व्यंजक' या 'संकेतक' (Signifier) है, दूसरा है 'व्यंग्य' या 'संकेतित' (Signified)। मसलन, 'पेड़' शब्द पढ़ या सुनकर हम एक व्यंजक प्राप्त करते हैं, जो तुरंत ही हमारे मन में 'पेड़' का व्यंग्य बन जाता है। चिह्न के ये दो तत्त्व नियम रहित हैं। इस मनमानेपन या यादश्च्छिकता के भी दो कारण हैं। एक है भाषागत परंपरा। 'पेड़' कहने से बहुत से व्यंजकों का समूह अपने-आप हमें 'व्यंग्य' तक ले आता है। यह है व्यंजक की व्यंग्य से कार्यकारकता। यह भाषिक परंपरा का फल है। दूसरा यह कि व्यंजक व्यंग्य की पूरकता के भीतर कोई 'अनिवार्य' स्वाभाविकता नहीं होती। व्यंजक और उसके मायने (व्यंग्य) इसीलिए 'मनमाने' होते हैं।⁷

सस्यूर का कथन है कि भाषा एक ऐसी संरचना है, जिसकी अपनी विधियाँ हैं। बाह्य विश्व या यथार्थ से संपर्क का माध्यम भी यही है, अतः यह समस्त मानवीय यथार्थ की विशिष्ट संरचना भी है। इसलिए इसका अध्ययन सावधानीपूर्वक होना चाहिए। वे आगे कहते हैं कि भाषा अविकल संकेतों का एक ऐसा तंत्र है, जिसमें संकेत यानी शब्द आपसी अंतर से अर्थ ग्रहण करते हैं और वे अर्थ के लिए एक-दूसरे पर निर्भर हैं, स्वयं का कोई अर्थ और अस्तित्व नहीं रखते।⁸

शब्द-अर्थ की परस्परता का मनमाना अथवा नियमरहित होना ही वह तत्त्व है, जो सस्यूर ने भाषाविज्ञान और संरचनावाद को दिया। इसने भाषा की दुनिया और यथार्थ की दुनिया के बीच एक अनिवार्य 'टूट' पैदा कर दी। शब्द हमारे अनुभवों का संचार करते हैं, वे सिर्फ उन्हें 'बिंबित' या अभिव्यक्त मात्र नहीं करते। चीजें (यथार्थ) इसीलिए शब्दार्थ तय नहीं करतीं, बल्कि शब्द अर्थों को तय करते हैं। शब्द उस तमाम अनुभव को रूप देते हैं, जो बिना भाषा के नहीं बताया जा सकता। यथार्थ शब्दों को अर्थ नहीं देता। शब्द यथार्थ को अर्थ देते हैं। नियंत्रित करते हैं। इस तरह 'पेड़' अपने से बाहर पेड़ की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि 'पेड़' चिह्न के माध्यम से हम

पेड़ को झाड़ी, झंखाड़, घास-पात से अलग कर पाते हैं। इस तरह व्यंजक-व्यंग्य एक-दूसरे से अभिन्न हैं।

यदि यथार्थ और शब्द का संबंध मनमाना है, तो हम अर्थ कैसे प्राप्त करते हैं? व्यंजक अर्थ कैसे पैदा करता है? सस्यूर कहते हैं कि चिह्न का काम (अर्थ) अन्य चिह्नों के साथ संबंध-यानी भेद-से निश्चित होता है। हम शब्दों को उनके आपसी भेद से समझते हैं। उनके भेद ही उन्हें अर्थ देते हैं। हम उनके भेद से अनुभवों के खंड प्राप्त करते हैं। वही अर्थ होते हैं। हम 'पेड़' को ऐसे ही समस्वर-पैर, पेड़ा, पैड़ स्वर से अलगाते हैं और व्यंग्य के रूप में हम झाड़ी, झंखाड़ से अलग करते हुए अर्थ पाते हैं। इस अर्थ में भाषा एक व्यवस्था है जिसके हर तत्त्व की स्थिति उसके संपूर्ण ढाँचे में स्थित होने में है।

शब्दार्थ की खोज में आगे जाकर सस्यूर ने बताया कि हर भाषा का अपना वाक्य-क्रम, शब्द-क्रम (सिन्टेग्मैटिक) है। लेकिन हमें अर्थ प्राप्त करने के लिए 'जो नहीं है' उससे जोड़कर देखना होता है। यही 'संदर्भ' है। साहित्य चिंतन पर इस पद्धति का बहुत गहरा असर हुआ। रूसी रूपवाद की तरह सस्यूर के निष्कर्षों के दूरगामी परिणाम हुए। दोनों ने ही 'अर्थ' की प्रक्रिया को नए ढंग से देखा। चिह्न के मनमाने मिजाज की अवधारणा ने कालांतर में संरचनावाद को विकसित किया जिसने भाषा और यथार्थ के बीच की 'टूट' को रेखांकित किया। यहीं से यह विचार निकला कि हरेक अर्थ अपने यथार्थ से स्वतंत्र होता है।

गोपीचंद नारंग कहते हैं-सस्यूर के भाषा-दर्शन का एक महत्वपूर्ण नुक्ता यह है कि सस्यूर ने इस विचार को सदा के लिए निरस्त कर दिया कि भाषा शब्दों के ऐसे समुच्चय का नाम है, जिसका मूलभूत उद्देश्य वस्तुओं का नामकरण है। सस्यूर के दर्शन के अनुसार यह समझना मिथ्या है कि शब्द ऐसे व्यंजक हैं, जो वस्तुओं से संगति रखते हैं। उसका कहना है कि शब्द मात्र संकेत है, चाहे यह बोला जाए या लिखा जाए, जो दो पार्श्वों से बना हुआ है (पन्ने के दो पार्श्वों के समान)। संकेत के एक पार्श्व को वह 'संकेतक' (Signifier) कहता है और दूसरे पार्श्व को 'संकेतित' (Signified) नामक देता है। भाषा की जिस अवधारणा को सस्यूर ने निरस्त कर दिया, उसको यों व्यक्त किया जा सकता है-

Word = Thing

शब्द = वस्तु

इसके बजाय सस्यूर भाषा के जिस मॉडल को प्रस्तुत करता है, वह यों है-

Sign = $\frac{\text{Signifier}}{\text{Signified}}$

संकेत = $\frac{\text{संकेतक}}{\text{संकेतित}}$

स्पष्ट है कि सस्यूर के इस मॉडल में 'वस्तु' के लिए कोई स्थान नहीं। यानी भाषा में शब्द अर्थ रखते हैं, इसलिए नहीं कि शब्द का वस्तु से एक और एक का संबंध है, अपितु इसलिए कि शब्द संबंधों के विशद तंत्र का हिस्सा है : 'part of a system of Relations.'

सस्यूर ने भाषा के संबंध में जिस अंतर्दृष्टि से दर्शन को समृद्ध कर दिया, उसे उसकी एक सूक्ति से यों स्पष्ट किया जा सकता है : 'Language is a form, not a substance' ¹⁰

सस्यूर भाषा के प्रकार्य को समझने के लिए भाषा की संकल्पना दो प्रकार से करता है। एक को वह 'लांग' (Langue) कहता है दूसरे को 'पारोल' (Parole)। सस्यूर की दृष्टि में 'लांग' (भाषा) और 'पारोल' (वाक्) में अंतर यह है कि भाषा का संपूर्ण तंत्र (जो भाषा के किसी भी वास्तविक उदाहरण से पूर्व मौजूद है) 'लांग' है और 'वाक्' यानी बोली जाने वाली कोई भी घटना 'पारोल' है, जो भाषा के संपूर्ण तंत्र के बिना अस्तित्व में नहीं आ सकती और उसके अंदर रचित होती है। 'लांग' की अवधारणा समाज में रची-बसी हुई है। उससे किसी भी समाज में भाषा के सारे बोलनेवाले (अवचेतन रूप में ही सही) काम लेते हैं और उसके बगैर कोई भी भाषा नहीं बोल सकता। 'पारोल' भाषा के संपूर्ण तंत्र का मात्र वैयक्तिक दृष्टान्त है, जो किसी व्यक्ति के भाषा-व्यवहार यानी बोलचाल में घटित होता है। 'लांग' भाषा का संपूर्ण अमूर्त तंत्र है और 'पारोल' उसका वह सीमित व्यक्तिगत रूप या मूर्त रूप जो किसी एक भाषा को बोलनेवाले व्यक्ति के भाषा-व्यवहार में व्यक्त होता है।¹¹

इन दोनों का भेद सस्यूर के भाषा-दर्शन का मूल है और उसके परिणाम दूरगामी हैं। 'लांग' से न्यूनाधिक वह अवधारणा अभिप्रेत है, जिसको सामान्य बोलचाल में 'भाषा' कहते हैं। अर्थात् भाषाई व्याकरण और परंपराओं की वह समग्र अमूर्त अवधारणा, जिसके अनुसार हम किसी भाषाई समाज में संप्रेषण का कार्य लेते हैं, जबकि 'पारोल' दैनंदिन भाषा-व्यवहार है। भाषा का वह प्रयोग, जो भाषा बोलनेवाला कोई भी व्यक्ति करता है। गोया 'लांग' एक समग्र अमूर्त अवधारणा है, एक संपूर्ण मानसिक तंत्र, जो कोई भी भाषा रखती है और पारोल उसका मात्र वह हिस्सा है, जो कोई व्यक्ति किसी समय व्यवहार हेतु प्रयोग में लाता है। 'पारोल' वस्तुतः हिमशैल (Iceberg) का ऊपरी सिरा है, जो समुद्र की सतह पर तैरता रहता है, जिसको हम देख सकते हैं। 'लांग' समग्रता में हिम का वह विशाल खंड है, जो ऊपरी सिरे को तो सँभाले रहता है, लेकिन स्वयं अदृश्य रहता है।¹²

अर्थात् भाषा एक अमूर्त तंत्र है, जो पूर्णतया किसी एक स्थान पर दृष्टिगत नहीं होता, किंतु वैयक्तिक व्यवहार में थोड़ा-बहुत व्यक्त होता रहता है। भाषा के उस समग्र अमूर्त तंत्र का जिसके अनुसार वैयक्तिक भाषा-व्यवहार संभव होता है। पता लगाकर उसके सिद्धांतों को सूत्रबद्ध करना चाहिए। वैयक्तिक भाषा व्यवहार अधूरा, अध-कचरा, गलत-सलत और विषम रूप (Heterogeneous) होता है, जबकि समग्र अमूर्त तंत्र संपूर्ण और एकरूप (Homogeneous) होता है। यह गोया इसका प्रमाण है कि समग्र अमूर्त तंत्र संरचना (Structure) रखता है। डॉ० सत्यनारायण व्यास ने इसी संदर्भ में कहा है—संरचनावाद की अंतररचना में कहा गया है कि सकलता (Totality) के कई भाग (Parts) होते हैं, इनमें पारस्परिक संबंध होते हैं, यह संबंध ही संरचना (Structure) का निर्माण करते हैं। ये भाग जड़ नहीं होते। संरचनावादी मानते हैं कि दुनिया की सभी वस्तुएँ भाषा का स्वरूप हैं। ये स्वरूप (Forms) हमारे सामान्य विचार भी हैं। जब हम दूसरे लोगों से बातचीत करते हैं, तब शब्दों या पदों को काम में लेते हैं। इन शब्दों या पदों का एक सामान्य अर्थ होता है, जिसे बातचीत करनेवाले लोग समझते हैं। शब्दों के इस सामान्य अर्थ के पीछे कोई-न-कोई तार्किक व्यवस्था (Logical order) अवश्य होती है।¹³ इस चिंतन

के परिणाम अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। चार्ल्स फ्रीज का कहना है कि सस्यूर ने शब्दों के माध्यम से समझे जानेवाले शब्द-केंद्रित चिंतन (Word Centered Thinking) की भाषागत अवधारणा को सदा के लिए बदलकर रख दिया और उसका स्थान भाषा की 'संबंधात्मक' एवं 'संरचनात्मक' अवधारणा ने ले लिया। भाषा में यदि किसी अवयव का निसर्गतः कोई महत्त्व नहीं, और महत्त्व स्थापित होता है उस संबंध के अनुसार, जो किसी अवयव का भाषा में दूसरे अवयवों से है, तो उससे भाषा के संबंध में सोचने का कोण ही बदल जाता है।

एक उदाहरण से इसे समझा जा सकता है। आवाजों को भाषा के अवयवों के रूप में लें, तो आवाजों में विभेद का संबंध विरोधों (oppositions) के तंत्र को स्थापित करता है। जैसे शब्द 'जाल' और 'चाल' में केवल आरंभिक ध्वनि में अंतर के कारण दोनों शब्दों के अर्थ भिन्न हो गए हैं। अतः सिद्ध है कि अर्थ संरचनात्मक रूप से उस विभेद में है, जो एक ध्वनि का दूसरी ध्वनि से है। भाषा इस अंतर को स्वीकार करती है। सो यह फर्क भाषा की संरचना में सम्मिलित है।

भाषा की इस प्रणाली से उसकी दो विशेषताएँ लक्षित होती हैं। प्रथमतः यह यादृच्छिक (Arbitrary) और स्वायत्त है और दूसरे यह कि यह विन्यस्त (Systematic) है। स्वायत्त इसलिए कि यह आत्मनिर्भर है, स्वयं अपना औचित्य है। यदि हम इस तथ्य के विरुद्ध अपील करना चाहें कि 'जाल' / 'चाल' का अंतर अर्थपूर्ण क्यों है, तो भाषा से इतर कोई बाह्य शक्ति इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकती। दूसरे यह कि भाषा विन्यस्त इसलिए है कि जिन संबंधों और सिद्धांतों के तंत्र पर यह स्थापित है, वे अटल हैं। चाहे दुनिया इधर से उधर हो जाए, कोई उसे चुनौती नहीं दे सकता।

संरचनावाद के संबंध में यह बात ध्यान रखनेवाली है कि संरचना किसी भी वस्तु या घटना के विभिन्न घटकों के अलग-अलग बिखरे स्वरूप का नाम नहीं, बल्कि उनके समग्र, सुसंघटित रूप का नाम है। यह नियमों की एक सुसंबद्ध व्यवस्था है, जो अध्येय विषय के विभिन्न घटकों को परस्पर संबद्ध करके देखती है। इसमें उस समग्र संघटना को आधार रूप में लेकर उसके विभिन्न घटकों के क्रम-विन्यास, पारस्परिक संबंधों तथा समग्र संघटना की रचना में उनकी भूमिका के बारे में अध्ययन किया जाता है। भाषा, वाक्य, साहित्य विधा या समग्र साहित्य हो, या परिवार, समाज, मानव-जाति, विशिष्ट संस्थाएँ, विशिष्ट ज्ञान-विज्ञान, फैशन, प्रसार-विधाएँ-सभी की अपनी एक संरचना होती है, संघटन की एक पद्धति होती है जिसके अध्ययन-विश्लेषण के माध्यम से उन्हें और उनकी क्रिया के नियमों को समझा जा सकता है।¹⁴ इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है। बिहारीलाल का एक दोहा है—

सोहत ओढ़े पीत पट स्याम सलौने गात।

मनौ नीलमनि सैल पर आतप पर्यो प्रभात।

इस दोहे में ब्रजभाषा का प्रयोग है जिसके उच्चारण, शब्दावली तथा व्याकरण संबंधी कुछ नियम हैं। इसमें कुछ विशेष अलंकारों तथा बिंबों का प्रयोग किया गया है। इसकी रचना दोहा छंद में हुई है, जिसके मात्रा, विराम तथा लय संबंधी अपने नियम हैं। अन्य भी अनेक विशेषताओं एवं समग्र संघटना का परिणाम यह दोहा है। इसके अध्ययन में ध्वनि, व्याकरण, काव्यशास्त्र आदि घटकों का अलग-अलग अपने में कोई महत्त्व नहीं है, पर एक संरचना में समग्र भाव से संघटित

होकर ये एक चमत्कार की सृष्टि करते हैं। संरचनावाद उसके समग्र घटकों को अध्ययन का आधार बनाता है और समग्रता को केंद्र में रखते हुए उसके विभिन्न घटकों का अलग-अलग अध्ययन ही नहीं करता, बल्कि उनके पारस्परिक संबंधों पर भी विचार करता है और उनकी इस प्रकार पुनर्रचना भी करता चलता है कि उस संघटना के नियम स्पष्ट होते जाएँ। अर्थात् यह अन्वेषण पद्धति अंशों से समग्र की ओर नहीं, बल्कि समग्र से अंशों की ओर चलती है और अपनी प्रक्रिया में समग्रता की अवधारणा को कहीं भी ओझल नहीं होने देती।¹⁵

भाषा चूँकि संरचना पर आधारित है, अतः भाषा-तंत्र संरचनात्मक है। यह संरचनात्मक तंत्र हमेशा समकालिक होता है और चूँकि भाषा के बोलते ही उसके विन्यस्त होने का अनुभव होता है, इसलिए ध्वनि-सिद्धांत यानी फोनीमी-सिद्धांत भाषा के आधारभूत संरचनात्मक सिद्धांत हैं। उनका आधार युग्मित अंतर (चाल/जाल, बहना/कहना/सहना) या द्विचर विरोधों (Binary Opposition) पर है। रोमान यॉकब्सन और मौरिस हौले ने अपनी पुस्तक 'फंडामेण्टल्स ऑफ लैंग्विज, द हेग' 1956 में सिद्ध किया है कि युग्मित विरोध से अंतर स्थापित करना बच्चे के मस्तिष्क का पहला युक्तियुक्त प्रकार्य है। स्पष्ट रहे कि मानव-मस्तिष्क की यही विशेषता संरचना को जन्म देती है और उससे काम लेती है।¹⁶

सस्यूर इससे भी आगे जाकर कहता है कि भाषा केवल शब्दों के माध्यम से क्रियान्वित नहीं होती। भाषा कार्य करती है। 'संकेत-तंत्र' (System of Signs) के आलोक में शब्द जिसका मात्र दृष्टिगत रहनेवाला सिरा है। यह संकेत-तंत्र अमूर्त है तथा भाषिकी का प्रकार्य इस तंत्र के सिद्धांतों और सूत्रों की खोज करना अर्थात् भाषा की संपूर्ण संरचना का पता लगाना है। संकेत को इस दोहरे संबंध की सहायता से समझा जा सकता है, जो उसके 'ध्वन्यात्मक बिंब' और अवधारणा के मध्य है। संकेत इन दोनों का समूह है। सस्यूर संकेत के इस दोहरे संबंध को Signifier और Signified का नाम देता है अर्थात् ध्वन्यात्मक बिंब (या लिखित रूप) 'संकेतक' है और अवधारणा 'संकेतित' है। शब्द 'वृक्ष' के ध्वन्यात्मक बिंब और वृक्ष की अवधारणा में जो संरचनात्मक संबंध है, वह भाषिक संकेत को निर्मित करता है। सस्यूर के अनुसार भाषा संकेतों का तंत्र है, जो अवधारणाओं को व्यक्त करते हैं। यहाँ एक बात ध्यान देने वाली है। भाषा स्वायत्त है, यानी शब्द 'वृक्ष' की ध्वनियों और उसकी अवधारणा तथा उस चीज में जो धरती से उगती है, उसमें टहनियाँ और पत्ते होते हैं, कोई नैसर्गिक संबंध नहीं है। शब्द 'वृक्ष' या ध्वनि में पेड़ की कोई विशेषता नहीं और न ही इस शब्द की यह अवधारणा किसी बाह्य शक्ति के निर्देशानुसार निर्धारित हुई है। 'वृक्ष' को यह अर्थ हिंदीभाषा संरचना ने दिया है। भाषा की स्वायत्तता वस्तुतः भाषा की संरचना को स्थापित करती है और उसकी रक्षा करती है।

सस्यूर आगे यह कहता है कि भाषा में 'संकेतक' और 'संकेतित' का अविभाज्य संबंध है, यानी हाथी के ध्वन्यात्मक बिंब से अभिप्राय हाथी की ही अवधारणा है, गाय, भैंस, बकरी या कोई और पशु नहीं। यह रूढ़ि एवं आचार में सक्रिय है। ये किसी नैसर्गिक मूल्य अथवा विशेषता के आधार पर नहीं, रीति और चलन से स्थापित होते हैं।¹⁷ सस्यूर के यहाँ यथार्थ और उसके बोध यानी वस्तुगत यथार्थ और दिमाग के बीच की खाई बहुत साफ थी। सस्यूर मानते थे कि दुनिया का ज्ञान बहुत जटिल रूपों में आता है, इस भाषा के भीतर से आता है। जटिल होने के कारण इसके वाहक चिह्न स्वतंत्र होते हैं। यह स्वतंत्रता ही शब्द और अर्थ को अलग

देती है। शब्द यथार्थ की खिड़की नहीं बनते। वे यथार्थ के शीशे नहीं बनते, दर्पण नहीं होते, बल्कि शब्द अपने साथ अन्य तमाम व्यंजकों, व्यंग्यों को लिए आते हैं। इस तरह हमारा वस्तुज्ञान हमसे स्वतंत्र एक संहिता से बँधा होता है, परंपरा से बँधा होता है जिसके सहारे से हम तरल अनुभवों को स्थिर करते हैं। इसलिए भाषा के बिना ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश संभव ही नहीं है। हमारा यथार्थ इस तरह अनेक भाषाओं के द्वारा पैदा अपने भीतर के साम्य और वैषम्य से बनता है। विचार और अर्थ की यह परंपरा नए संरचनावाद का प्रथम बिंदु है।¹⁸

मुख्तसर यह कि भाषाविज्ञान का लक्ष्य भाषागत व्यवस्थाओं को समझना है। कविता भी एक तरह की भाषागत संरचना है। संरचना क्या है? वह भाषा में विभिन्न तत्त्वों के संबंधों की व्यवस्था है। संरचना के अंतर्गत साहित्य के भाषागत स्वर से लेकर विषय तक सब कुछ आ जाते हैं। संरचना के रूप में साहित्यिक पाठ (टेक्स्ट) एक चिह्न बन जाता है जिसमें व्यंजक और व्यंग्य एक जटिल संबंध में अनुशासित रहते हैं। संरचनावाद पाठ की संपूर्णता में उसके संगठन की ओर ध्यान देता है। पाठ की संरचना उसके भीतर स्थापित संबंधों की सकल व्यवस्था भी है।

संदर्भ

1. साहित्य अध्ययन की प्रमुख पद्धतियाँ, डॉ० कुसुम बाँठिया, इग्नू, एम०एच०डी०-5, खंड-6, पृ० 91
2. हिंदी आलोचना-डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ० 64-65
3. संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद एवं प्राच्य काव्यशास्त्र-गोपीचंद नारंग, पृ० 33
4. उत्तर-आधुनिकता और उत्तर-संरचनावाद, सुधीश पचौरी, पृ० 33
5. संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद एवं प्राच्य काव्यशास्त्र-गोपीचंद नारंग, पृ० 34
6. वही, पृ० 34
7. उत्तर-आधुनिकता और उत्तर-संरचनावाद, सुधीश पचौरी, पृ० 105
8. उत्तर-संरचनावाद और कविता के 'पाठ' का संकट, डॉ० सत्यनारायण व्यास, ब्लॉगर से
9. उत्तर-आधुनिकता और उत्तर-संरचनावाद, सुधीश पचौरी, पृ० 106
10. संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद एवं प्राच्य काव्यशास्त्र-गोपीचंद नारंग, पृ० 38
11. वही, पृ० 49
12. वही, पृ० 50
13. उत्तर-संरचनावाद और कविता के 'पाठ' का संकट, डॉ० सत्यनारायण व्यास
14. संरचनावादी समीक्षा पद्धति-डॉ० कुसुम बाँठिया, एम०एच०डी०-5, इग्नू, खंड-6, पृ० 91
15. वही, पृ० 91
16. संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद एवं प्राच्य काव्यशास्त्र-गोपीचंद नारंग, पृ० 52
17. वही, पृ० 53, 54
18. उत्तर-आधुनिकता और उत्तर-संरचनावाद, सुधीश पचौरी, पृ० 113

केंद्रीय विद्यालय नगाँव, असम

पो० इटाचाली, पोलिटेकनीक कॉलेज के नजदीक

जिला नगाँव (असम) पिन 782003

मोबाइल : 09401807149

ई-मेल : rakesh16ranjan@yahoo-com

डॉ० रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित
नाटक 'महाराणा प्रताप' में संवेदना एवं शिल्प
काशीनाथ शोधछात्र

नाटक मनोविनोद की वस्तु है। मनोविनोद मानव समुदाय पर निर्भर करता है। यह सत्यभाषित होता है कि प्रकृति के अन्य प्राणियों की अपेक्षा मानव ही अधिक विनोद प्रिय है। प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य के दो भाग किए गए हैं—दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य वह है जिसकी आनंदानुभूति सामाजिक चक्षु से दृष्टिगत करके और स्वतः पाठन करके भी प्राप्त होती है। श्रव्य काव्य का परमानंद वाचनकर या श्रवण करके ही लिया जाता है देखकर नहीं। सभी हृदय सुशिक्षित नहीं होते, अतः पढ़कर काव्यानंद प्राप्त करने का प्रश्न ही संक्षिप्त हो जाता है जबकि नाटकानंद पूर्ण अनुभूति सभी कर सकते हैं।

भरतमुनि द्वारा विरचित 'नाट्यशास्त्र' नामक पुस्तक में नाटक के संबंध में विचार संश्लिष्ट है—

न तज्ञानं न त्च्छित्त्वं न स योगो न सत्कर्म

नाट्येडस्मिन मन दृश्यते सर्वशास्त्राणि शिल्पानि कर्माणि विविधानि च।¹

नाटकानंद सभी जन देखकर और सुनकर ले सकते हैं। साथ ही नाटक में यथासंभव सभी विषयों का समावेश हो सकता है। समस्त शिल्प और विविध कार्यों में कोई ऐसा नहीं है, जो नाटक में न पाया जाए। इन विशेषताओं से संयुक्त होने के कारण ही 'काव्येषु नाटकं रम्यं' लोकोक्ति प्रसिद्ध है।

नाटक को शास्त्रीय परिभाषा में रूपक कहते हैं। रूपकारोप होने के कारण ही इसे रूपक की संज्ञा दी गई है। 'तद्रूपारोपावुं रूपकं दृश्यकाव्य में अभिनय की प्रधानता रहती है' अभिनय को ही नाटक कहते हैं।

धनंजय द्वारा लिखित 'दशरूपक' नामक पुस्तक में नाट्य के संबंध में सद्विचार प्रस्तुत है: अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्² अर्थात् अवस्था के अनुकरण को नाटक कहा जाता है।

प्रस्तुत नाटक का कथानक प्रसिद्ध ऐतिहासिक कथानक है। अकबर की सेना से युद्ध करते-करते जब महाराणा प्रताप बहुत शिथिल हो जाते हैं, तो एक दिन अपनी रानी से कुछ विचार विमर्श करते हैं। तभी भामाशाह का प्रवेश होता है। भामाशाह ने अपार धनराशि महाराणा के सामने रख दी, जिससे पच्चीस सहस्र सैनिक वारह वर्ष तक अपना निर्वाह कर सकते थे। इस धनराशि को पाकर महाराणा प्रताप ने पुनः मेवाड़ की मुक्ति के लिए संघर्ष छोड़ दिया। यह संघर्ष हल्दी घाटी के युद्ध के नाम से जाना जाता है।

मंथूर पंखी व्यक्तित्व वाले डॉ० रामकुमार वर्मा हिंदी साहित्य के इंद्रधनुषी श्रृंगार हैं। उनका काव्य व्यक्तित्व रंग-विरंगा है। वयोवृद्ध ज्ञानवृद्ध डॉ० वर्मा में तरुणों जैसा उत्साह छलकता है। वे जब कविता पाठ करते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है कि कई तरुण अपने सुरीले मधुर स्वर की लहरी प्रवाहित कर रहा है।

डॉ० रामकुमार वर्मा जी एक साथ कवि, नाटककार एकांकीकार, समालोचक और सम्पादक का महनीय व्यक्तित्व सँजोए हैं। वर्माजी के काव्य में उषा की मनोविमुग्धकारी मोहक लालिमा है, तो नाटकों में शारदीय ज्योत्स्ना की आनंद प्रदायिनी शीतल अमृत वर्षा है। वर्मा जी का समालोचक नीर क्षीर विवेकी हंस है, तो संपादक सूक्ष्म दृष्टा कपोत।

भारतवर्ष की कीर्ति को संसार के कोने-कोने में पहुँचाने के लिए डॉ० रामकुमार वर्मा जी ने ऐतिहासिक नाटकों की रचना सफलता पूर्वक की है। इसी के साथ वे समकालीन व्यक्तियों और आनेवाली पीढ़ियों को आस्थावान बनाकर जीवन में सकार्य करने की प्रेरणा देते हैं। वर्मा जी के ऐतिहासिक नाटकों में राष्ट्रीय भावना आद्योपांत विद्यमान है। 'महाराणा प्रताप' नामक-नाटक के नायक प्रतापसिंह सर्वत्र राष्ट्रीय भावों से ओतप्रोत दिखाई देते हैं।

तीन अंकीय राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक नाटक में मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए अपना सर्वस्व उत्सर्ग करने वाले प्रणवीर राणाप्रताप के महत् चरित्र का उद्घाटन हुआ है।

'महाराणा प्रताप' नाटक के प्रधान पात्र प्रतापसिंह में वीरता, त्याग आत्मनिष्ठा एवं देशभक्ति के संस्कार हैं। अर्थात् महाराणा में मानवीय संवेदनशीलता अनेक स्थानों पर अभिव्यक्ति हुई है—

'राणा चाहे तो स्वतंत्रता के युद्ध में सब कुछ होम करदे, किंतु वह राजा पिता भी है। उसे क्या अधिकार है कि अपनी स्वाधीनता की हठ में वह अपनी पुत्री को सामान्य भोजन भी न दे सके? पुत्री को जो रूखी-सूखी रोटी मिले उसे भी जंगली विलार छीन ले और वह देखता रहे?...उस समय खंड-खंड होते हुए पिता के हृदय से क्या-क्या शब्द नहीं निकले किंतु यह समझ लेना कि उनका कहने वाला पिता प्रतापी था राणा प्रताप नहीं...मेरे मुख से यही निकला था, यही निकला था कि निरपराध बच्चों की यंत्रणा देखने से तो अच्छा है कि मैं अकबर से सन्धि कर लूँ।'³

प्रस्तुत नाटक में एक अन्य स्थल पर भी वे अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए प्राणों की बलि देने को तैयार हैं। दर्शनार्थ प्रस्तुत है—'मेवाड़ भूमि के वीरो! आज अपनी मेवाड़ मातृभूमि को प्रणाम कर मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि जो विश्वास मेरे सामंतों ने मुझ पर किया है, उसकी जीवन-भर रक्षा करूँगा और अपने रोम-रोम से अपनी मातृभूमि की सेवा करता हुआ उसकी स्वतंत्रता के लिए अपने प्राण उत्सर्ग कर दूँगा।'⁴

महाराणा प्रताप अपने देश के प्रति सर्वस्व न्यौछावर करने में समर्पित है तथा देश की स्वतंत्रता के लिए समस्त सुख-साधनों का परित्याग कर देते हैं। चित्तौड़ के उद्धार के लिए सोने-चाँदी के पात्रों के स्थान पर वृक्षों के पत्तों का प्रयोग करते हैं। मिष्ठान्न के स्थान पर कंदमूल खाते हैं। सोने के लिए 'शयन' रेशम व मखमल की शैया त्यागकर कठोर भूमि पर सामान्य वस्त्र बिछाकर ही शयन करते हैं।

वे परतंत्र रहकर सुख और विलासिता के जीवन से किसी प्रकार का ताल-मेल नहीं

रखने के पक्षधर हैं। इस संदर्भ में उनके मार्मिक विचार प्रस्तुत हैं—‘इस अरावली पर्वत की कंदराओं में रहकर शत्रुओं से युद्ध करना और मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए सुख के दिनों को फूलों की भाँति बलि वेदी पर समर्पित करना और राजसी जीवन इतना सुखकर नहीं हैं, भील सरदार! जितना सुखकर तुम्हारे वनवासियों के साथ रहकर कंदमूल खाना है। स्वतंत्रता का एक क्षण परतंत्रता की शताब्दियों से भी महान है।’⁵

महाराणा प्रताप में अदम्य साहस है वह स्वाभिमानी पुरुष है, इसकी पुष्टि डॉ० वर्मा जी ने प्रताप की महारानी वीरमदे के मुख से कराई है—‘विपत्ति चाहे जितनी बड़ी हो जाए रानाजी! वह आपके साहस से बड़ी नहीं हो सकती। यज्ञ की अग्नि चाहे जितनी प्रबल हो जाए वह अपनी प्रबलता में यज्ञ कुंड को भी जला दे, किंतु वह यज्ञ के देवताओं को नहीं जला सकती।’⁶

महाराणा प्रताप ने आत्मसम्मान और कष्ट सहन करने की कसौटी पर स्वयं को कसकर राष्ट्रीयता की ध्वजा फहरायी और मेवाड़ की रक्षा पूरे मनोयोग से की। युद्ध के भय से अकबर बादशाह के सादकुमार जगमल का लिखाया गया संधिपत्र फाड़ते हुए भील सरदार का कथन अवलोकनार्थ प्रस्तुत है—‘मेवाड़ हमारी मातृभूमि है। मैं आज इसबात की प्रतिज्ञा करता हूँ कि हम सब भील मिलकर अकबर बादशाह के किसी भी प्रकार के आक्रमण का सामना करेंगे। प्राण रहते मेवाड़ का छत्र किसी प्रकार नहीं झुकने देंगे। अकबर बादशाह अगर प्रार्थना भी करे तो हमारा मेवाड़ उसके साथ सन्धि नहीं करेगा।’⁷

इस प्रकार उक्त नाटक ‘महाराणा प्रताप’ में राष्ट्रीय भावना आद्योपांत विद्यमान है। प्रस्तुत नाटक में महाराणा प्रताप सर्वत्र राष्ट्रीय भावों से ओत-प्रोत हैं। उनका साहस, पराक्रम त्याग, देश के प्रति भक्ति-भावना, निष्ठा, आत्म-बलिदान का भाव इत्यादि मानवीय संवेदनाएँ वर्तमान युग संदर्भ में युवाओं के लिए प्रेरणास्रोत है। महाराणा प्रताप का व्यक्तित्व युवाओं के उज्ज्वल भविष्य का द्योतक और हमारी संभ्यता एवं संस्कृति का पोषक है।

‘महाराणा प्रताप’ नाटक का शिल्पगत वैशिष्ट्य

भावों को भाषा के माध्यम से व्यक्त करना ही भाषा कहलाती है। भाषा सरल, सहज सारगर्भित हो सकती है। तत्सम प्रधान हो सकती है, तद्भव प्रधान भी। अन्य भाषा के शब्द भी उसमें आ सकते हैं। भाषा को सजीव बनाने के लिए मुहावरों का प्रयोग अत्यंत सार्थक सिद्ध होता है। देशज व ग्रामीण शब्दों का प्रयोग भी किया जा सकता है। भाषा मधुर संवाहिनी शक्ति है। अपने भावों को भाषा के माध्यम से दूसरों तक पहुँचाया जाता है।

भाषा की सुसमृद्धि के संबंध आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी सुविचार प्रस्तुत हैं—‘भाषा की समृद्धि उत्तम साहित्य से होती है। भाषा की समृद्धि से बोलने वालों का जीवन-स्तर ऊँचा उठता है। उनमें कार्य कारण परंपरा को सही-सही समझने की शक्ति विकसित होती है और उनके चरित्र में नैतिक निष्ठा का विकास होता है। राष्ट्र में सामूहिक संस्कृति को ऊँचा उठाने का यह सर्वोत्तम उपाय है।’⁸

नाटक की भाषा और शैली उसकी जनप्रियता पर सर्वाधिक प्रभाव डालती है। डॉ० वर्मा के नाटक हिंदीप्रेमी जनता को सर्वाधिक प्रिय हैं। इसका एक मुख्य कारण यह भी है कि नाटककार ने अपने नाटकों की भाषा को संस्कृत की समास-शैली से जोड़कर न तो साधारण पाठकों के लिए आम्य बनाया है और न ही गंभीरता को क्षति पहुँचाने वाली व्यावसायिक शैली

को ही आने दिया है। तात्पर्य यह है कि प्रस्तुत 'नाटक की भाषा सरस' बोधगम्य और प्रवाहपूर्ण है।

प्रस्तुत नाटक में सभी पात्र अपने स्वभाव के अनुसार भाषा का प्रयोग करते हैं। जो पात्र भारतीय आदर्शों के प्रति आस्था एवं विश्वास रखते हैं, वे शुद्ध हिंदी भाषा का प्रयोग करते हैं तथा जो पात्र मुसलमानी संस्कारों से पोषित हैं, वे उर्दू भाषा का प्रयोग करते हैं।

मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह, राजा मानसिंह, भामाशाह, महाराणा के पुत्र उनके सामंत आदि शुद्ध हिंदी का प्रयोग करते हैं। इस संदर्भ में कुछ अंश प्रस्तुत है—

प्रताप: शक्तिसिंह, भील सरदार और भामाशाह तुम लोग मेवाड़ के रत्न हो। भामाशाह द्वारा सुरक्षित संपत्ति तो निर्जीव संपत्ति है, तुम लोग मेवाड़ के सजीव वैभव और शक्ति सिंह नक्षत्र हो, जिनका यश कभी धूमिल न होगा। इस सम्पत्ति से मेवाड़ की ध्वजा फिर एक बार आकाश में नहरायेगी। अकबर बादशाह का आक्रमण उतना दुखदायी नहीं है— बादशाह तो आक्रमण ही किया करते हैं—दुखदायी तो वे विश्वासघाती हमारे भाई हैं, जो अपना कर्तव्य भूलकर अपनी ही मातृभूमि की परतंत्रता के बीज बोते हैं, किंतु कुछ चिंता की बात नहीं है।⁹

प्रस्तुत नाटक में वहीं दूसरी ओर जो पात्र मुसलमानी संस्कारों से पोषित हैं, वह उर्दू भाषा का प्रयोग करते हैं। उर्दू भाषा का प्रयोग करने वाले पात्रों में सुलेमान नक्वी, राजा मानसिंह के मुहासिव जुलफिकार अली खाँ आदि पात्र उर्दू भाषा का प्रयोग करते हैं। अवलोकनार्थ प्रस्तुत है—

'क्यों नहीं, क्यों नहीं, हुजूर! सल्तनते मेवाड़ का मुस्तकबिल उन्हीं की आला तबीयत पर मुनहसिर है। आखिर उन्होंने सल्तनते मेवाड़ का जो इख्तियार सम्हाला है, कसम कुराने पाक की, ऐसा इख्तियार फरिश्ते भी नहीं सम्हाल सकते। क्या शान है! क्या बाँकी अदा है! वाह! बादशाह सलामत तक उनकी हकीकत पसंदी की दाद देते हैं। खुदा उन्हें आबाद रखे।'¹⁰

'महाराणा प्रताप' नाटक में राजस्थानी भाषा में गीत प्रस्तुत किया गया है और वह रानी वीरम ने स्वयं गाया है। यह नाटक के वातावरण निर्माण में तो सहायक हुआ ही है साथ ही नाटककार वर्मा जी के कवि व्यक्तित्व का भी बोध कराता है। अवलोकनार्थ प्रस्तुत है—

छह गज काली कांगरा छाजा
पडियाँ ढगल हुए पारवाण।
भारवे कमध सुणो भूपतियाँ
कीरत महल अमर कमठाण।
अेहा क्यण दाखवैँ ईसर
माँझी वंस तणा कुल मौठ।
झड़सी महलाँ तणा झरोखा
रहसी गीत कहै राठौड़।
झड़सी महलाँ तणा झरोखा
रहसी गीत कहै राठौड़।¹¹

संवादों की सर्वाधिक सफलता पात्रों की मनोवेगों के अनुरूप होने में है। प्रस्तुत नाटक

में महाराणा प्रतापसिंह युद्ध के अवसादमय परिणामों से दुखित होकर महारानी वीरमदे को संबोधित करते हुए कहते हैं—

‘तुम्हारी आत्मा का संगीत इस भयानक विपत्ति में भी कम क्यों नहीं होता! तीन दिनों से तुमने भोजन भी नहीं किया, किंतु तुम्हारे कंठ का माधुर्य नहीं सूखा! तुम कैसी दीपशिखा हो, जो तेल चुक जाने पर भी नहीं बुझना चाहती। वीरम! मैं नहीं, तुम अकबर से युद्ध कर रही हो। क्या हल्दी घाटी के युद्ध में मेरे रक्त के साथ चित्तोड़ का भविष्य भी वह गया।’¹²

प्रस्तुत नाटक में वर्मा जी ने काव्यात्मक एवं अलंकृत भाषा की भी संयोजना की है। जिससे वर्मा जी का नाटककार के साथ-साथ कवि व्यक्तित्व भी प्रकट होता है। यथा—

‘संध्या की लाली में उषा की किरण लाने की चेष्टा मत करो! परिस्थितियों को समझकर ही कार्य की रूपरेखा बनानी चाहिए। मकड़ी के जाले से हाथी को नहीं बाँधा जा सकता। बादल के बंधनों से बिजली की तड़प नहीं रोकी जा सकती। शक्ति को समझो। बिजली गिरेगी तो पहाड़ तक पृथ्वी में धँस जाएगा। शक्ति का सामना तो कौशल से करना होगा, नहीं तो शक्ति तुम्हें तोड़ती हुई निकल जाएगी। अपने झूठे अभिमान में यदि राजपूत तलवार से कट जाए तो तलवार का क्या दोष? अग्नि की ज्वाला में अगर राजपूत नारियाँ डर से भयभीत होकर जल जाएँ तो इसमें अग्नि का क्या दोष?’¹³

‘महाराणा प्रताप’ नामक नाटक में ओजमयी भाषा की संयोजना हुई है। डॉ० वर्मा ने राणा प्रताप के मुँह से उत्साहपूर्वक ओजमयी भाषा में कहलवाया गया विचार प्रस्तुत है—

रामसिंह! तुम जाओ और राठौर पृथ्वीराज से कहो कि प्रताप जाग रहा है। अकबर अपनी राजनीति के अंधकार में भले ही सब राजपूतों को सुला ले, किंतु राणाप्रताप अपने जीवन के अंतिम क्षण तक जागता रहेगा। इसके लिए उसे चाहे अपने परिवार के एक-एक बच्चे की बलि देनी पड़े देवला के हाथ से घास की रोटी भले ही छिन जाए....किंतु राजपूत की स्वाधीनता उसके रक्त की प्रत्येक बूँद में लिखी होगी। जाओ।’¹⁴

डॉ० वर्मा द्वारा प्रणीत ऐतिहासिक नाटक महाराणा प्रताप के अधिकतर संवाद संक्षिप्त वाग्वैदग्ध्यपूर्ण एवं स्वाभाविक है। कहीं-कहीं संवाद विस्तार भी पाए गए हैं, परंतु ऐसे स्थलों पर वे पात्रों के अंतर्द्वंद्व एवं मनोविज्ञान को उभारने से पूर्ण रूप से सहायक हुए हैं। अर्थात् प्रस्तुत नाटक के अधिकतर संवाद पात्रानुकूल एवं भवानुकूल हैं। भाषा सरल, सहज एवं परिमार्जित तथा प्रांजल है। अनेक स्थलों पर संवादों में काव्यात्मकता का गुण भी विद्यमान है।

भारत के नैतिक आदर्शों की रक्षा तथा मातृभूमि के लिए सर्वस्व उत्सर्ग करने वाले नाटक के नायक महाराणा प्रताप वर्तमान युग-संदर्भ में प्रेरणा का स्रोत हैं।

संदर्भ

1. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि
2. दशरूपक, धनंजय, 1/6 सत्य भामा पाण्डु रंगा बम्बई, पाचवाँ संस्करण 1941
3. महाराणा प्रताप, डॉ० रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली भाग-एक सं० डॉ० कमलकिशोर गोयनका एवं डॉ० चंद्रिकाप्रसाद शर्मा, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1990, तृतीय अंक, पृ० 481
4. वही, पृ० 458
5. वही, पृ० 460

6. वही, पृ० 479
7. वही, पृ० 457
8. हिंदी विश्व की भाषा, संस्कृति और समाज, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० 84
9. महाराणा प्रताप, डॉ० रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली, पृ० 488-489
10. वही, पृ० 467
11. वही, पृ० 477-478
12. वही, पृ० 478
13. वही, पृ० 473
14. वही, पृ० 485

पुत्र स्व० श्रीकृष्ण
मो० गढ़ी पश्चिमी, कस्बा काँठ
तहसील सदर जिला शाहजहाँपुर (उ०प्र०)
मो० 9794228276

सुधा अरोड़ा के आलेखों में चित्रित दलित औरत

नंदा गुलाबराव बच्छाव (शोधछात्र)

डॉ० के०एन० मोदी युनिवर्सिटी, निवाई, जयपुर (राजस्थान)

प्राचीनकाल से लेकर आधुनिककाल तक जाति की समस्या का अस्तित्व है। फर्क सिर्फ इतना है कि यह समस्या प्राचीनकाल की तरह गंभीर नहीं है। इस समस्या के कारण समाज में आज भी ऊँच-नीच का भेद किया जाता है—‘जाति-पाति, धर्म-संप्रदाय और ऊँच-नीच की दीवारें न्यून होने की अपेक्षा बढ़ती जा रही हैं। इन विषम परिस्थितियों में हमारा विवेक कुंठाओं का शिकार होता जा रहा है।’¹ दलित समाज भारत के उन करोड़ों लोगों का जीवनभाष्य है, जिनकी मेहनत श्रम और सहयोग से यह राष्ट्र स्वयंपूर्ण तथा स्वाभिमान संपन्न हुआ है। सामाजिक विषमता के कारण समतावादी, मानवतावादी दलित साहित्य की निर्मिति हुई है।

इक्कीसवीं सदी के भारत में आज भी बहुत से काले धब्बे हैं। इसमें सबसे बड़ा धब्बा है—दलित नारी शोषण। आज भी गाँवों में दलित औरतों के साथ बलात्कार और शोषण जैसी घटनाएँ हो रही हैं, उन्हें निर्वस्त्र करके बेरहमी से पीटा जाता है या फिर गाँव-भर में घुमाया जाता है। पिछले कुछ सालों से तो अखबारों के लिए ये आम खबरें हो गई हैं, लेकिन पहले की तरह ये घटनाएँ अब हमें विचलित नहीं करती हैं। हम अपने-आपको समझा लेते हैं कि यह हमारा कार्यक्षेत्र नहीं है और हम संवेदनहीन हो जाते हैं।

‘दलित औरत को निर्वस्त्र करने का अर्थ’ आलेख में सुधा अरोड़ा ने दलित औरतों की विवशता को प्रकट किया है। आलेख में नारी-उत्पीड़न का चित्र प्रदर्शित किया है। यह सामाजिक चिंताओं पर सार्थक विमर्श करता है। नारी का त्रासद परिवेश, जातीय समीकरण पर आधारित वर्तमान अवसरवादी राजनीति, भारतीय महिलाओं की परजीविता आदि का चित्रण किया गया है।

भारतीय स्वाधीनता के बाद भी समाज व्यवस्था और नागरिक जीवन की विसंगतियाँ कम नहीं हुईं। ‘यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता’² का सूक्ति वचन प्रचारित करनेवाले समाज में अपना ही चेहरा ढूँढती स्त्रियों की दारुण परिस्थितियों को दुराचारों और संकटों को लेखिका ने गंभीरता से देखा। वर्ण-व्यवस्था और जाति-प्रथा के विरुद्ध इन दिनों कई चेतनासंपन्न लोग पर्याप्त चेतनशीलता से काम कर रहे हैं। जाति-भेद पर प्रश्न उठाए जा रहे हैं।

27 जुलाई 1997 को गांधीजी की कर्मभूमि वर्धा जिले के कारंजा गाँव में एक दलित महिला को निर्वस्त्र कर पूरे गाँव में घुमाया गया। इसी वर्ष 17 जनवरी को मुरादाबाद जिले के डोहरी गाँव में पिछड़ी जाति की महिला किसनवती को निर्वस्त्र कर पूरे गाँव में अर्द्धमूर्छित अवस्था में घुमाया गया। घटनाएँ वही रहती हैं, बस औरतों के नाम व स्थान बदल जाते हैं। यह वही घटनाएँ हैं, जो समाचार-पत्रों के जरिये हम तक पहुँचती हैं।

यह दलित-समाज की यातना का आलेख नहीं है, उसके जागरण का भी आलेख है। इसमें दलितों का जीवन-संघर्ष प्रकट होता है। दलित स्त्री की दशा का इतना मार्मिक वर्णन किया गया है कि पढ़नेवाले के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ताकतवर लोग असहाय, मजलूम का शोषण करते हैं। भारतीय संस्कृति और सभ्यता को अनदेखा कर दलित औरतों के बलात्कार किए जाते हैं, उन्हें निर्वस्त्र कर बेरहमी से पीटा जाता है और गाँवभर में घुमाया जाता है। अब लोगों के लिए ये खबरें इतनी आम हो गई हैं कि अखबारों के मुखपृष्ठ से हटकर पिछले पन्नों पर चार-छह लाइनों में सिमटकर रह गई हैं।

भारत को आजाद हुए 66 साल हो गए फिर भी इस आजादी में बहुत-से काले धब्बे हैं। दलितों की समस्याओं की ओर किसी का ध्यान नहीं है। इस आलेख में दलित स्त्रियों के जीवन के विविध संघर्षों, उत्पीड़न के तरीकों तथा गरीबी, तिरस्कार और यौनहिंसा से भरे त्रासद जीवन को व्याख्यायित किया गया है। जिस प्रकार की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक सुरक्षा गैर-दलित महिलाओं को प्राप्त है, दलित महिलाएँ उससे वंचित हैं।

आज भी दलितों को शूद्र, दीन, हीन माना जाता है। 'सामंती गढ़ों में सेंध' आलेख में सुधा अरोड़ा ने जातिप्रथा पर प्रहार करते हुए, दलित समाज की यातना, दुःख, पीड़ा को दर्शाया है।

मुरादाबाद के डोहरी गाँव की किसनवती का बेटा ऊँची जाति के जाटों के यहाँ मजदूरी करता था। उनका आरोप था कि उनकी बेटी को उसके लड़के ने छेड़ा है। किसनवती का बेटा हाथ नहीं आया, तो उसकी माँ को निर्वस्त्र कर उससे बदला लिया गया। बेटे को ऐसा सबक सिखाया गया कि उस गाँव के दलित फिर कभी सिर न उठा सकें।

इस घटना से आहत किसनवती अर्द्धविक्षिप्त अवस्था में पाई गई। डोहरी गाँव के चंद्रपालसिंह, दिलावर, गिरिराज और महिपालसिंह को हिरासत में लिया गया था, परंतु कुछ समय बाद वे जमानत पर छूट गए। ऐसे लोगों के खिलाफ सबूत न मिलने के कारण बाइज्जत रिहा किया जाता है और उनका जमकर स्वागत किया जाता है। ऐसे फैसले के बाद दलित महिला में इतना साहस नहीं होता कि वह अपनी तकलीफ को बयान कर सके। खून का घूँट पी जाने के सिवाय उसके पास कोई चारा नहीं होता। लेखिका कहना चाहती है कि आई०ए०एस० ऑफीसर रुपन बजाज जैसी महिला की इज्जत के मुकदमे का फैसला देर-सबेर हो जाता है, क्योंकि उनकी इज्जत, मान-मर्यादा, प्रतिष्ठा एक दलित औरत को निर्वस्त्र किए जाने से या भँवरीदेवी पर किए गए बलात्कार या किसनवती को निर्वस्त्र किए जाने से ज्यादा अहम है।

यह आलेख दलित-समाज की केवल यातना का आलेख ही नहीं है, उनकी मुक्ति के संघर्ष की प्रेरणा और प्रारंभ का आलेख है। यह पितृसत्तामक षड्यंत्रों के साथ-साथ जातिप्रथा, समाज, व्यवस्था के रहस्यों को भी बेनकाब करता है। आज भी समाज में दलितों को हेय दृष्टि से देखा जाता है। अगर स्त्री दलित हो तो उसकी स्थिति और भी दयनीय हो जाती है। पिछड़े इलाकों, गाँवों में स्त्री से बदला लेना हो तो उसे निर्वस्त्र कर घुमाया जाता है। उसकी असहायता और दयनीयता का मजाक उड़ाया जाता है।

हमारे महान देश की संस्कृति महान है। यहाँ कन्या को 'कंजक' यानी दुर्गा माँ का रूप मान अष्टमी को उसकी पूजा की जाती है। घर के पुरुष उसके पाँव धोते हैं, आवभगत करते हैं।

वहीं दूसरी ओर वह पुरुष नारी को पूरे गाँव में नंगा घुमाता है, वह भी बेटे को सबक सिखाने के लिए त्यौहारों/देवी देवताओं की लीक पीटना एक तरफ पुरुषीय मानसिकता है, तो दूसरी ओर इस देश का जीवन यथार्थ है। भारत के ऐसे सामंती गढ़ों में सेंध लगाना किसी फैडरेशन या सामाजिक कार्यकर्ताओं के बस की बात नहीं है। जब तक कानून इन ताकतवर अपराधियों के साथ सख्ती से पेश नहीं आता, तब तक यह मर्ज लाइलाज ही रहेगा।

सुधा अरोड़ा के इस आलेख में दलित स्त्री की विशिष्ट वेदना का रूपायन किया गया है। यह आलेख दलित स्त्री-विमर्श पर केवल सैद्धांतिक आयाम नहीं है, बल्कि उसके व्यावहारिक पक्षों की विवेचना भी है। स्त्री-विमर्श के विविध पहलुओं और आयामों को अलग-अलग दृष्टिकोण से देखा गया है। दलित स्त्री पर अत्याचार किया गया, तो लोगों का खून नहीं खौलता, उन्हें गुस्सा नहीं आता। मानो अन्याय, अत्याचार सहना उसकी नियति है। ऐसे प्रसंगों में अकसर खामोशी स्वीकार कर ली जाती है, लेकिन खामोश रहना इसका इलाज नहीं है। इस अन्याय के लिए मीडिया और सर्वसमाज को आवाज उठाना आवश्यक है।

संदर्भ

1. राष्ट्रवाणी (द्वैमासिक) जनवरी-फरवरी 2013, पृ० 19
2. आम औरत : जिंदा सवाल, सुधा अरोड़ा, पृ० 119
3. वही, पृ० 69

हिंदी सिनेमा गीतों के विविध स्वर

निर्मला राजपूत

गीत संगीत जीवन में मधुरता भरता है। कहते हैं गीत वो होते जो मन से उमड़कर होठों से खुद-ब-खुद छलक उठें। जीवन के हर रूप को दर्शाते ये गीत कभी हँसने पर विवश करते हैं तो कभी आँखों को नम। गीतों से गीतकार की संवेदनाएँ मुखरित होती हैं। जैसे कवि अपनी कविता में हर सेय को उतार लेता है वैसे ही ये गीतलेखक अपने गीतों को कल्पना या सत्यता के साथ प्रस्तुत करते हैं। जीवन की भागदौड़ और प्रतिस्पर्धा के बीच ये गीतलेखक एक क्षण रुककर मुड़कर पीछे देखने, मुस्कुराने की प्रेरणा देते हैं। हमारे गीतलेखकों ने कवि की तरह ही अपने गीतों को विविध स्वरों से सजाया है।

ग्रामीण परिवेश—गीतकारों के गीत में ग्रामीण परिवेश रूबरू मुखरित हो उठता है। खेत में हल चलाता एक आम किसान थकान के बावजूद भी गा उठता है—

मेरे देश की धरती सोना उगले

उगले हीरे मोती मेरे देश की धरती

अर्थात् ये धरती माँ ही उसे सब कुछ देती है। बैलों के गले के घुँघरू किसान के गमों और थकान को कोसों दूर कर देते हैं। इसलिए गीतलेखक गीतों के बोलों में पिरोकर हमें हमारी मिट्टी से जोड़ता है और अपनी धरती के महत्त्व को दर्शाता है। लेखक ग्रामीण अंचल के सुनहरे रूप को नाजुक नायिका के द्वारा प्रस्तुत करते हुए लिखता है—

गोरी तेरा गाँव बड़ा प्यारा

मैं तो गया मारा, आके यहाँ रे, आके यहाँ रे।

गाँव के सौंदर्य को दर्शाता ये गीत होठों पर थिरकते ही शहर में बसे व्यक्ति को चंद क्षणों के लिए अपने गाँव, अपनी मिट्टी से जोड़ देता है।

प्यार और प्रीत—गीतकार के गीत कभी गुदगुदाते हैं, कभी मस्ती और मौज में थिरकाते हैं, तो कभी भक्ति और अध्यात्म में गोता लगाने को विवश करते हैं, गीतकार के गीतों में प्यार का स्वर विभिन्न रूपों में सामने आता है। कभी ये प्यार में डूबे युगल को दिखाता है, तो कभी किसी कारण से आई दूरियों के विरह को। कभी ये प्यार का स्वर खुद को यादगार बनाने कहता है, तो कभी वात्सल्य या भक्ति में डूब जाता है, प्यार के ऐसे ही मीठे स्वर को 'क्रांति' फिल्म का यह गीत अपने में उतारे दिखाई देता है—

जिंदगी की न टूटे लड़ी, प्यार करले घड़ी दो घड़ी

लाख गहरा हो सागर तो क्या, प्यार से कुछ भी गहरा नहीं

दिल की मतवाली हर मौज पर, आसमानों का पहरा नहीं।

गीतलेखक प्यार को कभी सागर से भी गहरा बताता है, तो कभी उसे आसमाँ से भी ऊँचा दिखाता है। 'बीस साल बाद' के एक गीत में तो नायक प्यार के नाम पर खुद को अमर करने की बात करता है—

हम तुम्हें इतना प्यार करेंगे, के लोग हमें याद करेंगे

प्यार व्यक्ति को मरकर भी अमर कर जाता है। इसलिए हम आज भी लैला-मजनू, सीरी-फरहाद, रोमियो-ज्यूलियट को भूल नहीं पाए पर जब प्यार में एक साथी दूसरे से जुदा हो जाता है, तो उन्हें जीवन से मौत आसान लगती है। फिल्म 'खिलौना' का नायक ऐसे ही विरह की अग्नि में जलते हुए गा उठता है—

हम तुमसे जुदा होके, मर जाएँगे रो-रो के...

नायक अपने गीत में दुनिया तो कभी किस्मत को जिम्मेदार ठहराते हुए गाता है—

दुनिया बड़ी जालिम है, दिल तोड़ के हँसती है

एक मौज किनारे से मिलने को तरसती है

किस्मत ने दिए धोखे

प्यार करने वाले दिलों को जुदा करना दुनिया का दस्तूर है। ऐसे कई गीत हैं जो इस व्यथा को दर्शाते हैं। इसलिए प्रेमी प्यार के लिए विद्रोह कर उठते हैं, फिल्म 'दिल' के गीत कुछ बोल देखिए—

हम प्यार करने वाले, दुनिया से ना डरनेवाले

इसी क्रम में 'हीरो' फिल्म के नायक-नायिका द्वारा गाए गए गीत के ये बोल भी देखिए—

प्यार करने वाले कभी डरते नहीं

जो डरते हैं वो प्यार करते नहीं

ये प्रेमी प्यार में अपनी जान तक कुर्बान कर देते हैं। जिनकी संवेदनाओं को गीतकारों ने अपने बोलों में पिरोकर प्रस्तुत किया है। इन गीतों के आलावा गीतलेखकों के गीत में प्रेम का एक और रूप वात्सल्य में दिखाई देता है, जैसे—

चंदा है तू, मेरा सूरज है तू

ओ मेरी आँखों का तारा है तू

इनके गीतों में माँ की ममता उमड़ती दिखती है, तो 'अंधा कानून' के एक गीत में पिता का दुलार—

दो हम एक हमारी प्यारी-प्यारी मुनिया है

बस यही तो अपनी सारी दुनिया है

वात्सल्य रस में डूबे ये गीत प्यार के एक अलग ही रूप को दर्शाते हैं। गीतों में ईश्वर भक्ति में डूबे प्यार का एक अलग रूप भी दिखाई देता है, जो ईश्वर के प्रति आस्था को दर्शाता है। मीराबाई के गीत या पदों में प्यार का यही रूप दिखाई देता है—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई

जा के सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।

ईश्वर के अनुराग में भक्त दुनिया को भी भूल जाता है और गा उठता है। अनूप जलोटा

मेरे मन में राम तन में राम, रोम रोम में राम रे
ईश्वर के प्रेम की भक्ति को गीतकार बड़े ही मधुर रूप में दर्शाता है, जो नास्तिक को भी आस्तिक बना देता है।

बचपन और जवानी—गीतकार अपने गीतों में जवानी और बचपन के रूप दर्शा युवा मन को कोतूहल से भर देता है—

यहाँ-वहाँ सारे जहाँ पे तेरा राज है

जवानी और दिवानी तू ज़िंदाबाद...

पीछे है बचपन सुहाना, आगे बुढ़ापा सयाना। (**जवानी दिवानी**)

इस गीत में गीतकार ने जवानी के सिर पर प्यार के ताज को रखा है। एक अन्य गीत में गीतकार बचपन, जवानी और बुढ़ापे को व्यर्थ न नष्ट कर कुछ अच्छे उद्देश्यों में लगाने को कहता है—

बचपन खेल में खोया, जवानी नींद भर सोया,

बुढ़ापा देखकर रोया, वही किस्सा पुराना है। (**तीसरी कसम**)

जीवन में वक्त बलवान होता है जवानी जीवन का वह समय होता है, जो प्यार, कैरियर और जीवन की ऊँचाईयों के लिए आवश्यक होता है। गीतकार बचपन को जीवन की नींव मानकर गाता है—

नन्हा मुन्ना राही हूँ, देश का सिपाही हूँ.. (**नया दौर**)

हाँ, ऐसा सिपाही आनेवाले समय में हमारे संस्कार और देश को बचाता है। अतः गीतकार देश की रक्षा के लिए और हमारे मूल्यों के संग्रह के लिए बचपन से ही शुरूआत करने की सीख देता है।

दार्शनिकता—गीतकार एक दार्शनिक के तरह जीवन के हर पल का विश्लेषण करने की सीख देता है। इंसान जीवन की भागदौड़ और ऊँचाईयाँ छूने के जुनून में इंसानियत को भूलता जा रहा है, पर गीतलेखक एक अच्छे दार्शनिक की तरह जीवन की क्षणभंगुरता को दर्शाकर इंसानियत को ज़िंदा रखने का सार देता है। जैसे कबीर कहते हैं—

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय

औरन को शीतल करे, आपहू शीतल होय। (**कबीर के पद**)

ठीक ऐसे ही गीतकार गाता है—

बोल दो मीठे बोल सोणिए बोली है अनमोल सोणिये (**सोनी महिवाल**)

या फिर—

एक दिन बिक जाएगा माटी के मोल

जग में रह जाएंगे प्यारे तेरे बोल

दूजे के ओठों को देकर अपने गीत

कोई निशानी छोड़ फिर दुनिया से डोल

अर्थात् इंसान का जीवन अस्थायी है। ऐसे में मरने के बाद लोग उसकी मीठी बोली और प्रेम को ही याद रखते हैं। आदमी में प्यार को बढ़ाता एक गीत—

बस यही अपराध मैं हर बार करता हूँ

आदमी हूँ आदमी से प्यार करता हूँ। (आदमी)

गीतकार समूची मानवजाति को प्यार की सीख देकर अमन और शांति की माँग करता है, इंसानियत और प्रेम को बढ़ावा देता है। हर एक के प्रति मानवीयता का व्यवहार रखने के लिए कहता है।

श्रम निष्ठता—जीवन में अपने लिए सभी जीते हैं, पर जो जीवन दूसरों के काम आए वही सार्थक कहलाता है। इसलिए गीतलेखक श्रम के महत्त्व में मानवीयता का गुण घोल हुए लिखता है—

साथी हाथ बढ़ाना, मिलकर बोझ उठाना

एक अकेला थक जाएगा, मिलकर जोर लगाना। (नया दौर)

एक-दूसरे की मदद को प्रेरित करता ये गीत श्रम के महत्त्व को भी दर्शाता है, तो वहीं 'कुली' फिल्म के एक गीत में तो गीतकार सारी दुनिया का बोझ ही अपने सिर पर उठाने का दावा करते हुए गाता है—

सारी दुनिया को बोझ हम उठाते हैं। (कुली)

गीतकार चोरी, धोखाधड़ी, भ्रष्टाचार को छोड़ आदमी को नेक रास्ते व श्रम से मेहनत करने के लिए कहता है—

खून पसीने की जो मिलेगी तो खाएँगे

नहीं तो यारों हम, भूखे ही सो जाएँगे। (खून पसीना)

इस प्रकार गीतकार जीवन में श्रम और मेहनत के महत्त्व को बताता है और इंसान को इंसान से जोड़ता है।

त्याग—हमारे गीतकारों ने अपने गीतों में त्याग का स्वर अलग-अलग रूपों में दिखाया है। इस भावना को समझाते हुए प्रेमिका गाती है—

छोड़ दे सारी दुनिया किसी के लिए

ये मुनासिब नहीं आदमी के लिए

प्यार से भी जरूरी कई काम हैं

प्यार सबकुछ नहीं आदमी के लिए

यहाँ गीतकार मजबूरी में प्यार का त्याग कर जीवन में दूसरे कामों को महत्त्व देता है, तो वहीं अगला गीत जीवन में परोपकार को दर्शाता है—

मधुबन खूशबू देता है, सागर सावन देता है,

जीना उसका जीना है, जो औरों को जीवन देता है।

ये गीत जीवन में त्याग को भी महत्त्व देते हैं। जब इंसान को कुछ पाना होता है, तब इंसान को कुछ खोना भी पड़ता है यही भाव इन गीतों में दिखाई देता है।

एकता समानता सहिष्णुता—हिंदी सिनेगीतों में आपसी सहिष्णुता का भाव और समानता भी बड़ी प्रखरता से दिखाई देती है, जो आपसी सद्भाव को बढ़ाती है। तभी तो गीतकार गा उठता है—

हिंदु मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, हम वतन, हम जान हैं

जो करें इनको जुदा मजहब नहीं इल्जाम है

अर्थात् गीतकार सभी धर्मों को एक मानने की बात करता है। जैसे कबीर सारे धर्मों में एकजुटता को बल देते थे। वैसे ही ये गीतकार गीतों के माध्यम से समाज में सहिष्णुता की भावना बढ़ाने का कार्य करते हैं। एक अन्य फिल्म के गीत में गीतकार गाता है—

तू हिंदू बनेगा, न मुसलमान बनेगा
इंसान की औलाद है इंसान बनेगा

हर इंसान के लहू का रंग एक है और हर एक की आत्मा में उस एक ईश्वर का रूप है फिर ये भेदभाव क्यों? इसी भाव को यहाँ गीतलेखक ने स्पष्ट किया है। एकता पर बल देते एक गीत के बोल हैं—

एक सूर्य है, एक चंद्रमा, एक ही धरती माता
दया करो प्रभु एक बने सब, सबको एक से नाता

अर्थात् जब सृष्टि की रचना करने वाला एक है, तो फिर धर्म और सरहदों के नाम पर बँटवारा करने वाले हम कौन होते हैं। सत्यम्-शिवम्-सुंदरम् का ये गीत सूर्य, चंद्रमा और धरती की तरह एक ही धर्म को मानने की सीख देता है। इसी का नाम तो मानवता है। 'मेरा नाम जोकर' के गीत में गीतकार का यही भाव है—

हिंदू न मुस्लिम, पूरब न पश्चिम
मजहब है अपना हँसना हँसाना

अर्थात् जीवन में दूसरों को हँसाना और नफरत को मिटाना भी एक कला है जो गीतकार गीत के माध्यम से सिखाता है।

लोकमंगल—गीतलेखक किसी भी धर्म संप्रदाय का हो, उसके लेखन का उद्देश्य साहित्य की तरह लोकमंगल ही होता है। वह इंसान को इंसान से प्यार करने की सलाह देता है। फिल्म 'शराबी' के एक गीत में यही भाव दिखाई देता है—

हम बंदे है प्यार के
माँगे सबकी खैर
हाँ...अपनी सभी से दोस्ती
नहीं किसी से बैर

गीतकार प्रेम और सद्भावना को बढ़ावा देना चाहता है। इसलिए वह नायिका के गीत के बोल द्वारा संदेश देता है—

इतनी शक्ति हमें देना दाता
मन का विश्वास कमजोर हो ना
हम चलें नेक रस्ते वे हमसें
भूलकर भी कोई भूल हो ना...

अर्थात् सच्चाई का रास्ता कितना भी कठिन हो, लेकिन हमसे कभी किसी के लिए बुरा न हो। वह आगे कहता है—

हम न सोचें हमें क्या मिला है
हम ये सोचें किया क्या है अर्पण
फूल खुशियों के बाँटे सभी को

सबका जीवन ही बन जाए मधुवन
अपनी करुणा का जल तू बहाकर
कर दे पावन हर एक मन का कोना

जब इंसान दूसरों के जीवन में खुशियाँ भरता है, तो उसका जीवन खुद-ब-खुद खुशहाल होता है। यही भाव गीतकार अपने गीतों के माध्यम से प्रस्तुत करना चाहता है। गीतकार या गीतलेखक अपने गीत के माध्यम से समाज में फैली धार्मिक कट्टरता को किसी साहित्यकार की तरह ही खत्म कर प्यार और मानवता को बढ़ाने का संदेश देते हुए, लोकमंगल की कामना करता है—

हम अमन चाहने वाले, हम प्यार पे मरने वाले,
एक बात कहेंगे सब से, नफरत को मिटा दो जग से

अतः धर्म और संप्रदाय के नाम पर देश और सीमाएँ बनाने वाले ये भूल जाते हैं कि सब धर्मों से बड़ा धर्म मानवीयता है और इसी की सीख गीतकार देना चाहता है।

विश्वबंधुत्व—गीतकार के गीतों में विश्वबंधुत्व का भाव भी दिखाई देता है इसलिए ए०एन०डी०टी० महिला विश्वविद्यालय की छात्राएँ गाती हैं—

संस्कृता स्त्री पराशक्ति स्वर हमारा है
विश्व है परिवार भारत घर हमारा है

ये गीत एक विश्व, एक परिवार की धारणा को दर्शाता है और स्त्री की शिक्षा दीक्षा पर जोर भी देता है।

आजादी—आदमी बंधनों में रहना पसंद नहीं करता। वह हमेशा आजाद पंछी की तरह रहना चाहता है। गुलाम भारत में भी आजादी की संकल्पना चाहता गीतकार गा उठता है—

अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं
सर कटा सकते हैं लेकिन सर झुका सकते नहीं।

गीतों में आजादी के महत्त्व को दिखा गीतकार इंसान को सिर उठाकर जीने की सीख देता है। आजादी के मतवाले हँसकर अपनी जान कुर्बान कर देते हैं और उस पर अपना हक मानते हैं—

आजादी हक भी है अपना, अपनी ज़ुम्मेदारी भी
जाके हम को करनी होगी इसकी पहरेदारी भी

गीतकार आजादी को बनाए रखने के लिए इसकी पहरेदारी करने की भी बताकर व्यक्ति विशेष को जाग्रत करता है।

देशभक्ति—जब भारत देश आजाद हुआ और देश में देशभक्ति की फिल्मों का बोल-बाला हुआ, तभी देशभक्ति के गीतों की भी धूम मच गई। देशप्रेम को जगाते ये गीत, गीतकार व गीतलेखकों समाज में देशभक्ति का जज्बा जगाने में कामयाब हुए—

ऐ वतन ऐ वतन तेरे सर की कसम
तेरी राहों में जा तक लुटा जाएँगे।

ये गीत देश के प्रति लोगों में जुनून भरते दिखाई देते हैं। 'श्री 420' का गीत—

मेरा जूता है जापानी, ये पतलून इंग्लिसतानी
सर पे लाल टोपी रूसी, फिर भी दिल है हिंदुस्तानी

अर्थात् बाहरी परिधान कितना भी आधुनिक हो, लेकिन मन के भीतर अपनी सभ्यता और संस्कृति ही है। एक अन्य गीत में गीतकार गाता है—

होटों पे सच्चाई रहती है, जहाँ दिल में सफाई रहती है,
हम उस देश के वासी हैं, जिस देश में गंगा बहती है।

हमारे देश के नौजवानों को अपनी सभ्यता संस्कृति पर बड़ा ही मान है और देश के प्रति गर्व भी यही भाव हिंदी सिने गीतों में दिखाई देता है।

समन्वय वादिता एकता एवं भाईचारा—हमारे देश का दर्शन हमेशा समन्वयवादी और भाईचारे का रहा है। गीतकार अपने गीतों में एकता और समन्वय वादिता का संदेश देते हैं। साहित्यकार की तरह गीतकार भी इस भावना को बल देते हुए गाते हैं—

गंगा, जमुना, सरस्वती प्यार का पैगाम है,

जहाँ पे मिल जाएँ ये तीनों संगम उसी का नाम है।

अर्थात् जिस तरह इन महानदियों के मिलने से संगम बनता है, वैसे ही हमारे देश में अनेक धर्मों के लोग रहते हैं, पर हैं तो सभी हिंदुस्तानी। तभी तो गीतकार गाता है—

नफरत की लाठी तोड़ो, लालच का खंजर फेंको
जिद के पीछे मत दौड़ो, तुम प्रेम के पंछी हो
देश प्रेमियो, आपस में प्रेम करो देशप्रेमियो

और इस तरह देश में गीतकार प्रेम की सरिता को प्रवाहित करता है।

नारी—हिंदी सिनेगीतों में नारी के कई रूप दिखाई देते हैं, जो कभी माँ बन ममता उड़ेलते हैं, तो कभी बहन बन बुलाए लेते हैं। कभी सहचारी और संगिनी बन हर कदम पर साथ देते हैं, तो कभी बेटी बन पिता की चिंतक के रूप में हमारे सम्मुख अवतरित होते हैं। पुत्र का माँ के प्रति प्यार दर्शाता गीत है—

माँ मेरी माँ से मिला दे मुझे, ममता का मैं वास्ता दूँ तुझे

दर से मैं तेरे न जाऊँगा खाली, माँ शेरवाली..., ओ माँ शेरवाली

यहाँ पुत्र माँ के वियोग में देवी माँ से अपनी माँ को मिलाने की पुकार करता है, तो वहीं दूसरी ओर बहन अपने भाई को प्यार से पुकार उठती है—

बहना ने भाई की कलाई से प्यार बाँधा है

प्यार के दो तार से संसार बाँधा है।

या फिर भाई प्यार से गाता है—

देख सकता हूँ मैं, कुछ भी होते हुए

नहीं मैं नहीं देख सकता तुझे रोते हुए

जहाँ ये गीत भाई-बहन के प्यार को दर्शाते हैं, वहीं पति अपनी जीवनसंगिनी के साथ मिलकर गा उठता है—

झिलमिल सितारों का आँगन होगा

रिमझिम बरसता सावन होगा

ऐसा सुंदर सपना अपना जीवन होगा

सुंदर जीवन के सपने सँजोते ये गीत जीवनसाथी के प्यार में सबकुछ वार देने की सलाह

देते हैं। ऐसे ही 'घर' फ़िल्म में पल-पल पति के इंतजार के एहसास में डूबी पत्नी गा उठती है—

तेरे बिना जिया जाए न, तेरे बिना जिया जाए न
बिन तेरे, तेरे बिन साजना साँस में साँस ना आए
जैसे इन गीतों में जीवनसंगिनी का प्यारा रूप दिखता है, वैसे ही एक बेटी के रूप में उसका प्यार पिता के वियोग में आँखों से झलक उठता है—

ओ बाबुल प्यारे...
रोये पायल की झमझम
सिसके साँसों की सरगम
कि निसदिन तुझे पुकारे मन हो...

इन फ़िल्मी गीतों में नारी के विविध रूप दिखाई देते हैं, जो कभी उसकी दासता को भी दर्शाते हैं फिल्म 'कब तक चुप रहूँगी' की नायिका इसी दर्द में गा उठती है—

दुख सहती, चुप रहती है
ऐसी क्या लाचारी है
सुख दुख सहना और चुप रहना,
इसी का नाम तो नारी है

यह गीत नारी की दासता को दर्शाता है, तो वहीं अगला गीत नारी के रौद्र रूप को दर्शाता है—अबला नहीं लाचार नहीं तू नारी है। नारी-विमर्श पर लिखे ये गीत उसके व्यक्तित्व के हर रूप को हमारे सामने लाते हैं।

जीवन—इंसान के जीवन के उतार-चढ़ाव को गीतकार अपने गीतों से व्यक्त करते हुए गाता है—

ये जीवन है, इस जीवन का
यही है, यही है, रंग रूप
थोड़े गम हैं, थोड़ी खुशियाँ हैं
यही है, यही है छाँव धूप

कभी गीतकार ज़िंदगी के सफ़र को सुहाना मानकर गाता है—

ज़िंदगी एक सफर है सुहाना
यहाँ कल क्या हो किसने जाना

अनुराग जीवन के हर पल को ख़ूबसूरती से जीने का संदेश देते ये गीत किसी कवि की रचना के ही अंग लगते हैं और मन को लुभाते हैं।

निष्कर्षतः, हिंदी सिनेगीतों के विविध स्वरों का फलक बड़ा ही विस्तृत है। अपने इस आलेख में मैं इसकी मामूली-सी झलक ही दे पाई हूँ। जीवन के हर रंग को अपने में समाहित करते, अनायास अपनी ओर आकर्षित करते, ये गीत समन्वयवादिता एवं भाईचारे के प्रतीक हैं।

हिंदी विभाग

एस०एन०डी०टी० महिला विश्वविद्यालय, पुणे (महा०)

जनमाध्यम और मुस्लिम महिलाएँ

अमरीन, शोधार्थी

भारत एक बहुसांस्कृतिक देश है। यद्यपि भारत के संविधान में भाग-IV के अंतर्गत अनुच्छेद 44 में समान नागरिक संहिता का प्रावधान है, परंतु इसे लागू नहीं किया जा सकता है अर्थात् भारत में विभिन्न धर्मों तलाक, विवाह, उत्तराधिकार आदि को लेकर निजी कानून (Personal Law) प्रचलित हैं और इन सभी विषयों से जुड़े विवादों का हल निजी कानूनों के आधार पर ही किया जाता है, परंतु सोचने का विषय यह है कि ये मुद्दे तथा इनसे जुड़े विवाद हमारे सामने किस प्रकार आते हैं? वास्तव में ये सभी मुद्दे तथा इनसे जुड़े विवाद हमारे सामने विभिन्न जनमाध्यम लाते हैं और इसी मुख्य बिंदु से इस लेख का विषय निकट रूप से जुड़ा है। मीडिया अर्थात् जनमाध्यम (विशेषतः प्रिंट मीडिया) किस प्रकार मुस्लिम महिलाओं को निजी कानूनों तथा उनसे जुड़े अन्य मुद्दों के संदर्भ में प्रदर्शित करते हैं।

यद्यपि यह विषय सुनने तथा पहली व सरसरी समझ में बहुत ही साधारण लग सकता है परंतु यह विषय अत्यंत महत्वपूर्ण इसलिए हो जाता है, क्योंकि जो जनमाध्यमों द्वारा दिखाया जाता है, वह समाज को बहुत गहरे रूप से प्रभावित करता है और एक समुदाय विशेष की एक छवि तथा समझ बनाता है, जो समाज में उस समुदाय विशेष की स्थिति तथा जीवन को गहरे रूप से प्रभावित करता है। मेरे अध्ययन का विषय यही देखना है कि जनमाध्यम किस प्रकार मुस्लिम महिलाओं की छवि को दिखाते हैं और यह छवि मुस्लिम महिलाओं की स्थिति को किस तरह प्रभावित करती है।

उद्देश्य

हमारा उद्देश्य यह जानना है कि जनमाध्यम मुस्लिम महिलाओं तथा मुस्लिम निजी कानूनों से जुड़े विवादों को किस प्रकार प्रदर्शित करते हैं तथा वे इसमें किसप्रकार सकारात्मक अथवा नकारात्मक योग देते हैं? मीडिया का यह कार्य किस प्रकार मुस्लिम महिलाओं के जीवन को प्रभावित करता है, इसके अतिरिक्त यह भी समझना कि केवल विवादित मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करने के कारण कौनसे ऐसे महत्वपूर्ण मुद्दे हैं, जो पीछे छूट जाते हैं और मुस्लिम महिलाओं का जीवन किस तरह प्रभावित होता है, परंतु साथ ही साथ यह भी समझना जरूरी है कि जनमाध्यमों की प्रकृति ही ऐसी है कि वे विवादित मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करते हैं, क्योंकि विवादित मुद्दे ही लोगों का ध्यान आकर्षित करते हैं, इसलिए ही कहा गया है कि Good news is no news but bad news is good news. इसके अतिरिक्त यह जानना कि क्या मुस्लिम महिलाओं को दिखाते हुए जनमाध्यमों की भी कुछ पूर्वधारणाएँ होती हैं, जो उनके चित्रण को प्रभावित करती हैं।

इसी संदर्भ में जनमाध्यम और मुस्लिम महिलाओं से जुड़ी खबरों के संबंधों को देखना

ही मेरा उद्देश्य है, साथ ही इस विषय से जुड़ा एक अन्य पहलू सामने लाना है कि मुस्लिम नेतृत्व केवल विवादित मुद्दों में ही प्रमुख रूप से उभरकर सामने आता है और महिलाओं से जुड़े कितने ही आधारभूत व महत्वपूर्ण मुद्दों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता।

जनमाध्यमों की प्रकृति

मीडिया अथवा जनमाध्यमों द्वारा प्रदर्शित की जाने वाली खबरों की ओर यदि देखा जाए तो अधिकांशतः ऐसे मुद्दों और विषयों को लिया जाता है, जो विवादास्पद हैं और इन मुद्दों को लेने का कारण अधिक से अधिक लोगों का ध्यान आकर्षित करना है। जनमाध्यम संचार का ऐसा साधन है अथवा माध्यम है, जो समाज से संपर्क स्थापित करता है और जिसका संचार अत्यंत जटिल है। चूँकि जनमाध्यम समाज से व्यापक स्तर पर जुड़े हैं, इसलिए यहाँ नैतिकता तथा Ethics की बात की जाती है और इसी संदर्भ में मैं देख रही हूँ। जनमाध्यमों के लिए समाज से अंतर्क्रिया करना वास्तव में एक चुनौतीपूर्ण कार्य है और यह भारत में और भी अधिक जटिल हो जाता है क्योंकि भारतीय समाज बहुसांस्कृतिक है और यहाँ पर विभिन्न हित हैं और मीडिया जिस प्रकार विभिन्न खबरों को दिखाता है, यह संभव है कि अन्य हितों को ठेस पहुँचे या वह नज़रअंदाज़ हो जाए, निश्चय ही भारतीय समाज में यह संतुलन स्थापित करना कठिन कार्य है, जबकि मीडिया के साथ उसकी अर्थनीति और सत्ता से उसके संबंधों की जटिलता भी इसमें शामिल हो।

जनमाध्यम विवादित मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करते हैं अथवा यदि यह साधारण मुद्दों पर ध्यान देते हैं वह केवल तब जबकि वे मुद्दे 'विशिष्ट' व्यक्तियों से जुड़े हों। जैसा कि कहा भी गया है Dogs bites man it's not news but when man bites dog it's news or when dog bites any famous personality it's also news.

उपर्युक्त वर्णित स्थितियों पर ध्यान दें तो ज्ञात होगा कि चूँकि मीडिया विवादास्पद मुद्दों में अधिक दिलचस्पी लेता है, इसलिए मुस्लिम महिलाओं, निजी कानून आदि में जो विवादास्पद है, उसी पर ध्यान केंद्रित हो जाता है, जिसके चलते मुस्लिम महिलाओं से जुड़े अन्य सकारात्मक, प्रगतिशील मुद्दे पीछे छूट जाते हैं और जो मुद्दे सामने आते हैं वे या तो विवादास्पद हैं या फिर प्रसिद्ध मुस्लिम महिलाओं से संबंधित होते हैं, जोकि सामान्य मुस्लिम महिलाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करती हैं, चाहे फिर खबर सानिया मिर्जा व उनसे जुड़े फ़तवों की हो या शबाना आजमी व नेल्सन मंडेला के चुंबन की हो, वहीं दूसरी ओर यदि आम मुस्लिम महिला खबर बनती है तो वह विवादित मुद्दों में नज़र आती है, चाहे फिर खबर शाहबानो केस की हो या गुड़िया की हो। इसके अतिरिक्त एक अन्य पहलू पर भी गौर करने की ज़रूरत है कि मीडिया की पहुंच में ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड जैसी संस्थाएँ हैं, जो मुस्लिमों के हितों का रक्षक होने का दावा करती हैं और वास्तव में मुसलमानों की एक विशिष्ट छवि निर्मित करने में सहायक हैं, चूँकि मीडिया समाज से संचार की एक व्यवस्था है, इसलिए यहाँ इसकी सामाजिक जिम्मेदारी की चर्चा करना आवश्यक है, यह जनमाध्यमों की जिम्मेदारी है कि सामान्य मुस्लिम महिलाओं की आवाज़ व विचारों को सामने लाए, न कि केवल कुछ संस्थाओं अथवा व्यक्तियों तक सीमित रहे।

जनमाध्यम : मुस्लिम निजी कानून व मुस्लिम महिलाएँ

सामान्यतः जनमाध्यमों में मुस्लिम महिलाओं की छवि इस तरह है कि वे एक बंद समाज है तथा मुस्लिम निजी कानून अत्यंत कठोर तथा अपरिवर्तनशील है तथा इनमें सुधार की कोई

गुंजायश नहीं है। यद्यपि इनमें से कुछ बातें कुछ हद तक उचित भी हो सकती हैं, यदि पितृसत्ता और धर्म के असमान स्वरूप की बात की जाए, परंतु यह पूर्णतः सत्य नहीं है और स्थिति में जो परिवर्तन आया है मीडिया उसे दिखा पाने में सफल नहीं हो पाया, क्योंकि मीडिया का ध्यान विवादित मुद्दों की ओर केंद्रित रहा तथा सकारात्मकता की ओर जो प्रगतिशील परिवर्तन हुए वह नज़रअंदाज़ हो गए, साथ ही आधारभूत तथा मौलिक ज़रूरतों और समस्याओं को उचित स्थान नहीं मिल पाया। यदि मुस्लिम महिलाएँ और निजी कानूनों के विशेष संदर्भ में चर्चा की जाए तो बहुत से विवाद मस्तिष्क में एक के बाद एक आने लगते हैं।

जैसे मोहम्मद अहमद ख़ान बनाम शाहबानो मुकदमा (1985) यह मुकदमा शाहबानो नामक महिला का था। जिसे उसके पति ने तलाक दिया था और वह इदत के समय के पश्चात् भी गुज़ारेभते की माँग कर रही थी और इसके लिए संघर्ष कर रही थी और उसने न्यायालय में अपील की थी। यद्यपि इसमें सर्वोच्च न्यायालय ने अपना निर्णय शाहबानो के हक में देकर 179.20 रुपये मासिक गुज़ाराभत्ता मो० अहमद ख़ान को शाहबानो को देने के लिए कहा गया, परंतु बाद में कुछ परिस्थितियों के चलते जिनमें राजनीतिक कारण, तथा मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड का विरोध आदि शामिल है, संसद में 1986 में Muslim Women Act (Protection of Right in Divorce) पारित किया गया तथा उच्चतम न्यायालय के इस निर्णय को बदल दिया गया तथा शाहबानो को दूसरे रिश्तेदारों पर आश्रित कर दिया गया। कोई स्वतंत्र आय का स्रोत न होने पर। यदि शाहबानो मुकदमे को देखें तो ज्ञात होता है कि यह मुख्यतः मुस्लिम समुदाय से जुड़ा मामला है और राष्ट्रीय मीडिया में इसे एक मुद्दा बना कर चित्रित किया गया और इसका प्रभाव यह हुआ कि मुस्लिम महिलाओं की छवि एक बेबस और लाचार महिला के रूप में उभरकर आई, जो पर्दे में कैद अपने पति के हाथों की कठपुतली मात्र हैं, जबकि इसी मुकदमे में एक वृद्ध मुस्लिम महिला के संघर्ष और हिम्मत को प्रदर्शित नहीं किया गया कि किस तरह उसने अपने अधिकार के लिए संघर्ष किया और उसे प्राप्त भी किया, परंतु भारतीय परिस्थितियों ने उसकी इस विजय को पराजय में परिवर्तित कर दिया, यही कारण है कि समाज में मुस्लिम महिलाओं की छवि बन गई है कि वे मजबूर हैं तथा उन्हें उनका पति कभी भी तलाक दे सकता है, जबकि भारत में तलाक के मामले बहुत कम होते हैं और मुस्लिम समुदाय में यह केवल 0.03 प्रतिशत है, परंतु सभी महिलाओं को इन्हीं परिस्थितियों के मद्देनज़र देखा जाता है न कि उनके प्रगतिशील कार्यों को। इसके अतिरिक्त गुड़िया केस-गुड़िया उत्तर प्रदेश के एक जिले मेरठ में रहती थी और उसका विवाह आरिफ़ से हुआ तथा विवाह के तुरन्त बाद आरिफ़ कारगिल युद्ध में भारत की ओर से शामिल हुआ और वह कई महीनों तक लौटकर नहीं आया तब यह समझ कर कि वह या तो युद्ध में मारा गया या पाकिस्तानी जेल में बंदी बना लिया गया, उसे मृत मानकर गुड़िया का दूसरा विवाह तौफ़ीक के साथ करवा दिया गया और गुड़िया के गर्भवती होने के पश्चात् एक दिन अचानक आरिफ़ वापस आ गया और वह गुड़िया तथा उसके बच्चे को अपनाने के लिए तैयार था, इस ख़बर को बहुत ध्यान से दिखाया गया और इस पर उलेमाओं, मुफ़्तियों आदि की चर्चा को दिखाया गया तथा अंत में यह निर्णय लिया गया कि गुड़िया की शादी आरिफ़ से की जाए, परंतु इस पूरे प्रकरण में मीडिया ने कहीं भी गुड़िया के अस्तित्व और उसकी समस्याओं व मुद्दों को उठाने का प्रयास नहीं किया, आरिफ़ से शादी के पश्चात् गुड़िया पुनः गर्भवती हुई, वह बहुत

बीमार हुई यहाँ तक कि उसकी मृत्यु हो गई और मीडिया ने लगभग उसे भुला दिया, इस केस को जिस तरह मीडिया ने दिखाया, उसे समझना ज़रूरी है। इस मामले में जो विवाद था, उसी में सबकी रुचि थी, परंतु इस विवाद का केंद्रबिंदु एक महिला (गुड़िया) जब मरती है, तो उसकी समस्याओं की ओर ध्यान देने में किसी की रुचि नहीं है और यह केस कहीं न कहीं मीडिया में मुस्लिम महिलाओं के प्रतिनिधित्व के प्रश्न को भी उजागर करता है, क्या केवल इस तरह के मुद्दे दिखाकर यह मान लिया जाए कि मुस्लिम महिलाओं का दायरा यही है? क्या मुस्लिम महिलाओं के जीवन में इसी तरह की चुनौतियाँ हैं?

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों से यह बात भी उभरकर सामने आई है कि यद्यपि ये मद्दे भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, परंतु इसी दायरे में मुस्लिम महिलाओं के संघर्ष, उनकी हिम्मत तथा उनके जीवन में आए सुधारों को कभी महत्त्व नहीं मिला, जबकि मीडिया इस सकारात्मक परिवर्तन को दिखाकर एक प्रेरणास्रोत का कार्य कर सकता है।

मीडिया में जो मुद्दे दिखाए जाते हैं, वे चर्चित मुस्लिम महिलाओं से जुड़े होते हैं तथा ये मुद्दे सामान्य मुस्लिम महिलाओं के जीवन से सरोकार नहीं रखते। ऐसी स्थिति में प्रतिनिधित्व का प्रश्न इस रूप में आता है कि क्या ये चर्चित महिलाएँ मुस्लिम महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं? चर्चित महिलाओं से जुड़ी कुछ ख़बरों का ज़िक्र यहाँ किया जा सकता है। उदाहरण के लिए सानिया मिर्ज़ा (टेनिस खिलाड़ी) से जुड़े विवादों को मीडिया ने प्रमुखता दी, फिर चाहे उनसे जुड़े फ़तवों का मामला हो या शादी से पूर्व शारीरिक संबंधों को लेकर। उनकी बात मीडिया ने इन मुद्दों को बहुत ध्यान से दिखाया, परंतु क्या मीडिया इन मुद्दों को इसी तरह दिखाता, यदि सानिया मिर्ज़ा किसी और धर्म से जुड़ी होती? क्या तब भी सानिया मिर्ज़ा की पोशाक को लेकर इसी तरह ख़बरें दिखाई जातीं? इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण शबाना आजमी (अभिनेत्री) द्वारा नेल्सन मंडेला के चुंबन की ख़बर है, जिसे मीडिया ने अत्यंत बढ़ा-चढ़ाकर चित्रित किया। यदि शबाना आजमी मुसलमान नहीं होती, क्या तब भी इस ख़बर को इसी तरह बढ़ा-चढ़ाकर प्रदर्शित किया जाता? इसके अतिरिक्त यदि हाल ही में पाकिस्तानी अभिनेत्री वीना मलिक के स्वयंवर पर नज़र डालें तो यह बहुत ही चर्चित रहा, परंतु यहाँ भी यही प्रश्न उठता है कि यदि वीना मलिक पाकिस्तानी नहीं होतीं, मुसलमान नहीं होतीं, क्या तब भी मीडिया इसी प्रकार उनके स्वयंवर को महत्त्व देता? वास्तव में ये सभी मुद्दे सामान्य मुस्लिम महिलाओं के हितों से जुड़े मुद्दे नहीं हैं। मीडिया का ध्यान कभी भी साधारण मुस्लिम महिलाओं के जीवन, उनकी ज़रूरतों तथा महत्वाकांक्षाओं की ओर नहीं गया और मीडिया जिस प्रकार मुस्लिम महिलाओं से जुड़ी ख़बरों को दिखाता है, वह उनकी छवि निर्मित करता है, जो कि रूढ़िवादी है यह छवि दिखाती है कि मुस्लिम महिलाएँ एक अत्यंत बंद समाज का हिस्सा हैं, जहाँ उनके पास कोई अधिकार नहीं है तथा मुस्लिम निजी कानून अत्यंत जड़ हैं, इनमें सुधार की गुंजायश नहीं है। परंतु यह स्थिति केवल मुस्लिम महिलाओं की नहीं है, बल्कि मीडिया के प्रकृति और कॉरपोरेट घरानों व कंपनियों से इसके संबंधों के चलते सामान्य निवासियों के हितों व सरोकारों से मीडिया का जुड़ाव नहीं है। उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि मीडिया मुस्लिम महिलाओं से जुड़े विवादों को किस तरह दिखाता है और उनकी रूढ़िवादी छवि को घोषित करता है। इसी संदर्भ में तथा इस विषय से संबंधित शाजिया इल्मी से मेरी एक छोटी सी वार्ता में उन्होंने बताया कि मीडिया के क्षेत्र में उनका अभी

तक का जो अनुभव है, उसमें मुस्लिम महिलाओं की Extreme Images को स्थान दिया जाता है। साथ ही उनका यह कहना है कि मीडिया में जो सुधारवादी तथा उदार आवाजें हैं उनको प्रमुखता दी जानी चाहिए ताकि मुस्लिम महिलाओं को प्रतिनिधित्व मिल सके। साथ ही उन्होंने यह माना कि मीडिया की यह जिम्मेदारी है कि वह संतुलन स्थापित करे।

शाज़िया इल्मी (स्टार न्यूज़ में पूर्व एंकर तथा वर्तमान में 'इंडिया अगेन्स्ट करप्शन' आंदोलन में सक्रिय) से वार्ता के दौरान उन्होंने इसी विषय के एक अन्य पहलू पर चर्चा करते हुए न केवल मीडिया, बल्कि मुस्लिम समुदाय के नेतृत्व की ओर भी ध्यान दिलाया, जो कभी भी मुस्लिम महिलाओं की शिक्षा, स्वच्छता, नौकरियों आदि की ओर ध्यान नहीं देते, बल्कि निजी कानून, धर्म आदि से जुड़े मुद्दों को ही महत्व देते हैं।

कुछ विकल्प

इस विषय को लेकर समस्या की चर्चा उपर्युक्त भाग में की गई और यह देखने का प्रयास किया गया है कि मीडिया किस प्रकार मुस्लिम महिलाओं की Extreme Images को दिखाता है, परंतु ऐसे कौनसे उपाय या विकल्प हैं, जिनके माध्यम से इस स्थिति में बदलाव का प्रयास किया जा सकता है?

मुस्लिम महिलाओं के अपने समाचारपत्र, पत्रिकाएँ और प्रकाशन हों, ताकि उनकी वास्तविक ज़रूरतें, समस्याएँ, आकांक्षाएँ सामने आ सकें, साथ ही उन्हें इन सभी के माध्यम से ऐसा मंच मिल सके, जो न केवल तलाक, शादी, फ़तवों आदि की बात करें, बल्कि शिक्षा, स्वच्छता, नौकरियों आदि के क्षेत्रों पर भी ध्यान आकर्षित कर सकें।

यदि इस परिस्थिति को बदलने का प्रयास करना है तो उदार और प्रगतिशील मुस्लिम महिलाओं की आवाज़ का मीडिया में होना ज़रूरी है, ताकि उनकी वास्तविक परिस्थिति को सामने लाया जा सके। यद्यपि यह कार्य आसान नहीं है महिलाओं का मीडिया के क्षेत्र में आकर अपना स्थान बनाना आसान कार्य नहीं है। शाज़िया इल्मी हंस पत्रिका में दिए गए अपने लेख में इस क्षेत्र में आकर कार्य करने में आने वाली समस्याओं का जिक्र करती हैं पर उनका मानना है कि यदि आपका इरादा मजबूत है और आपके पास दृढ़ इच्छाशक्ति है तो आप अवश्य ही अपनी उपस्थिति दर्ज करा सकती हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे व्यक्तियों की आवाजों को प्रमुखता देने की आवश्यकता है, जो मुस्लिम महिलाओं से जुड़े मुद्दों को बेहतर और प्रगतिशीलता के साथ प्रस्तुत कर सकें।

इसके अतिरिक्त मीडिया के क्षेत्र में इन मुद्दों के साथ व्यवहार करने के लिए ऐसे व्यक्ति उपलब्ध हों, जो मुस्लिम समाज को उसके संदर्भ में बेहतर तरीके से समझ सकें। इस तरह वर्तमान समय में मुस्लिम समाज के संबंध में एक Insider Perspective की ज़रूरत है। मीडिया की यह जिम्मेदारी है कि वह मुस्लिम महिलाओं के मुद्दों को दिखाते समय सच, निष्पक्षता तथा वस्तुनिष्ठता (Truth, Fairness and Objectivity) को लाने का प्रयास करे और उनकी Extreme Image को दिखाने से बचे तथा समाज में उनकी वास्तविक स्थिति दिखाने का प्रयास करे तथा इसमें संतुलन स्थापित करें।

निष्कर्ष

उपर्युक्त वर्णन पर दृष्टि डालें तो ज्ञात होता है कि मीडिया ने मुस्लिम महिलाओं को

जिस प्रकार दिखाया है। समाज में उनकी रूढ़िवादी छवि में कोई बदलाव नहीं आया है। इस स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि मीडिया इन विषयों के प्रदर्शन को लेकर एक संतुलन स्थापित करें।

संदर्भ

1. Thakurta, P.G. 2011. *Media and Ethics*, 2nd ed. Oxford University Press
2. Banatwala, G.M. 1998. Muslim Approach In : Asif, A.U. eosQ. *Media and Muslim in India since Independence*. Institute of Objective Studies : New Delhi, pp. 13-22
3. नागर, नी. 2004. मीडिया के पूर्वाग्रह पुस्तक में : राजकिशोर संपादित भारतीय मुसलमान : मिथक और यथार्थ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. Sikand, Y. 1994. Muslims and Mass Media. *Economic & Political Weekly*.
5. Asif, A.U. 1998. Image of Muslim. In Asif, A.U. eosQ. *Media and Muslims in India Since Independence*. Institute of Objective Studies : New Delhi, pp. 23-33
6. Mehta, V. 2009. Muslim and Media Images. In : Farouqui, A. eosQ. *Muslims and Media Images News Verses Views*. Oxford University Press.
7. Pande, M. 2009. Indian Press. In : Farouqui, A. eosQ. *Muslims and Media Images News Verses Views*. Oxford University Press.
8. Mitra, C. 2009. The Print Media and Minority Images. In : Farouqui, A. eosQ. *Muslims and Media Images News Verses Views*. Oxford University Press.
9. Varadarajan, S. 2009. Minority Images in the Indian Print Media. In : Farouqui, A. eosQ. *Muslims and Media Images News Verses Views*. Oxford University Press.
10. इल्मी, शाज़िया 2007. शक़ल ठीक मतलब नहीं कि अक़ल बुरी, हंस, पृ० 94

एस वाई-935, बली नं० 3
संगम विहार, वज़ीराबाद, दिल्ली 110084

प्रतिभाशाली छात्राओं और औसत छात्राओं के समायोजन और मूल्यां का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० सतीश गिल

ऐसोसिएट प्रोफेसर, शिव कॉलेज ऑफ एजुकेशन
तिगाँव, फरीदाबाद

शिक्षा की प्रक्रिया आदिकाल से चली आ रही है तथा अनादिकाल तक चलती रहेगी। शिक्षा व्यक्ति के आचरण, विचार व दृष्टिकोण में परिवर्तन करती है और योग्यताओं का विकास करती है, जो समाज, राष्ट्र तथा संपूर्ण विश्व के लिए लाभदायक है। अतः हम यह कह सकते हैं कि शिक्षा की प्रक्रिया मनुष्य के जीवन को प्रभावित करती है। प्रकृति के नियम के अनुसार कोई दो प्राणी एक समान नहीं हो सकते। देखने में समान नजर आने पर भी उनमें गुण, चरित्र, आचार-विचार के आधार पर भिन्नता होगी है। व्यक्तिगत भिन्नता के मनोविज्ञान के विकास से पूर्व सभी बालकों को सामान्य बालकों की श्रेणी में रखा जाता था। मनोविज्ञान के विकास के बाद मनोवैज्ञानिकों, शिक्षा शास्त्रियों व प्रशासकों का ध्यान इस तरफ गया तथा मानसिक मापन व सांख्यिकी का विकास हुआ। बुद्धि परीक्षण द्वारा इन व्यक्तिगत भिन्नताओं का पता लगाया जाने लगा तथा जिन बालकों की बुद्धि-लब्धि 110 से 140 या अधिक पाई गई उन्हें प्रतिभाशाली बच्चों की श्रेणी में रखा गया। जिन बालकों की बुद्धि-लब्धि 90 से 110 के बीच थी उन्हें औसत बच्चों की श्रेणी में तथा जिन बालकों की बुद्धि-लब्धि 90 से कम थी उन्हें निम्न श्रेणी में रखा गया। प्रतिभाशाली बालक तीव्र बुद्धि तथा चंचल स्वभाव वाले होने के कारण समाज में समायोजन नहीं कर पाते।

बुद्धि-संसार में वैयक्तिक विभिन्नताएँ सर्वत्र परिव्याप्त हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी विभिन्नताएँ पाई जाती हैं। इसीलिए कक्षा को वैयक्तिक समस्याओं का 'जटिल जाल' कहा जाता है। शिक्षिकाएँ कक्षा में छात्राओं के व्यवहार, विफलता, सफलता, विचारधाराओं तथा उनकी विषय के प्रति रुचि अथवा अरुचि का आभास करती हैं। प्रायः देखने में आता है कि कोई छात्रा विद्यालयी वातावरण में समायोजित हो जाती है, तो इसके विपरीत कोई छात्रा लगातार अपने आपको समायोजित नहीं कर पाती। फलस्वरूप उसमें निराशा, कुंठा आदि की भावना का जन्म होता है और उसका जीवन समस्यापूर्ण बन जाता है। बुद्धि का वर्गीकरण प्रमुख रूप से निम्न प्रकार से किया जाता है— 1. प्रतिभाशाली वर्ग, 2. औसत वर्ग, 3. निम्न वर्ग

प्रतिभाशाली छात्राओं की परिभाषा एवं सप्रत्यय

प्रतिभाशाली बालक जन्म से ही अपनी प्रखर बुद्धि के कारण अलग से पहचाने जाते हैं। वे अपनी प्रतिभा के बल पर ऐसे कार्य करने लगते हैं कि माता-पिता तथा अन्य लोगों को चकित कर देते हैं। जैसे बेकन जब चार साल का था, तो उसने अपनी बहन को पत्र लिखा था।

मैकाले ने आठ वर्ष की आयु में ही 'ए ट्रीटीज टू कन्वर्ट दी नेटिव ऑफ मलावार टू क्रिश्चियनटी' लिखकर विश्व को आश्चर्य में डाल दिया था। प्रतिभावान बच्चे अपने कक्षा के सामान्य विद्यार्थियों से कहीं अधिक चतुर होते हैं। साधारण बच्चे कक्षा में अपने-आपको ठीक ढंग से समायोजित नहीं कर पाते तथा अध्यापक के लिए निरंतर समस्या उत्पन्न करते रहते हैं।

समायोजन—समायोजन का संबंध व्यक्ति के व्यक्तित्व से है। समायोजन एक महत्वपूर्ण परिवर्त्य है, क्योंकि प्रत्येक प्राणी की कुछ-न-कुछ समस्याएँ होती हैं। एक व्यक्ति कितना समायोजित है, यह उसकी समस्याओं से नहीं ज्ञात होता, बल्कि प्रभावशीलता इस बात में है कि वह उन परिस्थितियों को किस तरह स्वीकार करता है। अतः समायोजन मुख्यतः तीन बातों पर निर्भर करता है—

1. व्यक्ति की इच्छाओं, विचारों, प्रेरणाओं और लक्ष्यों आदि में समन्वय जितना अधिक होता है, समायोजन उतना ही अच्छा होता है। यदि इनमें आवश्यकता से कम समन्वय है, तो समायोजन दुर्बल होगा।
2. व्यक्ति की इच्छाओं, विचारों, प्रेरणाओं और लक्ष्यों की पूर्ति किस मात्रा और किस रूप में हुई है।
3. व्यक्ति की इच्छाएँ, विचार, लक्ष्य आदि सामाजिक मूल्यों से कहाँ तक मेल खाते हैं। इनमें मेल जितना अधिक होगा, व्यक्ति का समायोजन उतना ही अच्छा होगा।

मूल्य—स्प्रेगर का विश्वास था कि व्यक्ति के मूल्यों से उसका दायित्व जाना जा सकता है। इसलिए उसने अपनी पुस्तक 'टाइम्स ऑफ मैन' में छः प्रकार के व्यक्तियों का उल्लेख किया। इसी वर्गीकरण को आधार मानते हुए आलपोर्ट तथा लिंडजे ने अपने मूल्य अध्ययन में छः प्रकार (सैद्धांतिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौंदर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य राजनीतिक मूल्य, धार्मिक मूल्य) के मूल्यों को सम्मिलित किया।

समस्या कथन—मूल्य और समायोजन ये दोनों पहलू मानव के व्यक्तित्व में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। प्रतिभाशाली बालिकाएँ सामान्यतः औसत बालिकाओं से बौद्धिक स्तर पर श्रेष्ठ होती हैं। अनुसंधानकर्ता यह अध्ययन करने की अपेक्षा रखता है कि प्रतिभाशाली बालिकाएँ अपना समायोजन विभिन्न क्षेत्रों में कैसे करती हैं। क्या वे समायोजन में औसत बालिकाओं से भिन्न होती हैं? सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक जीवन में उनके मूल्य क्या हैं? तथा वह समाज के प्रति कैसा दृष्टिकोण रखती हैं? क्या प्रतिभाशाली बालिकाएँ तथा औसत बालिकाओं के मूल्यों में भिन्नता पाई जाती है? प्रतिभाशाली बालिकाओं के मूल्यों तथा समायोजन स्तर को जान लेने के उपरान्त उन्हें कुछ विशेष क्षेत्रों में उन्नतिशील बनाया जा सकता है, उन्हें देश का कुशल नागरिक बनने में योगदान दिया जा सकता है, उपर्युक्त निर्देशन प्रदान किया जा सकता है तथा उनके लिए अलग कक्षाएँ निर्धारित की जा सकती हैं। अनुसंधानकर्ता ने अपने अध्ययन का विषय 'प्रतिभाशाली छात्राओं तथा औसत छात्राओं के मूल्यों तथा समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन' को बनाया है। अनुसंधान की समस्या इस प्रकार की थी कि प्रतिभाशाली बालिकाओं का समायोजन स्तर क्या है तथा उनके मूल्य क्या हैं? इसी विशेषता का अध्ययन अनुसंधानकर्ता प्रस्तुत अनुसंधान में कर रहा है।

उद्देश्य

1. प्रतिभाशाली छात्राओं और औसत छात्राओं के गृह-समायोजन स्वास्थ्य सामाजिक

समायोजन का अध्ययन।

2. प्रतिभाशाली छात्राओं और औसत छात्राओं के सामाजिक, धार्मिक, सौंदर्यात्मक, आर्थिक राजनीतिक, सैद्धांतिक मूल्यों का अध्ययन।

परिकल्पनाएँ

1. प्रतिभाशाली छात्राओं और औसत छात्राओं के गृह-समायोजन स्वास्थ्य सामाजिक संवेगात्मक में सार्थक अंतर नहीं होता है।

2. प्रतिभाशाली छात्राओं और औसत छात्राओं के सामाजिक, धार्मिक, सौंदर्यात्मक, आर्थिक राजनीतिक, सैद्धांतिक मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं होता है।

विधि—इस शोधप्रबंध में अनुसंधानकर्ता ने अपने अनुसंधान कार्य को पूरा करने के लिए नोरमेटिव विधि का प्रयोग किया है।

न्यादर्श—शोधार्थी ने 200 शिक्षकों को न्यादर्श के रूप में यादृच्छिक विधि द्वारा चयनित किया है। जिसमें फरीदाबाद जिले के सीनियर सैकेंडरी विद्यालय के 100 प्रतिभाशाली तथा 100 औसत छात्राओं को लिया गया है।

उपकरण

- | | |
|-----------------------------------|-----------------|
| 1. मानसिक योग्यता सामूहिक परीक्षा | डॉ० श० जालोटा |
| 2. बेल अडजेस्टमेंट इवेंटरी | डॉ० आर० के० ओझा |
| 3. मूल्यों का अध्ययन | डॉ० आर० के० ओझा |

शोध में सांख्यिकी की विधियाँ—प्रस्तुत शोधकार्य में निष्कर्षों व परिणामों की विश्वसनीयता व वैज्ञानिकता प्राप्त करने हेतु शोधार्थी द्वारा निम्न सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया जाएगा—मध्यमान, प्रमाणिक विचलन, टी परीक्षण।

तालिका नं० 1

प्रतिभाशाली छात्राओं तथा औसत छात्राओं का गृहसमायोजन, स्वास्थ्य-समायोजन, सामाजिक-समायोजन, संवेगात्मक-समायोजन

समूह	छात्राओं	नंबर	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	टी परीक्षण	सार्थकता स्तर (Df-98)
						0.05 0.01
गृहसमायोजन	प्रतिभाशाली	100	1.52	1.08	22.77	1.96 2.58
	औसत	100	10.56	3.83		
स्वास्थ्य समायोजन	प्रतिभाशाली	100	12.64	8.92	2.44	1.96 2.58
	औसत	100	16.8	14.3		
सामाजिक समायोजन	प्रतिभाशाली	100	13.24	3.31	1.76	1.96 2.58
	औसत	100	14.36	5.43		
संवेगात्मक समायोजन	प्रतिभाशाली	100	1.20	1.12	16.49	1.96 2.58
	औसत	100	10.28	5.39		

गृह समायोजन—प्रतिभाशाली छात्राओं का माध्य 1.52 तथा औसत छात्राओं का माध्य 10.56 है तथा प्राप्त किया गया 'टी' परीक्षण का मान 22.77 है, जो कि 0.05 और 0.01 स्तर

पर 1.96 तथा 2.58 पर सार्थक है। इससे यह ज्ञात होता है कि दोनों समूहों में सार्थक अंतर पाया जाता है। मध्यमान पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि प्रतिभाशाली छात्राओं का गृहसमायोजन औसत छात्राओं से अच्छा है। इस प्रकार से हमारी उपकल्पना अस्वीकृत होती है।

स्वास्थ्य-समायोजन—तालिका से यह स्पष्ट है कि प्रतिभाशाली छात्राओं का माध्य 12.64 तथा औसत छात्राओं का माध्य 16.8 है तथा प्राप्त किया गया टी परीक्षण का मान 2.44 है जो कि 0.05 और 0.01 स्तर पर सार्थक है, परंतु 0.01 स्तर पर सार्थक नहीं है। इससे यह ज्ञात होता है कि दोनों समूहों में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता है। इस प्रकार से हमारी उपकल्पना 0.01 स्तर पर स्वीकृत मानी जाती है और 0.05 स्तर पर अस्वीकृत होती है।

सामाजिक-समायोजन—इससे यह स्पष्ट है कि प्रतिभाशाली छात्राओं का माध्य 13.24 तथा औसत छात्राओं का माध्य 14.36 है तथा प्राप्त किया गया 'टी' परीक्षण का मान 1.76 है, जो कि 0.05 और 0.01 स्तर पर 1.96 तथा 2.58 पर सार्थक नहीं है। इससे यह ज्ञात होता है कि दोनों समूहों में सार्थक अंतर पाया जाता है। इस प्रकार से हमारी उपकल्पना स्वीकृत मानी जाती है।

संवेगात्मक-समायोजन—इससे यह स्पष्ट है कि प्रतिभाशाली छात्राओं का माध्य 1.2 तथा औसत छात्राओं का माध्य 10.28 है तथा प्राप्त किया गया 'टी' परीक्षण का मान 16.49 है जो कि 0.05 और 0.01 स्तर पर 1.96 तथा 2.58 पर सार्थक है। इससे यह ज्ञात होता है कि दोनों समूहों में सार्थक अंतर पाया जाता है। मध्यमान पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि प्रतिभाशाली छात्राओं का संवेगात्मक समायोजन और छात्राओं से अच्छा है। इस प्रकार से हमारी उपकल्पना अस्वीकृत होती है।

तालिका नं० 2

प्रतिभाशाली छात्राओं तथा औसत छात्राओं का सामाजिक, धार्मिक, सौंदर्यात्मक, आर्थिक, राजनीतिक व सैद्धान्तिक मूल्य

समूह	छात्राएँ	नंबर	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	टी परीक्षण	सार्थकता स्तर (Df-98)	0.05	0.01
सामाजिक मूल्य	प्रतिभाशाली	100	28.52	12.6	1.61	1.96	2.58	
	औसत	100	31.92	16.9				
धार्मिक मूल्य	प्रतिभाशाली	100	24.32	17.59	1.74	1.96	2.58	
	औसत	100	28.32	14.61				
सौंदर्यात्मक मूल्य	प्रतिभाशाली	100	15.06	13.5	8.02	1.96	2.58	
	औसत	100	35.36	21.5				
आर्थिक मूल्य	प्रतिभाशाली	100	28.14	24.03	2.18	1.96	2.58	
	औसत	100	39.92	26.5				
राजनैतिक मूल्य	प्रतिभाशाली	100	23.10	19.8	2.15	1.96	2.58	
	औसत	100	30.07	25.6				
सैद्धान्तिक मूल्य	प्रतिभाशाली	100	16.02	9.83	6.32	1.96	2.58	
	औसत	100	26.07	12.57				

सामाजिक मूल्य— तालिका से स्पष्ट है कि प्रतिभाशाली छात्राओं का माध्य 28.52 तथा औसत छात्राओं का माध्य 31.92 है तथा प्राप्त किया गया 'टी' परीक्षण का मान 1.61 है जो कि 0.05 और 0.01 स्तर पर 1.96 तथा 2.58 पर सार्थक नहीं है। इससे यह ज्ञात होता है कि दोनों समूहों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है। इस प्रकार से उपकल्पना स्वीकृत मानी जाती है।

धार्मिक मूल्य—इससे यह स्पष्ट है कि प्रतिभाशाली छात्राओं का माध्य 24.32 तथा औसत छात्राओं का माध्य 28.32 है तथा प्राप्त किया गया 'टी' परीक्षण का मान 1.74 है जो कि 0.05 और 0.01 स्तर पर 1.96 तथा 2.58 पर सार्थक नहीं है। इससे यह ज्ञात होता है कि दोनों समूहों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है। इस प्रकार से उपकल्पना स्वीकृत मानी जाती है। अतः इससे निष्कर्ष प्राप्त होता है कि प्रतिभाशाली छात्राओं तथा औसत छात्राओं में धार्मिक मूल्यों की दृष्टि से सार्थक अन्तर नहीं होता है।

सौंदर्यात्मक मूल्य—इससे यह स्पष्ट है कि प्रतिभाशाली छात्राओं का माध्य 15.06 तथा औसत छात्राओं का माध्य 35.36 है तथा प्राप्त किया गया 'टी' परीक्षण का मान 8.02 है जो कि 0.05 और 0.01 स्तर पर 1.96 तथा 2.58 पर सार्थक नहीं है। इससे यह ज्ञात होता है कि दोनों समूहों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है। मध्यमान पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि प्रतिभाशाली छात्राओं के सौंदर्यात्मक मूल्य औसत छात्राओं से अच्छे हैं। इस प्रकार से हमारी उपकल्पना अस्वीकृत होती है।

राजनीतिक मूल्य—इससे यह स्पष्ट है कि प्रतिभाशाली छात्राओं का माध्य 28.14 तथा औसत छात्राओं का माध्य 39.92 है तथा प्राप्त किया गया 'टी' का मान 2.18 है जो कि 0.05 स्तर पर सार्थक है और 0.01 स्तर पर सार्थक नहीं है।

आर्थिक मूल्य—इससे यह स्पष्ट है कि प्रतिभाशाली छात्राओं का माध्य 23.10 तथा औसत छात्राओं का माध्य 30.07 है तथा प्राप्त किया गया 'टी' का मान 2.15 है जो कि 0.05 स्तर पर सार्थक है और 0.01 स्तर पर सार्थक नहीं है।

अतः निष्कर्ष प्राप्त होता है कि प्रतिभाशाली छात्राओं तथा औसत छात्राओं में आर्थिक मूल्यों में अन्तर हो भी सकता है और नहीं भी।

सैद्धांतिक मूल्य—इससे यह स्पष्ट है कि प्रतिभाशाली छात्राओं का माध्य 16.02 तथा औसत छात्राओं का माध्य 26.07 है तथा प्राप्त किया गया 'टी' का मान 6.32 है, जो कि 0.05 तथा 0.01 स्तर पर सार्थक है। अतः इससे यह ज्ञात होता है कि दोनों समूहों में सार्थक अन्तर पाया जाता है। मध्यमान पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि प्रतिभाशाली छात्राओं के सैद्धांतिक मूल्य औसत छात्राओं से अच्छे हैं। अतः हमारी उपकल्पना अस्वीकृत होती है।

निष्कर्ष—समस्या से संबंधित परिकल्पना की जाँच के लिए समायोजन प्रश्नावली तथा मूल्य प्रश्नावली पर अध्ययन कर अनुसंधानकर्त्री के निष्कर्ष निम्नलिखित हैं—

1. **गृह समायोजन**—इस क्षेत्र के अंतर्गत अनुसंधानकर्त्री की परिकल्पना असत्य सिद्ध होती है, क्योंकि गृह समायोजन में प्रतिभाशाली तथा औसत छात्राओं में सार्थक अन्तर पाया जाता है।

2. **स्वास्थ्य समायोजन**—स्वास्थ्य समायोजन की परिकल्पना 0.01 स्तर पर सार्थक नहीं है और 0.05 स्तर पर सत्य प्रतीत होती है। प्रतिभाशाली और औसत छात्राओं की स्वास्थ्य समायोजन में अन्तर पाया जा सकता है और नहीं भी पा जा सकता है।

3. **सामाजिक समायोजन**—इस क्षेत्र के अंतर्गत अनुसंधानकर्त्री द्वारा बनाई गई उपकल्पना सत्य सिद्ध होती है, क्योंकि प्रतिभाशाली तथा औसत छात्राओं के सामाजिक समायोजन में अंतर नहीं होता।

4. **संवेगात्मक समायोजन**—यहाँ पर अनुसंधानकर्त्री की परिकल्पना असत्य सिद्ध होती है क्योंकि प्रतिभाशाली तथा औसत के छात्राओं संवेगात्मक समायोजन में अंतर पाया जाता है।

5. **सामाजिक मूल्य**—यहाँ पर अनुसंधानकर्त्री की परिकल्पना सत्य सिद्ध होती है। अतः उसने पाया कि प्रतिभाशाली छात्राओं तथा औसत छात्राओं के सामाजिक मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं पाया जाता।

6. **धार्मिक मूल्य**—यहाँ पर अनुसंधानकर्त्री की परिकल्पना सत्य सिद्ध होती है, अतः यहाँ पर अनुसंधानकर्त्री ने पाया कि प्रतिभाशाली छात्राओं तथा औसत छात्राओं के धार्मिक मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं होता।

7. **सौंदर्यात्मक मूल्य**—अनुसंधानकर्त्री द्वारा की परिकल्पना असत्य सिद्ध होती है। क्योंकि प्रतिभाशाली तथा औसत छात्राओं के सौंदर्यात्मक मूल्यों में अंतर पाया जाता है।

8. **राजनीतिक मूल्य**—राजनीतिक मूल्यों की परिकल्पनाओं 0.01 स्तर पर सत्य प्रतीत होती है तथा 0.05 पर असत्य प्रतीत होती है। प्रतिभाशाली छात्राओं तथा औसत छात्राओं के राजनीतिक मूल्यों में अंतर पाया भी जा सकता है और नहीं भी पाया जा सकता।

9. **आर्थिक मूल्य**—आर्थिक मूल्यों की परिकल्पना 0.01 स्तर पर सत्य प्रतीत होती है तथा 0.05 पर असत्य प्रतीत होती है। प्रतिभाशाली छात्राओं तथा औसत छात्राओं के आर्थिक मूल्यों में अन्तर पाया भी जा सकता है और नहीं भी।

10. **सैद्धांतिक मूल्य**—अनुसंधानकर्त्री द्वारा परिकल्पना असत्य सिद्ध होती है। अतः क्योंकि प्रतिभाशाली तथा औसत छात्राओं के सैद्धांतिक मूल्यों में अंतर पाया जाता है।

शैक्षिक निहितार्थ

1. प्रतिभाशाली छात्राओं तथा औसत छात्राएँ दोनों ही गृह समायोजन में दक्ष होती हैं। दोनों ही घर में समायोजन कर सकती हैं।
2. प्रतिभाशाली छात्राएँ तथा औसत छात्राएँ दोनों ही सामाजिक समायोजन कर सकती हैं। उनमें कोई अंतर नहीं पाया जाता।
3. प्रतिभाशाली छात्राओं तथा औसत छात्राओं का स्वास्थ्य अच्छा हो सकता है। दोनों ही स्वस्थ होती हैं।
4. प्रतिभाशाली छात्राओं तथा औसत छात्राओं के संवेगों में अंतर पाया जाता है। प्रतिभाशाली छात्राओं के संवेगों में अस्थिरता भी हो सकती है तथा स्थिरता भी हो सकती है। इसी प्रकार औसत छात्राएँ भी संवेगों में अस्थिर हो सकती हैं।
5. प्रतिभाशाली छात्राओं तथा औसत छात्राओं के सामाजिक मूल्यों में अंतर पाया जाता है।
6. प्रतिभाशाली छात्राओं तथा औसत छात्राओं के धार्मिक मूल्यों में अंतर पाया जाता है। दोनों ही अपने धर्म के प्रति निष्ठावान होती हैं।
7. प्रतिभाशाली छात्राओं तथा औसत छात्राओं के सौंदर्यात्मक मूल्यों में अंतर पाया जाता है। दोनों में सौंदर्यात्मक प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न हो सकती है।

8. प्रतिभाशाली छात्राएँ तथा औसत छात्राएँ दोनों ही राजनीतिक प्रवृत्ति में भी सक्रिय हो सकती हैं और नहीं भी।
9. प्रतिभाशाली छात्राएँ तथा औसत छात्राएँ दोनों के आर्थिक मूल्यों में अंतर हो सकता है।
10. प्रतिभाशाली तथा औसत छात्राओं के सैद्धांतिक मूल्यों में अंतर होता है। दोनों की सैद्धांतिक सोच अलग-अलग हो सकती है।

संदर्भ

1. बेस्ट, जे, डब्ल्यू रिसर्च इन एजुकेशन, प्रिंटेस हाल 1959 एलिंगवुड क्लिफ्स
2. गेरेट, एच० ई० स्टेटिसटिक्स इन साइकोलोजी एंड एजुकेशन, बांबे विकिल फेफर एंड लिमिटेड 1971
3. आलपोर्ट, जी० डब्ल्यू० वीकनिंग बेसिक कॉनसीडरेशंस फार ए साइकोलोजी आफ परसनलिटी न्यू हेवेन, येल युनिवर्सिटी प्रेस, 1955
4. स्टेकिल, एल० सी० प्रॉब्लम ऑफ ह्यूमन एडजेस्टमेंट न्यूयार्क हारपर एंड ब्रदर्स 1949
5. कॉब, के० प्रॉब्लम बिहेवियर एण्ड एडजेस्टमेंट इन चिल्ड्रन बोटलन हागटन मिफटिन कंपनी, 1951
6. सुरेश भटनागर, शिक्षा मनोविज्ञान, लायल बुक डिपो, मेरठ 1974-75
7. स्प्रेनगर, एफ० टाइप्स ऑफ मैन, एन, वाई हाफनर पब्लिशिंग कंपनी, 1928
8. स्कीनर, ई० एजुकेशनल साइकोलोजी, प्रिंटेस हॉल ऑफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1974
9. आर०एन० शर्मा एवं शर्मा, आर० एडवांस एप्लाइड साइकोलाजी, एटलांटिक पब्लिशर्स 2004
10. एम० चक्रवर्ती, वेल्यु एजुकेशन चेंजिंग पर्सपेक्टिव, कनिष्का प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997
11. आर० सी० शर्मा, मोरल एंड वेल्यु एजुकेशन, बुक एन्कलेव जैन भवन, जयपुर, 2003
12. मिश्र, झी० (मराल) शिक्षा की समस्याएँ और समाधान, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2003
13. आर० एस० भंडारी, वेल्यु एजुकेशन, अभिषेक प्रकाशन, चंडीगढ़, 2003

उत्तर प्रदेश में 73वें संविधान संशोधन के बाद पंचायती राज-व्यवस्था, प्रशासनिक ढाँचा तथा उसका मूल्यांकन विवेक पांडेय

राजनीति विज्ञान विभाग
फीरोज गांधी कॉलेज, रायबरेली

1991 ई० में श्री पी०वी० नरसिंहा राव ने अपने प्रधानमंत्रित्वकाल में लोकसभा में संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया। इसमें वे सभी बिंदु शामिल किए गए थे, जो पूर्व में प्रस्तुत 64 वें संविधान संशोधन विधेयक में थे। मुख्य अंतर ढाँचे के बारे में था। 64वें विधेयक में तीनों स्तरों पर पंचायतीराज संस्थाओं के गठन का बिंदु राज्य सरकारों की इच्छा पर छोड़ दिया गया था। 73वें संविधान संशोधन के अंतर्गत अनिवार्य प्रावधानों से तात्पर्य उन उपबंधों से है, जो प्रत्येक राज्य को पंचायतीराज-व्यवस्था का आवश्यक रूप से आधार होंगे। कोई राज्य उन प्रावधानों की उपेक्षा अथवा उनमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकता।

अनिवार्य प्रावधानों में त्रिस्तरीय व्यवस्था का प्रावधान प्रमुख है। जिसके अंतर्गत ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत एवं जिला पंचायत की व्यवस्था निर्धारित की गई है। उक्त अधिनियम में केवल 20 लाख से कम जनसंख्या वाले राज्यों में मध्य स्तरीय पंचायतों के गठन को आवश्यक नहीं बताया गया। पंचायतीराज-व्यवस्था की प्रथम निम्नतम इकाई ग्राम पंचायत को बनाया गया है जिसके सदस्यों का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर कराये जाने की व्यवस्था अनुच्छेद 243 ब में की गई है। अनिवार्य प्रावधानों में पंचायतों के कार्यकाल पाँच वर्ष तय किए हैं। राज्य स्तर पर राज्य निर्वाचन आयुक्त पंचायत एवं स्थानीय निकाय का पद भी 78वें संविधान संशोधन के माध्यम से बनाया गया। जिसके पर्यवेक्षण में पंचायतों एवं नगरीय निकायों के चुनाव होते हैं। राज्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति तथा राज्य निर्वाचन आयोग की स्थापना संबंधित राज्य के राज्यपाल द्वारा की जाती है। पंचायतों के बीच वित्तीय स्रोतों का वितरण तथा उनकी आर्थिक सबलता को दृष्टिगत रखते हुए उपर्युक्त अधिनियम द्वारा राज्य स्तर पर एक वित्त आयोग के गठन का प्रावधान भी किया गया है। आयोग का प्रमुख कार्य राज्य और पंचायतों के बीच आर्थिक स्रोतों का वितरण करना है। आयोग पंचायतों को आर्थिक रूप से सुदृढ़ करने के लिए आवश्यक संस्तुतियाँ भी करेगा। ऐच्छिक प्रावधानों में ग्राम पंचायतों तथा मध्यस्तरीय पंचायतों के आकार, गठन एवं क्षेत्र के निर्धारण का अधिकार एवं पंचायतों के विभिन्न शक्तियों के हस्तांतरण का अधिकार राज्यों को दिया गया है। उत्तर प्रदेश में 1994 में उत्तर प्रदेश पंचायत विधि अधिनियम पारित किया गया मुलायमसिंह यादव के नेतृत्व की सपा-बसपा गठबंधन सरकार ने ग्रामसभा, क्षेत्र

समिति, जिला परिषद का नाम क्रमशः ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत, जिला पंचायत कर दिया। इसी वर्ष अन्य पिछड़ा-वर्ग के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण भी पंचायतों में किया गया। मुलायमसिंह सरकार ने ग्राम प्रधानों को निर्लंबित करने का अधिकार उपजिलाधिकारी से छीनकर जिलाधिकारी में निहित कर दिया। पहली बार 1995 में 73वें संविधान संशोधन के अनुरूप उत्तर प्रदेश में चुनाव कराए गए। ब्लाक प्रमुखों के चुनाव क्षेत्र पंचायत सदस्यों द्वारा होने लगे। 73 वें संविधान संशोधन के उपरांत महिलाओं को भी पंचायतों में एक तिहाई आरक्षण दिया गया। अनुच्छेद 243 द में महिलाओं से संबंधित आरक्षण एवं सदस्यता का प्रावधान किया गया, किंतु संसद में प्रमुख राजनीतिक दलों के संयुक्त षड्यंत्र से आज तक एक तिहाई आरक्षण लागू नहीं किया जा सका। विधायिका में महिला आरक्षण का स्वप्न अभी तक साकार नहीं हो पाया। हालांकि पंचायतों का काम परिजनों के माध्यम से चलाने की प्रवृत्ति धीरे-धीरे बदल रही है। शक्ति संपन्नता विकास और समानता के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए महिलाओं की निर्णय-प्रक्रिया में सहभागिता काफी हद तक 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से सुनिश्चित हुई है।

73वाँ संविधान के अनुक्रम में उत्तर प्रदेश पंचायत विधि (संशोधन) विधेयक 1994 पारित किया गया, जो 22 अप्रैल 1994 से प्रदेश में प्रवृत्त हुआ जिसमें संयुक्त प्रांत पंचायत राज अधिनियम 1947 तथा उत्तर प्रदेश क्षेत्र समिति तथा जिला परिषद अधिनियम 1961 में संशोधन कर राज्य में तीनों स्तर की पंचायतों (ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत तथा जिला पंचायत) में एकरूपता लाने, पंचायतों का संगठन और संरचना अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग तथा महिलाओं के लिए आरक्षण, पंचायतों का निश्चित कार्यकाल, निर्वाचन आयोग तथा वित्त आयोग की स्थापना, पंचायतों के कृत्य, शक्तियाँ और उत्तरदायित्व आदि के संबंध में व्यापक व्यवस्था की गई है।

73वें संविधान संशोधन की विधिक व्यवस्थाओं के अनुरूप वर्ष 2000 और 2005 में क्रमशः पंचायतों के 8वें एवं 9वें निर्वाचन संपन्न हुए। पूर्व में 7वाँ निर्वाचन 1995 में हुआ था जिसमें पहली बार क्षेत्र पंचायत सदस्यों द्वारा ब्लाक प्रमुख एवं जिला पंचायत सदस्यों द्वारा अध्यक्ष जिला पंचायत का चुनाव किया गया। इसी अध्याय में पंचायतीराज विभाग के प्रशासनिक ढाँचे की विस्तार में चर्चा की गई है। प्रदेश स्तर पर निदेशक पंचायतीराज उत्तर प्रदेश विभागाध्यक्ष के रूप में विभाग का नेतृत्व करता है। शासन स्तर पर मंत्री पंचायतीराज के निर्देशन में प्रमुख सचिव पंचायतीराज पूरे प्रदेश में पंचायत राज विभाग का सबसे बड़ा अधिकारी होता है। प्रमुख सचिव पंचायतीराज भारतीय प्रशासनिक सेवा का अधिकारी होता है। प्रमुख सचिव के सहयोग के लिए विशेष सचिव व सचिव जो कि I.A.S. एवं P.C.S. सेवा के अधिकारी होते हैं, द्वारा विभागीय कार्य किए जाते हैं।

जनपद स्तर पर जिला पंचायत राज अधिकारी विभाग का प्रमुख अधिकारी होता है। जिला पंचायत राज अधिकारी अधीन प्रत्येक विकास खंड में सहायक विकास अधिकारी पंचायत होते हैं। वर्तमान समय में संचालित राष्ट्रीय महत्त्व की मनरेगा योजना में विकास खंड स्तर पर खंड विकास अधिकारी के साथ एंडीओ (पंचायत) का संयुक्त खाता कर दिया गया है। जिससे एंडीओ (पंचायत) की ब्लाक स्तर पर महत्त्वपूर्ण भूमिका हो गई। ग्राम पंचायतों के स्तर पर ग्राम विकास अधिकारियों तथा ग्राम पंचायत अधिकारियों द्वारा सचिव ग्राम पंचायत का कार्य किया

जा रहा है। सचिव ग्राम पंचायत का ग्रामप्रधान के साथ संयुक्त खाता होता है। खंड विकास अधिकारी मनरेगा योजना के अंतर्गत ब्लाक स्तर पर कार्यक्रम अधिकारी भी होता है। खंड विकास अधिकारी के सहयोग के लिए क्षेत्र पंचायत स्तर पर कई सहायक विकास अधिकारी होते हैं। 1999 में तत्कालीन कल्याणसिंह सरकार ने कई विभागों के ग्राम स्तरीय कर्मचारियों को ग्राम पंचायत के अधीन कर दिया था तथा कर्मचारियों को बहुद्देश्यी कर्मी पदनाम दे दिया था, किंतु बाद में यह व्यवस्था विफल साबित हुई तथा बाद में ग्राम विकास एवं पंचायत राज विभाग के अतिरिक्त अन्य विभागों के कर्मचारी मूल विभागों में वापस कर दिए गए।

विभिन्न राज्यों में ग्राम पंचायतों का जो स्वरूप है, वह लगभग समान है। अतः संपूर्ण देश की पंचायतों को समझना बहुत सरल है। प्राचीनकाल में ग्राम पंचायतों से तात्पर्य ग्राम के उन सम्मानित वृद्ध पाँच लोगों से था, जो अपने ग्राम की सभी समस्याओं को सुलझाते थे तथा पंच कहलाते थे।

किसी भी वाद के दोनों पक्ष पंचों का इतना सम्मान करते थे कि उनका निर्णय ईश्वर का निर्णय समझकर स्वीकार कर लेते थे इसी कारण से 'पंच-परमेश्वर' की कहावत भी प्रचलित है। हमारे देश की लंबी पराधीनता ने इस आदर्श व्यवस्था को समाप्त कर दिया। अब कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की कानून रहित स्थिति को स्वीकार करने के लिए तैयार ही नहीं है। इस कारण वर्तमान ग्राम पंचायतों का संगठन कानून के आधार पर किया गया है। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रत्येक ग्राम पंचायत में ग्राम पंचायत सचिवालय की स्थापना का प्रावधान भी किया गया है। जिसमें ग्राम पंचायत सचिव के निवास तथा ग्राम पंचायत कार्यालय की भी स्थापना की गई है। ग्राम पंचायत की समय-समय पर खुली बैठकों का भी आयोजन किया जाता है जिसमें ग्राम पंचायत के निर्वाचित सदस्यों के अतिरिक्त ग्राम के संभ्रांत व्यक्ति भी आमंत्रित किए जाते हैं। ग्राम पंचायतों को विभिन्न प्रकार के कर लगाने के भी अधिकार हैं। ग्राम पंचायत को भूमिहीनों को कृषि व आवासीय कार्य हेतु पट्टे देने के भी अधिकार हैं। उत्तर प्रदेश में जिला योजना समिति की भी व्यवस्था की गई है, जो जिले स्तर पर विकास संबंधी कार्यों की सर्वोच्च समिति होती है, जिसका अध्यक्ष प्रभारी मंत्री होता है। इस समिति में जिले के सांसद और विधायक को स्थायी आमंत्रित सदस्य बनाया जाता है। प्रभारी मंत्री विभागों को विकास कार्यों हेतु बजट भी आवंटित करता है। जिलाधिकारी तथा मुख्य विकास अधिकारी इस समिति के निर्देशों के क्रम में विकास कार्य करते हैं।

पंचायतीराज के उद्देश्य की प्राप्ति के मार्ग में निम्नलिखित प्रमुख सामाजिक समस्याएँ हैं। जनता में साक्षरता का अभाव, राजनैतिक चेतना का अभाव, निस्वार्थ नेतृत्व का अभाव, जनता का आलस्य तथा उसकी क्रियाहीनता, भारत का अलोकतांत्रिक सामाजिक तथा पारिवारिक ढाँचा, जातीय, धार्मिक तथा साम्यवादी निष्ठाएँ, ग्राम समुदाय में शक्तिशाली सामंती वर्गों का कमजोर वर्गों पर प्रभुत्व, पंचायतीराज संस्थाओं पर प्रशासनिक तंत्र का अत्यधिक नियंत्रण हो गया है। संयुक्त खाता संचालन की स्थितियों में क्रमशः अध्यक्ष जिला पंचायत व अपर मुख्य अधिकारी, प्रमुख क्षेत्र पंचायत व खंड विकास अधिकारी, प्रधान ग्राम पंचायत व सचिव ग्राम पंचायत के मतभेदों व विवादों से पंचायतीराज संस्थाओं में विकास की गति पर बुरा प्रभाव पड़ता है। हालिया वर्षों में करोड़ों रुपया अनुदान आने से यह संस्थाएँ भ्रष्टाचार व लूटमार केंद्र भी बनते जा रहे हैं। कई

जगह आर्थिक व हिस्सेदारी के विवाद में मारपीट व हत्या तक हो जाती है। हालाँकि सूचना के अधिकार 2005 ने आम आदमी को काफी हद तक सच जानने का अवसर मुहैया कराया है। फिर भी यह अधिकार नौकरशाही व राज्य सूचना आयोगों के भ्रष्ट गठबंधन से अपना वजूद खोता जा रहा है। परंपरा यह हो गई है कि सूचना माँगने वाले को ही सरकारी तंत्र के उत्पीड़न व दमन का शिकार बनना पड़ रहा है। सिटिजन चार्टर की व्यवस्था भी पंचायतीराज की उपलब्धियों में से एक है, किंतु वह भी कागजी साबित हो रही है। तयशुदा समय में जनता को सहूलियतें उपलब्ध कराए जानेवाली बात हवा-हवाई हो गई हैं। निश्चित समय में विभिन्न प्रमाण-पत्र उपलब्ध कराना, विभिन्न शिकायती पत्रों का समयबद्ध निस्तारण आदि केवल कागजों पर हो रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि मुकदमेबाजी को बढ़ने से रोकने के लिए थाना व तहसील स्तर पर जनसमस्याओं का अपेक्षित निस्तारण अपरिहार्य है।

अपनी अनेक कमियों और दुर्बलताओं के बावजूद पंचायतीराज ग्रामवासियों की जीवन पद्धति का केंद्र बनता जा रहा है। अशिक्षित जनता जातिगत और धर्मगत अंधविश्वास, परंपरागत अलोकतांत्रिक सामाजिक और पारिवारिक ढाँचे परिपक्व राजनीतिक प्रबुद्धता की कमी आदि के कारण पंचायतीराज की उपलब्धियों का कम अंकन करने तथा पंचायतीराज की आलोचना करने की एक सामान्य प्रवृत्ति विकसित हो गई है। पंचायतीराज-व्यवस्था ने देश के राजनीतिकरण व आधुनिकीकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसके कार्य-कलापों ने ग्राम्यजीवन में एक नया जागरण पैदा कर गाँव वालों को शोषित होने से बचाया है। वोट की कीमत समझी जाने लगी है, ग्रामीण जनता की राजनीतिक राजनीतिक हिस्सेदारी बढ़ी है। लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण संस्थाएँ स्वशासन की इकाईयों के रूप में विकसित हो रही हैं। ग्रामीण नेतृत्व पनपता जा रहा है। गाँवों की अवहेलना करना आसान कार्य नहीं रह गया है। गाँवों के पिछड़े वर्गों में चेतना द्वारा गाँवों की स्त्रियाँ भी राजनीतिक क्रियाकलापों में भाग लेने लगी हैं। राजनीतिक जागृति के साथ सामाजिक चेतना बढ़ी है। छुआछूत और भेदभाव की दीवारों को पंचायतीराज ने जबरदस्त धक्का पहुँचाया है। पंचायतीराज के कारण गाँवों का परंपरागत प्रेम सौहार्द तथा भाईचारा समाप्त हो गया है। वस्तुतः इसके लिए सीधे ही पंचायतीराज को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है, लेकिन यह भी सत्य है कि लोकसभा चुनावों में जो गाँव 40-45 प्रतिशत वोट डालता है, वह पंचायत चुनाव में 90-95 प्रतिशत वोट देता है। मूँछों की लड़ाई के रूप में लड़े जाने वाले पंचायत चुनावों के समय अधिसंख्य लोकसेवक चुनाव ड्यूटी से बचना चाहते हैं, क्योंकि इन चुनावों में हिंसा भी खूब होती है तथा भाई-भतीजावाद से लेकर जातिवाद तक तथा राजनीतिक विद्वेषों से लेकर भ्रष्ट आचरण तक सब-कुछ सरेआम सिर चढ़कर बोलता है। संविधान, कानून तथा अनुशासन किसी कोने में दफन हो जाता है तथा एक अजीब-सा भयनुमा एवं परस्पर अविश्वास से भरा वातावरण बन जाता है। महिला जनप्रतिनिधि अभी भी मुखौटे में काम कर रही हैं। उनके पति आदि उनके मूल दायित्वों का निर्वहन कर रहे हैं। यह स्थिति दुःखद है। फिर भी पंचायतीराज संस्थाएँ 1993 से अब तक काफी सशक्त हुई हैं। सामाजिक जागरूकता का विस्तार हुआ है, आम आदमी को अपने अधिकार पता चल रहे हैं, इंदिरा आवास का चेक सीधे लाभार्थी के खाते में जा रहा है। मजदूरी का भुगतान श्रमिकों के खातों में किया जा रहा है, शून्य बैलेंस पर मजदूरों के खाते खोले गए हैं। बिचौलियों की व्यवस्था खत्म की गई है। आम आदमी का पंचायतीराज कहीं-कहीं दिख रहा

है। पंचायतीराज जनता की आवाज बना है। 1992 से अब तक के इस दौर में हमने काफी ऊर्चाईयाँ तय की हैं। आशा है कि भविष्य में पंचायतीराज के माध्यम से व्यापक सामाजिक, राजनैतिक बदलाव होगा तथा हाशिए पर पड़े आम आदमी को अधिक सक्रिय रूप से मुख्यधारा में आने का अवसर मिलेगा।

संदर्भ

1. डॉ॰ सुरेंद्र कटारिया, पंचायतीराज संस्थाएँ-अतीत, वर्तमान एवं भविष्य
2. अंजली वर्मा, भारत में पंचायतीराज
3. मुन्नी पड़लिया, भारत में पंचायतीराज-व्यवस्था
4. डॉ॰ निशांतसिंह, पंचायतीराज-व्यवस्था

दिल्ली सुल्तानों का खलीफाओं से संबंध

डॉ० नीलू कपूर

प्रवक्ता इतिहास

कमला आर्यकन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय

मीरजापुर

मुहम्मद शाह के उत्तराधिकारी खलीफा कहलाते हैं। वे खलीफा मुसलमानों के प्रमुख होते थे। मुस्लिम न्याय वक्ताओं द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों के अनुसार खलीफा धर्म का संरक्षण तथा मुस्लिम राजसमूह का प्रमुख व्यवस्थापक एवं प्रशासक था। प्रथम चार खलीफाओं के उपरांत 661 ई० से 749 ई० तक उमय्या की खिलाफत रही और 749 ई० में अब्बासी खलीफाओं का राज्य स्थापित हुआ, जो 1258 तक चलता रहा। इस वंश के अल-मुस्तसिम की हत्याकार हलाकू ने बागदाद पर अधिकार कर लिया। अतः बागदाद में अब्बासी खलीफाओं का अंत हो गया। परंतु मुस्लिम का एक चाचा अहमद किसी प्रकार मिश्र भाग निकला। जहाँ बादशाह जहीर ने उसका सवा किया और उसे नाममात्र का खलीफा बना दिया। इस प्रकार मिश्र में अब्बासी खलीफाओं का राज्य प्रारंभ हो गया।¹

दिल्ली सुल्तानों का इस खलीफाओं के संबंध काल्पनिक था या दिल्ली सल्तनत खलीफाओं के अधीन राज्य था इस पर विचार करने पर तीन बातें सामने आती हैं—खलीफा दिल्ली सुल्तानों के प्रेरणा स्रोत थे, दिल्ली सुल्तानों की वैधानिकता के लिए खलीफाओं की स्वीकृत आवश्यक था और दिल्ली सल्तनत क्या वास्तविक रूप से खलीफाओं के साम्राज्य का एक भाग था।

इन बातों को ध्यान में रखते हुए दिल्ली सुल्तानों और खलीफाओं के संबंधों का विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं।

यद्यपि सुलतान कुतुबुद्दीन ऐबक दिल्ली सल्तनत का संस्थापक सुल्तान था, फिर भी उसे बागदाद के खलीफा की ओर से कोई खिल्लत अथवा स्वीकृति पत्र प्राप्त नहीं हुई। सुल्तान इल्तुतमिश पहला व्यक्ति था जिसे बागदाद के खलीफा के ओर से मान्यता प्राप्त थी। इल्तुतमिश ने अपने कट्टर विरोधी तुर्कों को शांत करने के लिए बागदाद के खलीफा से स्वीकृति पत्र प्राप्त कर लिया। इस स्वीकृति पत्र के साथ बागदाद के खलीफा का एक प्रतिनिधि मंडल 18 फरवरी 1229 को दिल्ली पहुँचा था। जिसका सुल्तान इल्तुतमिश ने बड़ा भव्य स्वागत किया था।²

सुल्तान इल्तुतमिश ने नासिर-अमीर-उल-मुमिनिन की पदवी धारण की, जिसका तात्पर्य है कि वह अब्बासी खलीफाओं का सहयोगी बना परंतु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं था कि सुल्तान इल्तुतमिश खलीफा की अधीनता स्वीकार करता था। उसने बंगाल के शासक गयासुद्दीन

पर आक्रमण किया जिसने उसी की भाँति बगदाद के खलीफा से मान्यता प्राप्त की थी। इससे प्रमाणित होता है कि वह केवल काल्पनिक रूप से खलीफा के अधिकारों को मानता था।

सुल्तान इल्तुतमिश के उपरांत भी दिल्ली सल्तनत के इतिहास के खलीफाओं का नाम केवल काल्पनिक एवं आक्रामिक बनकर ही रह गया। चंगेज खाँ के पौत्र हलाकू ने बगदाद के अब्बाजी खलीफा मुस्तसिन बिल्लाह को परजित कर (1258) ई० में उसकी हत्या कर दी, परंतु सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद तथा उसके वजीर बलबन ने हलाकू को दुश्मन समझने के बजाय उसके प्रतिनिधियों का 1260 ई० में भव्य स्वागत किया और राजनैतिक आवश्यकताओं को देखते हुए हलाकू के साथ मित्रता स्थापित की थी।³

इल्तुतमिश के सिक्को पर नसीर-अमीर-उलमुमिनिन तथा अल-मुस्तान्सिर अमीर-उल-मुमिनिन अंकित मिलता है। सुल्तान रुकुनुद्दीन फिरोजशाह (1236) ई०, रजिया (1236-1240) ई०, बहरामशाह (1240-1242) ई० तथा अलाउद्दीन मसूहशाह (1242-11246) ई० आदि सभी सुल्तानों के सिक्कों पर खलीफा मुस्तांसेर का नाम अंकित मिलता है। अलाउद्दीन मसूदशाह पहला सुल्तान था, जिसके सिक्कों पर खलीफा अलमुस्तसिम का नाम अंकित है। यही नाम सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद (1246-1266) ई० सुल्तान बलबन (1266-1287) ई०, मुइजुद्दीन कैकूबाद (1287-1290) ई० तक सिक्कों पर अंकित मिलता था।⁴

वास्तव में बलबन अपने को अफरासियाब का वंशज कहकर अन्य तुर्कों से श्रेष्ठ मानता था। अपनी दैव्य शक्ति और कठोर निरंकुशता को स्थापित करने के लिए वह खलीफा के नाम का उपयोग आवश्यक समझता था। जलालुद्दीन खल्जी (1290-1296) ई० के शासनकाल में खलीफा से संबंध बना रहा। खलीफा अल-मुस्तासिक का नाम 1296 ई० तक दिल्ली सुल्तानों की मुद्राओं पर अंकित होता रहा।⁵

सुल्तान अलाउद्दीन खल्जी (1296-1316) ई० की मुद्राओं पर 'सिकंदर उसमानी, याकिन उल-खिलाफत, नासिर अमिरुल मुमिनेव आदि अंकित मिलता है। अब सुल्तानों की यह उपाधियाँ परंपरागत बन चुकी थी। परंपरा के अनुसार उसके सिक्कों पर भी अब्बासी खलीफा के नाम अंकित मिलते हैं, परंतु उसने इसे कोई राजनीतिक महत्त्व नहीं दिया था।⁶

कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खल्जी (1316-1320) ई० की आरंभिक मुद्राओं पर परंपरागत उपाधियाँ अंकित मिलती हैं। परंतु बाद में उसने अपने पूर्व सुल्तानों की अपेक्षा बड़ी-बड़ी उपाधियाँ धारण कर अपने को स्व खलीफा घोषित कर दिया, इसलिए उसकी मुद्राओं पर खिलाफत उल्लाह अमीर उलमुमिनिन तथा इमाम-उल-आजम आदि नाम अंकित मिलता है।

प्रो० अशोक के अनुसार—'दिल्ली सुल्तानों में कुतुबुद्दीन मुबारकशाह प्रथम सुल्तान था। जिसने अपने को खलीफा घोषित किया था। उसने अपनी राजधानी का नाम 'दारूल खिलाफत' भी रखा था।'

यदि सल्तनतकालीन भारतीय मुसलमान खलीफा को अपना धार्मिक नेता मानते होते तो कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खल्जी द्वारा स्वयं को खलीफा घोषित करने पर तत्कालीन उलेमाओं ने अवश्य विरोध किया होता। मुहम्मद बिन तुगलक ने कुतुबुद्दीन मुबारक शाह खल्जी के मकबरे को चूमकर उसे धार्मिक सम्मान प्रदान किया था। उसकी देखभाल के लिए इब्नबतूता को प्रबंध नियुक्त कर उसके व्यय के लिए समुचित अनुदान दिए थे।⁷

फिरोजशाह तुगलक ने अपनी आत्मकथा फुतूहात-ए-फिरोजशाही में लिखा है कि उसने कुतुबुद्दीन मुबारकशाह खल्जी के मकबरे का जीर्णोद्धार करवाया।

दिल्ली सुल्तानों एवं खलीफाओं के संबंधों में एक नया मोड़ उस समय आया, जब सुल्तान मुहम्मद-बिन-तुगलक का राज्यारोहण हुआ। अपने सफलता के युग में (1325-1335) सुल्तान मुहम्मद ने अपनी मुद्राओं पर बगदाद के मृत अब्बासी खलीफा अलमुससीब का नाम अंकित नहीं कराया। वरन् प्रथम चार खलीफाओं के नाम लिखवाकर उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की।

उसके शासन के दूसरे चरण में 1335 के बाद निरंतर विद्रोह और विरोध के कारण उसके पूरे साम्राज्य में अशांति फैल गई। इसमें प्रांतपतियों के विद्रोह तथा उलेमाओं और काजियों का विरोध सम्मिलित था, क्योंकि शासन का अस्तित्व स्वेच्छाचारिता पूर्व केंद्रीयकरण तथा उलेमाओं के प्रति कठोरनीति के कारण साम्राज्य के सभी कट्टर पद के मुसलमान उसके विरोधी हो गए और उसके सुन्नी विरोधी होने के मिथ्या प्रचार करने लगे। जिससे सुल्तान को अपनी नीति में परिवर्तन करना पड़ा।⁸

सुल्तान ने कट्टरपंथियों को शांत करने के लिए ईद तथा शुक्रवार के नमाज पर लगे प्रतिबंध हटाकर इस दिशा में पहल की। तत्पश्चात् अब्बासी खलीफा अल मुस्काकील का नाम मुद्राओं पर अंकित करवाया तथा उसके नाम का खुतबा भी पढ़वाना आरंभ किया। इन कार्यों के द्वारा उसने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि कट्टर मुसलमानों द्वारा चलाए जा रहे उसके विरुद्ध सभी प्रचार पूर्णतया निराधार हैं और वास्वत में वही सुन्नी मुसलमानों का रक्षक व कट्टर समर्थक है। उसने मिश्र में अब्बासी खलीफा से आज्ञा-पत्र प्राप्त किया। फलस्वरूप 1343 ई० में मिश्र के खलीफा का आज्ञा-पत्र तथा सुल्तान के नाम पर एक खिल्लत दिल्ली आया। बरनी के अनुसार सुल्तान ने उसका भव्य स्वागत किया और बहुमूल्य उपहार भेंट किए। उसने रजन बुरकई द्वारा बहुमूल्य जवाहरात और उपहार खलीफा की सेवा में मिश्र भेजा।

वास्तव में सुल्तान का ये व्यवहार पूर्णतया राजनैतिक था। वह अब्बासी खलीफाओं के प्रति सम्मान प्रकट कर कट्टरपंथी उलेमाओं का मुँह बंद करना चाहता था, परंतु उसे अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली।⁹

मुहम्मद-बिन-तुगलक का उत्तराधिकारी सुल्तान फिरोजशाह तुगलक एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसने उलेमाओं तथा काजियों आदि कट्टरपंथी मुसलमानों से समझौता कर लिया था। उसने खलीफाओं से पूर्वत संबंध बनाए रखा। उसने अपने को खलीफा का नायक कहा। काहिरा के अब्बासी खलीफा ने 1355 ई० में दो बार सुल्तान फिरोजशाह को प्रमाणपत्र और खिल्लत भेजा था। उसकी मुद्राओं पर खलीफा अलह की अलमुताजिद (अलट की 1340 से 1353), (अलमुताजिद 1353-1361) तथा अलमुतावक्किल (1321-1383) के नाम अंकित मिलते हैं। अलमुतावक्किल का नाम उसके उत्तराधिकारियों की मुद्राओं पर अंकित होता रहा।¹⁰

लोदी सुल्तानों ने खलीफाओं के अस्तित्व को नहीं स्वीकारा और उन्होंने आपको स्वयं खलीफा के रूप में प्रस्तुत किया। सिकंदर शाह का वजीर मियांमूआ ने उसे खलीफा-ख-ए-पियून के नाम से संबोधित किया तथा उसकी मुद्राओं पर अमीर-अल-मुनिनिन तथा खलीफा की उपाधियाँ अंकित हैं।¹¹

सुल्तान इब्राहिम लोदी इसमें सबसे आगे था, क्योंकि उसके अमीर खुदाबंद-ए-अलम कहकर संबोधित करते थे। इस उपाधि से ये पता चलता है कि सुल्तान अब्बासी खलीफा के प्रति नहीं, वरन् सीधे ईश्वर के प्रति उत्तरदाई है जो उसके शक्ति का स्रोत था। यद्यपि खिलजी तथा तुगलक सुल्तानों की परंपरा के निर्वाह में लोदी सुल्तान सिकंदर शाह तथा इब्राहिम लोदी की कुछ मुद्राओं पर नायब-ए-अमीर-अलमुमीनी लिखा हुआ भी मिलता है।¹²

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि दिल्ली सल्तनत के केवल सुन्नी तुर्क सुल्तान ही ऐसे थे, जिन्होंने अब्बासी खलीफाओं के साथ अपने संबंधों को जोड़ा था। ये खलीफा के प्रति उसकी अधीनता नहीं, वरन् सुन्नी मुसलमानों में एकता स्थापित करने का एक प्रयास था। यद्यपि इस समय तक अब्बासी खलीफाओं की शक्ति क्षीण हो चुकी थी, परंतु दिल्ली के तुर्क सुल्तान सुन्नी मुसलमानों में अपनी धाक जमाने के लिए मृतप्राय अब्बासी खलीफाओं से वैधानिकता की स्वीकृति प्राप्त कर न केवल सुन्नी मुसलमानों को एक झंडे के नीचे एकत्र कर रहे थे। वरन् तुर्कों के गौरवशाली अतीत के इतिहास की सुरक्षा भी कर रहे थे।

संदर्भ

1. दास, पुरी चोपड़ा, भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पृ० 40-45
2. आर०पी० त्रिपाठी, सम अस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० 35
3. हबीबुल्ला, भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद, पृ० 55-65
4. प्रो० राधेश्याम, मध्यमालीन प्रशासन समाज और संस्कृति, पृ० 140-145
5. अवधबिहारी पांडेय, मध्यकालीन भारत, पृ० 40
6. लईक अहमद, भारतीय मध्यकालीन संस्कृति, पृ० 86-90
7. डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ० 156
8. तुगलक कालीन भारत, भाग 1, पृ० 50
9. डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारत संस्कृति, पृ० 92
10. शम्स अफीक, तारीख-ए-फिरोजशाही, पृ० 100-110
11. नजामी के०ए०, दिल्ली सल्तनत भाग 1, पृ० 35-40
12. हरीशचंद्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, भाग-1, पृ० 75-80

गांधीवाद के प्रमुख जीवनसूत्र

स्मृति उपाध्याय (शोध-छात्रा)

पू०वि०वि० जौनपुर

महात्मागांधी जी के नेतृत्व में ही भारत में नवजागरण की नई मशाल और प्रकाश का मार्ग प्रशस्त हुआ। उन्होंने घृणा और द्वेष की तथा शोषण हिंसा की राजनीति को प्रेम, सद्भाव, स्नेह, सहयोग, सत्य और अहिंसा की राजनीति बना दिया। देश में अँग्रेजों के विरुद्ध जंग छेड़ने का उनका एक अभिनव तरीका था। उन्होंने असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन तथा सत्याग्रह द्वारा अपने राजनीतिक तथ्य को कार्य-रूप में परिणत किया। गांधी जी के विचारों तथा कार्यों का राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय जीवन प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। गांधीजी विश्वबंधुत्व तथा अंतर्राष्ट्रीयता के पैगंबर थे।

उनकी चिंतनधारा में जीवनसूत्रों को विभिन्न उपशीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है—इनमें धर्म, धर्म-मार्ग, समाज, सत्याग्रह, स्वराज्य, वाणिज्य, उद्योग, गोपालन, खादी, स्वच्छता और आरोग्य, शिक्षा, साहित्य और कला, लोकसेवा एवं संस्थाएँ इत्यादि बिंदुओं को विशेष रूप से उल्लेखित किया जा सकता है।

धर्मसूत्र के अंतर्गत परमेश्वर, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, आस्वादन, अस्तेय, अपरिग्रह, शरीर श्रम, स्वेदशी, अभय, नम्रता, ब्रत-प्रतिज्ञा, उपासना-प्रार्थना एवं ब्रतों की साधना आते हैं।

धर्म-मार्ग खंड के अंतर्गत सर्वधर्म समभाव, धर्म और अधर्म सत्याग्रह, हिंदूधर्म, गीता, रामायण आदि मार्ग विवेचित किए जा सकते हैं। इस रीति से विचार करनेवाला किसी धर्म में सत्य का सर्वथा अभाव नहीं देखता। वैसे ही किसी धर्म को संपूर्ण सत्य के रूप में नहीं स्वीकार करता। वह सभी धर्मों में परिवर्तन और विकास की गुंजाइश देखेगा। उसे दिखाई देगा कि विवेकपूर्ण अनुकरण करने पर प्रत्येक धर्म उस प्रजा का कल्याण साधन कर सकता है और जिसमें व्याकुलता है उसे सत्य की झाँकी करने तथा शांति और समाधान कराने में समर्थ है।

तीसरा खंड—समाजखंड है। सामाजिक व्यवस्था में इस सूत्र का विशेष महत्त्व है। इसके अंतर्गत वर्णाश्रम व्यवस्था, वर्ण-धर्म व्यवस्था, आश्रम पद्धति, स्त्री जाति, अस्पृश्यता, खाद्य-अखाद्य विवेक, विवाह व्यवस्था संतति नियमन, पति-पत्नी में ब्रह्मचर्य, विधवा विवाह, वर्णांतर विवाह आदि बिंदु विचारणीय हैं। उदाहरण के लिए वर्ण धर्म का आज लोप हो गया है। कितने ही लोग अपने ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य बताते हैं, पर अपने को शूद्र कहते हुए सभी लजाते हैं। इस प्रकार वास्तव में वर्ण नाम को रह गया है। फिर भी वास्तव में यदि हम वर्ण संज्ञा रख सकते हों, तो हम सब शूद्र ही कहे जाएँगे। सच पूछिए, तो हम अपने-आपको शूद्र भी नहीं कह सकते, क्योंकि शूद्र वर्ण भी धर्म है अर्थात् स्वेच्छा से स्वीकार करने की वस्तु है और उसमें लज्जा का स्थान

नहीं हो सकता।² यह एक सामाजिक व्यवस्था है जिसको हमें स्वीकार करना चाहिए।

चौथा जीवनसूत्र सत्याग्रह है, जिसमें सत्याग्रही का कर्तव्य, सत्याग्रही की मर्यादा, सत्याग्रह का बुनियादी सिद्धांत, सत्याग्रह के सामान्य लक्षण, सत्याग्रह के अवसर, सत्याग्रह के प्रकार, उपवास, असहयोग, सविनय अवज्ञा, सत्याग्रही का अदालत में व्यवहार, सत्याग्रही का जेल में व्यवहार, सत्याग्रही की नियमावली, सत्याग्रही की योग्यता तथा सामुदायिक सत्याग्रह आदि को विवेचित किया जाता है। गांधी जी का मानना है कि कैद हो जाने पर सत्याग्रही जेल के उन तमाम नियमों का पालन करेगा जो आत्मसम्मान के विरुद्ध न हों और अधिकारियों के साथ शिष्टता से व्यवहार करेगा। अधिकारियों को वह साधारणतः नमस्कार करेगा, पर वे नाक रगड़ने को कहेंगे तो न रगड़ेगा।³

पाँचवाँ सूत्र स्वराज्य का है जिसके अंतर्गत रामराज्य, व्यवस्था सुधार एवं विधान सुधार, सांप्रदायिक एकता, अँग्रेजों के साथ संबंध, देशी राज्य, देश की रक्षा आदि बातें देखी जाती हैं। इसीलिए गांधीजी का मानना है कि पुरुषार्थी और स्वतंत्र प्रजा के शिक्षित लोकमत में कितना अधिक बल होता है, सामाजिक व्यवहार में हमें इसका अनुभव होते हुए भी आज हम इसे भूल गए हैं। पशुबल पर टिकी हुई सत्ताएँ भी अभी तक अपने पशुबल का सहारा ले सकती हैं जब तक कि लोकमत प्रबल न हो। जहाँ लोकमत का जबर्दस्त प्रवाह है, वहाँ बड़ी से बड़ी सल्तनत का भी झुके बिना काम नहीं चलता।⁴

छठे जीवनसूत्र के अंतर्गत वाणिज्य विषयक स्थितियाँ आती हैं जिसमें भारतीय अर्थशास्त्र, पश्चिमी अर्थशास्त्र, ग्रामदृष्टि, धनेच्छा, व्यापार, साहूकारी, पूरी मजदूरी, मजदूर के प्रश्न, स्वालंबन और श्रम विभाग, राजनीतिक स्वदेशी, यांत्रिक साधन, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार आदि विषयों को समाहित किया जा सकता है। उनका मानना है कि जब अर्थशास्त्र एवं जीवन में ग्रामदृष्टि का प्रवेश होगा तब देहात की बनी चीजों का अधिकाधिक उपयोग करने की ओर जनता का मन झुकेगा। अपने जीवन की आवश्यक वस्तुएँ देहात में तैयार करने हेतु उनका झुकाव होगा। इसके फलस्वरूप देहात की कला और औजारों को सुधारने की, देहाती जंगल और खेतों की पैदावार तथा उपयोग करने के ज्ञान के अभाव में देहातों में बेकार चले जाने वाले संपत्ति के अनेक प्राकृतिक साधनों की जाँच-पड़ताल करने की प्रवृत्ति पैदा होगी।

गांधीवाद का सातवाँ जीवनसूत्र उद्योग है। जिसके अंतर्गत खेती-बाड़ी, सहायक उद्योग, शत-प्रतिशत स्वदेशी, विशेष उद्योग, हानिकारक उद्योग, उपयोगी धंधे, ललित कलाओं आदि का अध्ययन किया जा सकता है। इसके लिए गांधीजी ने स्वदेशी आंदोलन पर जोर दिया है। उनके अनुसार जिनके लिए आज स्वदेशी आंदोलन की आवश्यकता है, उनमें ग्राम उद्योग का संरक्षण प्रधान है, अर्थात् खादी, गुड़, देहाती शक्कर, हाथ कुटा चावल, देहाती कागज, बैल के कोल्हू का तेल, देहाती मसाले, रीठा, सिक्का, दतौन, देहाती झाड़ू, चटाई, टोकरियाँ, रस्सी, जाजिम, चमड़े की चीजें आदि देहात के सैकड़ों उद्योग जो प्रोत्साहन के अभाव में मर गए या मृतवत् जीवित हैं उनका संजीवन करने की आवश्यकता है।⁵

गांधीजी के आठवें जीवनसूत्र में गोपालन को रखा जाएगा। उन्होंने गोसेवा को धार्मिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण माना है। इसके अतिरिक्त अन्य प्राणियों का पालन करना, प्राणियों के प्रति क्रूरता से परहेज करना, गोवध करना तथा मरे हुए प्राणी के शरीर का भी सदुपयोग करना आदि

बातों का अध्ययन इस खंड में किया जा सकता है।

नवें जीवनसूत्र में खादी का विवेचन किया जा सकता है। इसके अंतर्गत चरखे के गुण, चरखे के संबंध में विशेष ध्यान, खादी और मिल का कपड़ा, चरखा और हाथ करघा, खादी उत्पादन की क्रियाएँ, स्वावलंबी और व्यापारी खादी, यज्ञार्थ कताई, खादी के कार्य आदि बातों को विवेचित किया जा सकता है। खादी और मिल के कपड़े के संबंध में उनका अभिमत है कि व्यक्तिगत नहीं बल्कि राष्ट्रीय अर्थशास्त्र की दृष्टि से विचार करें तो किसी भी वस्तु की लागत कीमत आँकने में सिर्फ उसके उत्पादक के माल, पूँजी और मजदूरी में लगे हुए खर्च का ही विचार नहीं करना चाहिए, बल्कि इस रीति से वह चीज बनाने से अगर बेकारों की तादाद बढ़ती है तो उन बेकारों के खाना-खुराक का खर्च जनता के सिर पड़ता है इसलिए उस खर्च को भी इस वस्तु की तैयारी पर पड़ा समझना चाहिए। इस दृष्टि से देखने पर खादी की अपेक्षा मिलें देश को महँगी पड़ती जान पड़ेगी।⁶

गांधीजी के दसवें जीवनसूत्र में स्वच्छता और आरोग्य को रखा जा सकता है। इस बिंदु में शारीरिक स्वच्छता, मानसिक स्वच्छता, साफ-सुथरी आदतें, बाह्य स्वच्छता, शौच, जलाशय, रोग, इलाज, आहार, व्यायाम आदि विषयों को समाहित करते हुए जीवन को उपयोगी बनाया जा सकता है। व्यायाम के संबंध में उनका मानना है कि सात्विक कसरतों में शरीर की तंदुरुस्ती के लिए महत्त्व की कसरत 'चलना' है। यह जो व्यायामों का राजा कहा गया है, यह यथार्थ है। इसके बाद आसन और प्राणायाम सात्विक व्यायाम माने जा सकते हैं, क्योंकि इन व्यायामों का प्रधान उद्देश्य शरीर को भोगी नहीं, बल्कि शुद्ध बनाना है। इनसे कितनी ही बीमारियाँ भी दूर होती हैं।⁷

गांधी जी चिंतनधारा के ग्यारहवें जीवनसूत्र में शिक्षा के विविध आयामों की चर्चा होती है जिसमें शिक्षा का ध्येय, अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा, अराष्ट्रीय शिक्षा, औद्योगिक शिक्षा, बालशिक्षा, ग्रामवासी शिक्षा, स्त्रीशिक्षा, धार्मिक शिक्षा, भाषाज्ञान, राष्ट्रभाषा, अँग्रेजी भाषा, इतिहास, शिक्षा के अन्य विषय शिक्षक-शिक्षार्थी, शिक्षालय, शिक्षा का खर्च इत्यादि बातें समाहित होती हैं। इसके संबंध में गांधीजी ने काल-क्रमानुसार बच्चों को शिक्षा देने की तथा शिक्षकों से संबंधित आचार के विषय में कहा है कि अक्षरज्ञान को लेखन करने का विभाग मानकर पहले बच्चों को रेखागणित की आकृतियाँ बनाना सिखाना चाहिए और जब अंगुलियों पर उसका काबू हो जा, तब उसे अक्षर उरेहना चाहिए अर्थात् उसे पहले से ही शुद्ध अक्षर लिखना सिखाना चाहिए। सोलह वर्ष की उम्र तक बालक-बालिका को दुनिया के इतिहास, भूगोल और वनस्पति शास्त्र, खगोल, गणित, भूमिति और बीजगणित का सामान्य ज्ञान हो जाना चाहिए।⁸

शिक्षकों की तनख्वाह मोटी नहीं हो सकती, पर उन्हें पेट भरने का पैसा मिलना चाहिए। उसमें सेवानिवृत्ति होनी चाहिए। प्राथमिक शिक्षा के लिए चाहे जैसे शिक्षक से काम चला लेने का रिवाज निंद्य है शिक्षक मात्र को चरित्रवान होना चाहिए। शिक्षक के लिए बड़े और खर्चीले मकानों की जरूरत नहीं है। अँग्रेजी की पढ़ाई एक भाषा के रूप में होनी चाहिए और उसे शिक्षण क्रम में स्थान मिलना चाहिए। हिंदी जैसे राष्ट्रभाषा है वैसे अँग्रेजी का उपयोग परराष्ट्रों के साथ व्यवहार तथा व्यापार करने के लिए है।⁹

जीवनसूत्रों के क्रम में गांधीवाद का बारहवाँ सूत्रसाहित्य और कला विषयक है जिसमें साधारण टीका, साहित्य की शैली, अनुवाद, वर्णविन्यास, अखवार, कला इत्यादि विषयों का

अध्ययन किया जाता है। जीवन सूत्रों का तेरहवाँ भाग लोकसेवा है जिसमें लोकसेवक के सामान्य लक्षण, ग्रामसेवक कर्तव्य आदि को विवेचित किया जाता है। इस संबंध में वे मानते हैं कि निःस्वार्थ, नम्र, सच्चा व चरित्रवान लोक-सेवक लोकप्रिय न हो गया हो ऐसा नहीं देखा गया है। उलटा यह अनुभव है कि जिस पर विश्वास जम गया हो, वह लोक-सेवक अपने कार्य-प्रदेश में लगभग सर्वाधिकारी बन जाता है और जनता उसकी बात मुँह से निकली नहीं कि मान लेती है। वह किसी की अप्रीति या ईर्ष्या का पात्र नहीं होता, न किसी को कष्ट देने वाला मालूम होता है।¹⁰

ग्रामसेवकों के संबंध में वे कहते हैं कि ग्रामसेवक कम-से-कम एक बार ऐसे समय, जो ग्रामवासियों के अनुकूल हो, उन्हें एकत्र करके सामूहिक प्रार्थना करे। वह लोगों को समझ में आने योग्य भाषा में होनी चाहिए। ग्राम-सेवक को संगीत का ठीक ज्ञान होना वांछनीय है। यदि उसे गाना न आता हो, तो गाँव के लोगों से गा सकने वाला भजन, धुन, वगैरा गवाये तथा दूसरों को भी उसमें शामिल करें। अधिकांश गाँवों में भजन-मंडलियाँ होती हैं, उन्हें नए और अच्छे भजन सिखाकर प्रार्थना में उनका उपयोग करना चाहिए।¹¹

गांधीजी के द्वारा प्रतिपादित जीवनसूत्रों के अंतिम एवं चौदहवें सूत्र में संस्थाएँ आती हैं। इसके अंतर्गत उन्होंने संस्था की सफलता, संस्था का संचालन, संस्था का आर्थिक व्यवहार, संस्था के सदस्यों में सभ्यता आदि बिंदुओं पर विचार किया है। वे मानते हैं कि किसी संस्था की सफलता के लिए जिन बातों पर विशेष बल दिया जाना चाहिए वे हैं—संस्था के उद्देश्य के प्रति अत्यंत वफादारी भरी निष्ठा और उसकी सिद्धि के लिए उत्साह होना। संस्था के नियमों का स्थूल पालन ही नहीं, बल्कि उसके भाव का पालन होना, संस्था के संचालक, सम्य सेवक आदि कार्यकर्ताओं में भ्रातृभाव और एकमत्य होना।¹²

इस प्रकार हम देखते हैं कि गांधीवाद के अंतर्गत जितने भी जीवन-सूत्र प्राप्त होते हैं, वे गांधी जी के ही नहीं, अपितु संपूर्ण समाज के सर्वथा उपादेय बने हुए हैं। गांधी जी ने इन सूत्रों के माध्यम से भारत ही नहीं, अपितु संपूर्ण विश्व की मानवता को ऐसा संदेश दिया है। जिसका अनुपालन करके कोई भी समाज पथभ्रष्ट नहीं हो सकता।

वस्तुतः महात्मा गांधी की जीवन-पद्धति ने उनके विचारों के साथ उनके महापुरुषत्व को भी प्रकाशित किया है। समाज में व्याप्त दुराचार एवं अत्याचार से उत्पन्न अंधकार को समाप्त करने के लिए ऐसे महापुरुष जन्म लेते रहे हैं, जिन्होंने ज्योतिपुंज बनकर सब ओर अपने प्रखर प्रकाश व प्रसार किया है। ऐसी महान आत्माएँ अपनी साधना एवं तपोबल से युग की धारा के प्रवाह को भी नवीन दिशा प्रदान करते रहें हैं। ऐसे ही पुरुषों में महात्मा गांधी भी थे।

गांधीजी का चिंतन रूढ़िवादी धारा से मुक्त था। उन्होंने अहिंसा को परम सत्य के रूप में स्वीकार किया। समाज में सत्य और अहिंसा की सार्वभौमिकता बताते हुए इसे अपनाते का आग्रह किया। यह आग्रह मात्र आग्रह नहीं था, अपितु अहिंसा के सिपाही का आत्मालोचन था। उन्होंने जो कहा, वही किया। जो किया, उसे अपनाने का आग्रह भी सबके समक्ष रखा। उनके संबंध में इतना कहना युक्तिसंगत लगता है कि गांधी केवल अहिंसा के ही मुखर हस्ताक्षर का नाम नहीं है, बल्कि सत्य और प्रेम की संयुक्त भावना का युगबोध भी है।

गांधीजी के सिद्धांतों में अस्तेय और अपरिग्रह प्राणतत्त्व है। इसमें उनके रामराज्य का

आदर्श प्रतिबिंबित होता है। गति विराम नहीं गति है, विवशता नहीं आकुलता है। भाव नहीं भावना है, मौन नहीं गुंजन है, शून्य नहीं विराट है। जीवनपर्यंत वे विभिन्न राजनीतिक आंदोलन संचालित करते रहे। देश की स्वाधीनता के लिए उन्होंने संप्रदाय व जातिगत रेखाओं को तोड़कर एक बनने और नेक बनने का आह्वान किया।

उपलब्धियों के रूप में संपूर्ण देश गांधी का देश है। व्यावहारिक आदर्शवादी के उपनामों से अलंकृत गांधीजी का संपूर्ण परिवेश रामराज्य की रचना में ही निकल गया। सामाजिक जीवन में व्याप्त असमानताओं तथा आर्थिक शोषण से मुक्ति के लिए गांधीजी पूरी तरह समर्पित रहे। समानता, शोषण, मुक्ति, ग्रामोदय, स्वराज्य, सांप्रदायिक सौहार्द्र, हरिजन उत्थान, नारी-उद्धार आदि भावनाओं से युक्त होने पर ही गांधी जी 'महात्मा' संज्ञा से विभूषित किए गए। उनके यही आदर्शात्मक सूत्र सच्चे जीवन-सूत्र कहे जा सकते हैं।

संदर्भ

1. गांधी विचार दोहन, किशोरलाल घ० मशरूवाला, पृ० 30
2. वही, पृ० 37-38
3. वही, पृ० 64
4. वही, पृ० 76
5. वही, पृ० 97
6. वही, पृ० 110-11
7. वही पृ० 131
8. वही, पृ० 147
9. वही, पृ० 147
10. वही, पृ० 156
11. वही, पृ० 159
12. वही, पृ० 161

शोध दिशा

के आजीवन सदस्य बनकर
शोध और साहित्य के क्षेत्र में
अपना अमूल्य सहयोग दीजिए।
आजीवन सदस्यों को पत्रिका
के पहले छपे अंक बिना मूल्य
भेंट किए जाते हैं।

पुत्री डी०एन० उपाध्याय
3, नारायण कॉलोनी ज्ञानपुर,
स०र०न० भदोही 221304

हिंदी साहित्य निकेतन

महत्त्वपूर्ण कोश एवं संदर्भ ग्रंथ

● निश्तर खानकाही एवं डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल गज़ल और उसका व्याकरण	250.00
● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ० मीना अग्रवाल हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश : भाग-1	495.00
हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश : भाग-2	700.00
हिंदी तुलनात्मक शोधसंदर्भ	995.00
शोधसंदर्भ-भाग-1	500.00
शोधसंदर्भ-भाग-2	550.00
शोधसंदर्भ-भाग-3	525.00
शोधसंदर्भ-भाग-4	595.00
शोधसंदर्भ-भाग-5	895.00
हिंदी तुर्कात कोश	300.00
शोध अंक भाग-1	100.00
शोध अंक भाग-2	100.00
शोध अंक भाग-3	100.00
शोध अंक भाग-4	100.00
शोध अंक भाग-5	100.00
शोध अंक भाग-6	100.00
शोध अंक भाग-7	100.00
शोध अंक भाग-8	100.00
शोध अंक भाग-9	100.00
शोध अंक भाग-10	100.00
शोध अंक भाग-11	100.00
शोध अंक भाग-12	100.00
शोध अंक भाग-13	100.00
शोध अंक भाग-14	100.00
शोध अंक भाग-15	100.00
शोध अंक भाग-16	100.00
शोध अंक भाग-17	150.00
शोध अंक भाग-18	200.00

शोध अंक भाग-19	200.00
शोध अंक भाग-20	200.00
शोध अंक भाग-21	200.00
शोध अंक भाग-22	200.00
शोध अंक भाग-23	200.00
शोध अंक भाग-24	200.00

समीक्षा एवं समालोचना

सवाल साहित्य के • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
हिंदी सिनेमा और दांपत्य संबंध • डॉ० चंद्रकांत मिसाल	500.00
सिनेमा और साहित्य का अंतःसंबंध • डॉ० चंद्रकांत मिसाल	200.00
डॉ० कुँअर बेचैन के साहित्य में प्रतीक विधान • डॉ० अंजु भटनागर	500.00
मृदुला गर्ग कृत अनित्य : इतिहास और आख्यान का संबंध • डॉ० ज्योति सिंह	150.00
मृदुला गर्ग और नारी-अस्मिता का प्रश्न • डॉ० ज्योति सिंह	300.00
काका हाथरसी : एक समीक्षा-यात्रा • डॉ० मिथिलेश माहेश्वरी	300.00
सांप्रदायिकता और हिंदी कथासाहित्य • डॉ० मनोजकुमार	250.00
अपनी कविताओं में अशोक चक्रधर • डॉ० दीपा के०	250.00
आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य में संगीत (पुरस्कृत) • डॉ० मीना अग्रवाल	450.00
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल : व्यक्ति और साहित्य • डॉ० हरीशकुमार सिंह	350.00
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल का व्यंग्य-साहित्य : कथ्य एवं भाषा • डॉ० वी० जयलक्ष्मी	450.00
साठोत्तरी हिंदी-गज़ल : डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल का योगदान • डॉ० अनिलकुमार शर्मा	350.00
एक साक्षात्कार : पं० अमृतलाल नागर के साथ • डॉ० शंकर क्षेम	150.00
गज़ल : सौंदर्य और यथार्थ • अनिरुद्ध सिन्हा	150.00
समय के हस्ताक्षर (हिंदी के आधुनिक कवि) • डॉ० ज्योति व्यास	150.00
कालिदास के साहित्य में भौगोलिक तत्त्व • डॉ० लालबहादुर रावल	300.00
जनपद बिजनौर के आधुनिककालीन साहित्यकार • डॉ० अशोककुमार	350.00
बिजनौर क्षेत्र की ग्रामोद्योग-संबंधी शब्दावली का अध्ययन • डॉ० ओमदत्त आर्य	500.00
आस्थावाद एवं अन्य निबंध • डॉ० मिथिलेश दीक्षित	300.00
साहित्य और संस्कृति • डॉ० मिथिलेश दीक्षित	300.00
हिंदी व्यंग्य-निबंध : स्वतंत्रता के बाद • डॉ० आशा रावत	350.00
आज़ादी के बाद का हिंदी गद्य व्यंग्य • डॉ० प्रेम जनमेजय	500.00
हिंदी बालकाव्य के विविध पक्ष • विनोदचंद्र पांडेय	300.00
हिंदी बालसाहित्य : डॉ० सुरेंद्र विक्रम का योगदान • डॉ० स्वाति शर्मा	450.00

वादविवाद प्रतियोगिता : पक्ष और विपक्ष • डॉ० गिरिराजशरण, डॉ० मीना अग्रवाल	200.00
फिजी में प्रवासी भारतीय • डॉ० शुचि गुप्ता	300.00
मुक्तिबोध का रचना-संसार • डॉ० शिवशंकर लधवे	200.00
भीष्म साहनी का कथासाहित्य : सांप्रदायिक सद्भाव • डॉ० पी०आर० वासुदेवन	300.00
हिंदी ब्लॉगिंग : अभिव्यक्ति की नई क्रांति • अविनाश वाचस्पति, रवींद्र प्रभात	495.00
हिंदी ब्लॉगिंग का इतिहास • रवींद्र प्रभात	300.00
साठोत्तरी हिंदी रेखाचित्र : शैलीवैज्ञानिक अध्ययन • डॉ० मीनल रश्मि	250.00
सिनेमा, साहित्य और संस्कृति • नवलकिशोर शर्मा	150.00
हिंदी सिनेमा में दांपत्य-संबंध • डॉ० चंद्रकांत मिसाल	450.00
डॉ० महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (गीत खंड) • डॉ० आदित्य प्रचण्डिया	700.00
डॉ० महेंद्र सागर प्रचण्डिया समग्र (दोहा खंड) • डॉ० आदित्य प्रचण्डिया	700.00
अमरकांत का कथासाहित्य • डॉ० योगेश पाटिल	450.00
नारी-समस्याओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन • डॉ० अनुभूति भटनागर	450.00
हास्य-व्यंग्य	
मेरी हास्य-व्यंग्य कविताएँ • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
मेरे इक्यावन व्यंग्य • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	300.00
चुनी हुई हास्य कविताएँ • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	250.00
मंचीय व्यंग्य एकांकी • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
बाबू झोलानाथ • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	60.00
राजनीति में गिरगिटवाद • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	100.00
आदमी और कुत्ते की नाक • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
आओ भ्रष्टाचार करें • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
भज्जी का जूता • महेशचंद्र द्विवेदी	150.00
क्लियर फंडा • महेशचंद्र द्विवेदी	120.00
प्रिय-अप्रिय प्रशासकीय प्रसंग • महेशचंद्र द्विवेदी	170.00
काका की विशिष्ट रचनाएँ • काका हाथरसी	300.00
काका के व्यंग्य-बाण • काका हाथरसी	200.00
कक्के के छक्के • काका हाथरसी	200.00
लूटनीति मंथन करी • काका हाथरसी	200.00
खिलखिलाहट • काका हाथरसी	200.00
वसीयतनामा • पं० सूर्यनारायण व्यास, सं० राजशेखर व्यास	150.00
पैसे कहाँ से दें • डॉ० आशा रावत	200.00
चाहिए एक और भगतसिंह • डॉ० आशा रावत	100.00
नमस्कार प्रजातंत्र • महेश राजा	150.00

ए जी सुनिए ● अशोक चक्रधर	100.00
इसलिए बौद्धम जी इसलिए ● अशोक चक्रधर	100.00
चुटपुटकुले ● अशोक चक्रधर	60.00
तमाशा ● अशोक चक्रधर	60.00
सो तो है ● अशोक चक्रधर	60.00
हँसो और मर जाओ ● अशोक चक्रधर	60.00
नमस्ते जी ● डॉ० बलजीत सिंह	150.00
अब हँसने की बारी है ● डॉ० बलजीत सिंह	200.00
अजगर करे न चाकरी ● बाबूसिंह चौहान	200.00
दूध का धुला लोकतंत्र ● गोपाल चतुर्वेदी	150.00
सच का सामना ● हरीशकुमार सिंह	150.00
● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	
1995 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	65.00
1996 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1997 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1998 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	100.00
1999 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	120.00
2002 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	150.00
2003 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	150.00
2004 की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ	170.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कहानियाँ	200.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कविताएँ	200.00
पिछले दशक के श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य एकांकी	200.00
शिवशर्मा के चुने हुए व्यंग्य ● डॉ० शिव शर्मा	50.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) ● डॉ० शिव शर्मा	150.00
अपने-अपने भस्मासुर ● डॉ० शिव शर्मा	150.00
प्रतिनिधि व्यंग्य ● दामोदरदत्त दीक्षित	100.00
धमकीबाषी के युग में ● निश्तर खानकाही	60.00
नो टेंशन ● डॉ० सुरेश अवस्थी	170.00
ला खर्चा निकाल ● गजेंद्र तिवारी	200.00
जलनेवाले जला करें ● गजेंद्र तिवारी	60.00
ये है इंडिया ● डॉ० हरीशकुमार सिंह	120.00
आँखों देखा हाल ● डॉ० हरीशकुमार सिंह	150.00
लिफ्ट करा दे ● डॉ० हरीशकुमार सिंह	200.00

देवेन्द्र के कार्टून • देवेन्द्र शर्मा	80.00
कार्टून कौतुक • देवेन्द्र शर्मा	120.00
लिफ़ाफ़े का अर्थशास्त्र • डॉ० पिलकेंद्र अरोरा	120.00
पेट में दाढ़ियाँ हैं • सूर्यकुमार पांडेय	100.00

कहानी

एक सपना मेरा भी था • डॉ० आश रावत	200.00
एक थी माया • विजयकुमार	200.00
सरहदों के पार • सुरेशचंद्र शुक्ल	200.00
छोटे-छोटे सुख • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
कथा जारी है • बाबूसिंह चौहान	150.00
इक्कीस कहानियाँ • सत्यराज	100.00
अंदर धूप बाहर धूप (नारी-मन की कहानियाँ) • डॉ० मीना अग्रवाल	150.00
उत्तराखंड की लोकगाथाएँ • डॉ० दिनेशचंद्र बलूनी	200.00
एक बौना मानव • महेशचंद्र द्विवेदी	100.00
लव जिहाद • महेशचंद्र द्विवेदी	200.00
हैं आस्माँ कई और भी • नीरजा द्विवेदी	200.00
कौन कितना निकट • रेणु 'राजवंशी' गुप्ता	120.00
लघु कथाएँ • डॉ० हरिशरण वर्मा	150.00
कमरा नंबर 103 • सुधा ओम ढींगरा	150.00
इमराना हाज़िर हो • महेशचंद्र द्विवेदी	150.00
कहानियाँ अमेरिका से • सं० इला प्रसाद	150.00
कुत्तेवाले पापा • मीना अग्रवाल	150.00
प्रेमचंद की कालजयी कहानियाँ • सं० डॉ० कमलकिशोर गोयनका	150.00
लघुकथाएँ मानव-जीवन की • सं० सुकेश साहनी, रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु'	150.00

उपन्यास

इतिहास की आवाज़ • राजेन्द्र मिश्र	450.00
अनोखा उपहार • श्रीमती सुषमा अग्रवाल	200.00
आसरा • श्रीमती सुषमा अग्रवाल	100.00
तीन बीघा ज़मीन • श्रीमती सुषमा अग्रवाल	200.00
मन के जीते जीत • श्रीमती सुषमा अग्रवाल	200.00
कालचक्र से परे • श्रीमती नीरजा द्विवेदी	200.00
भीगे पंख • महेशचंद्र द्विवेदी	200.00
मानिला की योगिनी • महेशचंद्र द्विवेदी	200.00
और लहरें उफनती रहीं • डॉ० तारादत्त निर्विरोध	200.00

बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) ● डॉ० शिव शर्मा	150.00
अराज-राज ● डॉ० मोहन गुप्त	200.00
सुराज-राज ● डॉ० मोहन गुप्त	350.00
एक गुमनाम फौजी की डायरी ● डॉ० आशा रावत	150.00
एक चेहरे की कहानी ● डॉ० आशा रावत	150.00
गुरुदक्षिणा (व्यंग्य-उपन्यास) ● डॉ० आशा रावत	100.00
इतिहास की आवाज़ ● डॉ० राजेन्द्र मिश्र	450.00

एकांकी-नाटक

● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	
मंचीय सामाजिक एकांकी	200.00
मंचीय हास्य-व्यंग्य एकांकी	200.00
बच्चों के हास्य नाटक	200.00
बच्चों के रोचक नाटक	200.00
बच्चों के शिक्षाप्रद नाटक	200.00
बच्चों के अनुपम नाटक	200.00
बच्चों के उत्तम नाटक	200.00
भारतीय गौरव के बाल-नाटक	200.00
प्रेमचंद की कहानियों पर आधारित नाटक	200.00
ग्यारह नुक्कड़ नाटक	200.00
नीली आँखें	60.00
बच्चों के अनोखे नाटक ● प्रकाश मनु	200.00
हास्य-व्यंग्य के बाल नाटक ● प्रकाश मनु	200.00
संसार : एक नाट्यशाला ● बाबूसिंह चौहान	150.00
ग्यारह एकांकी ● डॉ० हरिशरण वर्मा	200.00
दमन ● रामाश्रय दीक्षित	100.00
स्वप्न पुरुष ● डॉ० उर्मिला अग्रवाल	150.00
अफलातून की अकादमी ● डॉ० शिव शर्मा	150.00

ललित निबंध एवं रेखाचित्र

कैसे-कैसे लोग मिले ● निशतर खानकाही	125.00
यादों का मधुबन ● कृष्ण राघव	150.00
समय के चाक पर ● डॉ० लालबहादुर रावल	125.00
समय एक नाटक ● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	160.00
दर्पण झूठ बोलता है ● बाबूसिंह चौहान	60.00

मकड़जाल में आदमी • बाबूसिंह चौहान	80.00
उफनती नदियों के सामने • बाबूसिंह चौहान	100.00
पीठ पर नील गगन • बाबूसिंह चौहान	100.00
इन दिनों समर में (प्रकाशनाधीन) • डॉ० कृष्णकुमार रत्नू	250.00
अनुभव के पंख • चंद्रवीरसिंह गहलौत	250.00

गीत-गुज़ल

निश्तर खानकाही समग्र (प्रकाशनाधीन)/ निश्तर खानकाही	500.000
ग़षल मैंने छेड़ी (ग़ज़ल-संग्रह)/ निश्तर खानकाही	80.00
ग़षलों के शहर में (ग़ज़ल-संग्रह)/ निश्तर खानकाही	200.00
मेरे लहू की आग (ग़ज़ल-संग्रह)/ निश्तर खानकाही	150.00
कोई आवाष देता है • डॉ० कुँअर बेचैन	150.00
दिन दिवंगत हुए • डॉ० कुँअर बेचैन	150.00
कुँअर बेचैन के नवगीत • डॉ० कुँअर बेचैन	200.00
कुँअर बेचैन के प्रेमगीत • डॉ० कुँअर बेचैन	150.00
पर्स पर तितली (हाइकु) • डॉ० कुँअर बेचैन	200.00
अक्षर हूँ मैं (कविताएँ) • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
सन्नाटे में गूँज (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
भीतर शोर बहुत है (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
मौसम बदल गया कितना (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
रोशनी बनकर जिओ (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
शिकायत न करो तुम (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
आदमी है कहाँ (ग़ज़ल-संग्रह) • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
प्रतिनिधि ग़ज़लें • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
मातृभूमि के लिए • रमेश पोखरियाल 'निशंक'	200.00
संघर्ष जारी है • रमेश पोखरियाल 'निशंक'	170.00
जीवन-पथ में • रमेश पोखरियाल 'निशंक'	150.00
देश हम जलने न देंगे • रमेश पोखरियाल 'निशंक'	150.00
तुम भी मेरे साथ चलो • रमेश पोखरियाल 'निशंक'	150.00
उजियारा आशाओं का • तारा प्रकाश	150.00
बुलंदी इरादों की • तारा प्रकाश	150.00
चलने से मंषिल मिलती है • तारा प्रकाश	200.00
इंद्रधनुष • तारा प्रकाश	200.00
संवेदनाओं के रंग • तारा प्रकाश	200.00

तारा प्रकाश समग्र • तारा प्रकाश	600.00
शमा हर रंग में जलती है • रामेश्वरप्रसाद	150.00
आदमी के हक में (गज़ल-संग्रह) • रामगोपाल भारतीय	100.00
यहाँ तक वहाँ से (कविताएँ) • रमेश कौशिक	200.00
हास्य नहीं व्यंग्य (कविताएँ) • रमेश कौशिक	150.00
गांधारी का सच (खंडकाव्य) • आर्यभूषण गर्ग	200.00
राधेय (खंडकाव्य) • डॉ० आकुल	120.00
असित चंद्र : अवदात चंद्रिका (काव्य-नाटक) • डॉ० आकुल	120.00
ज़िंदगी गाती तो है/(गज़ल-संग्रह) • डॉ० आकुल	120.00
आसमान मेरा भी है (गज़ल-संग्रह) • किशनस्वरूप	100.00
बूँद-बूँद सागर में (गज़ल-संग्रह) • किशनस्वरूप	100.00
आँचल-आँचल खुशबू (गज़ल-संग्रह) • कर्नल तिलकराज	100.00
ज़ख्म खिलने को हैं (गज़ल-संग्रह) • कर्नल तिलकराज	100.00
हिरना लौट चलें (गीत-संग्रह) • शचींद्र भटनागर	150.00
तिराहे पर (गज़ल-संग्रह) • शचींद्र भटनागर	150.00
ढाई आखर प्रेम के (गीत-संग्रह) • शचींद्र भटनागर	200.00
अखंडित अस्मिता (मुक्तक) • शचींद्र भटनागर	200.00
सुरों के ख़त • अश्विनीकुमार 'विष्णु'	100.00
सुनहरे मंत्र का जादू • अश्विनीकुमार 'विष्णु'	100.00
सुनाते हुए ऋतुगीत • अश्विनीकुमार 'विष्णु'	150.00
सुबह की अंगूठी • अश्विनीकुमार 'विष्णु'	150.00
सफ़र में साथ-साथ (मुक्तक-संग्रह) • डॉ० मीना अग्रवाल	150.00
जो सच कहे (हाइकु-संग्रह) • डॉ० मीना अग्रवाल	150.00
यादें बोलती हैं (कविताएँ) • डॉ० मीना अग्रवाल	200.00
गुलमुहर की छाँव में (गज़ल-संग्रह) • मनोज अबोध	100.00
मेरे भीतर महक रहा है (गज़ल-संग्रह) • मनोज अबोध	150.00
अग्निमुता • राजेंद्र शर्मा	150.00
सीतायनी • डॉ० शंकर क्षेम	150.00
एक मुट्ठी धूप • नीरजा सिंह	100.00
कटे हाथों के हस्ताक्षर • डॉ० कमल मुसद्दी	150.00
फ़ासले मिट जाएँगे (गज़ल-संग्रह) • डॉ० बलजीत सिंह	150.00
शब्द-शब्द संदेश (दोहे) • डॉ० बलजीत सिंह	150.00
जीवन है मुस्कान (दोहे) • डॉ० बलजीत सिंह	150.00
भीतर का संगीत (दोहे) • डॉ० बलजीत सिंह	200.00

सुख के बिरवे रोप (दोहे) ● डॉ० बलजीत सिंह	200.00
इंद्रधनुष के रंग (दोहे) ● डॉ० बलजीत सिंह	200.00
प्यार के गुलाल से (हाइकु) ● डॉ० बलजीत सिंह	200.00
हारना हिम्मत नहीं (मुक्तक) ● डॉ० बलजीत सिंह	200.00
बहती नदी हो जाइए (ग़ज़लें) ● डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	150.00
अँधियारों से लड़ना सीखें (ग़ज़लें) ● डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
जीवन-अमृत : पर्यावरण चेतना (दोहा-संग्रह) ● डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
अक्षर-अक्षर हो अमर (दोहा-संग्रह) ● डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
वैदुष्यमणि विद्योत्तमा (खंडकाव्य) ● डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00
अनजाने आकाश में ● महेशचंद्र द्विवेदी	170.00
बातें कुछ अनकही ● सत्येंद्र गुप्ता	200.00
मैंने देखा है ● सत्येंद्र गुप्ता	200.00
हौसला तो है ● सत्येंद्र गुप्ता	200.00
षिंदगी रुकती नहीं ● सत्येंद्र गुप्ता	200.00
जष्वात की धूप ● धूप धौलपुरी	250.00
मैं एक समुद्र ● डॉ० तारादत्त 'निर्विरोध	200.00
आड़ी-तिरछी यादों-सा कुछ ● नवलकिशोर शर्मा	180.00
जब चाँद डूब रहा था ● नवलकिशोर शर्मा	200.00
एड्स शतक ● पूरणसिंह सैनी	150.00
श्रीगोगाचरित (महाकाव्य) ● पूरणसिंह सैनी	300.00
खोजें जीवन सत्य (दोहे) ● डॉ० ओमदत्त आर्य	150.00
अपनी एक लकीर (दोहे) ● डॉ० ओमदत्त आर्य	200.00
राष्ट्र-शक्ति ● सलेकचंद संगल	150.00
माँ तुझे प्रणाम ● सलेकचंद संगल	150.00
लहरों के विरुद्ध ● डॉ० रामप्रकाश	200.00
हर वृक्ष महाबोधि नहीं होता ● महेंद्र कुमार	200.00
समय के भूगोल में ● राजेंद्र मिश्र	200.00
असाबिया ● राजेंद्र मिश्र	200.00
पीड़ा का राजमहल ● डॉ० उर्मिला अग्रवाल	200.00
उड़ान जारी है ● विनोद भृंग	200.00
सूर्यनगर की चाँदनी ● रामेश्वर वैष्णव	150.00
कहता कुछ मौन (हाइकु-संग्रह) ● हरिराम पथिक	200.00
डॉ० महेंद्रसागर प्रचण्डिया समग्र (भाग एक) ● सं० डॉ० आदित्य प्रचण्डिया	700.00
डॉ० महेंद्रसागर प्रचण्डिया समग्र (भाग दो) ● सं० डॉ० आदित्य प्रचण्डिया	700.00

मान भी जा छुटकी • गीतिका गोयल	150.00
धनुषभंजक राम • चंद्रवीरसिंह गहलौत 'बेदाग'	200.00

आत्मकथा-संस्मरण, साक्षात्कार, पत्र

मेरा जीवन : ए-वन • काका हाथरसी	300.00
आमिर खान : हिंदी सिनेमा के सेवक • धर्मेन्द्र उपाध्याय	250.00
आत्मसरोवर • ओम्प्रकाश अग्रवाल	125.00
निष्ठा के शिखर-बिंदु • नीरजा द्विवेदी	200.00
सफ़र साठ साल का • डॉ० अजय जनमेजय (सं)	400.00
यादों की गुल्लक • गीतिका गोयल, डॉ० अनुभूति (संपादक)	300.00
आधी हकीकत आधा फ़साना • डॉ० बलजीतसिंह	150.00
मेरे साक्षात्कार • डॉ० बालशौरि रेड्डी	250.00
संवाद : साहित्यकारों से • डॉ० गंगाप्रसाद गुप्त 'बरसैया'	200.00
उत्तरोत्तर • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल (संपादक)	250.00

बाल-साहित्य

धरती पर चाँद (पुरस्कृत) • शंभूनाथ तिवारी	150.00
हम बगिया के फूल (बालगीत) • डॉ० बलजीतसिंह	150.00
आओ गीत सुनाओ गीत (बालगीत) • डॉ० बलजीतसिंह	150.00
छुट्टी के दिन बड़े सुहाने (बालगीत) • डॉ० बलजीतसिंह	200.00
दिन बचपन के (बालगीत) • डॉ० बलजीतसिंह	200.00
जादूगर बादल (बालगीत) • विनोद भृंग	150.00
आटे-बाटे दही चटाके (शिशुगीत) • बालकृष्ण गर्ग	150.00
चुनमुन की कहानियाँ (पुरस्कृत) • गीतिका गोयल	150.00
किशोर मन की कहानियाँ • डॉ० सरला अग्रवाल	150.00
चलो आकाश को छू लें • डॉ० तारादत्त निर्विरोध	200.00
मानव-विकास की कहानी • डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
पार्टी गेम्स • चाँदनी कक्कड़	125.00
कागज की नाव • डॉ० सरोजनी कुलश्रेष्ठ	150.00
गधा बत्तीसी • लक्ष्मी खन्ना 'सुमन'	200.00

विविध

सिनेमा, साहित्य और संस्कृति • नवलकिशोर शर्मा	150.00
उत्तराखंड में आध्यात्मिक पर्यटन • डॉ० सरिता शाह	200.00
• निश्तर खानकाही, डॉ० गिरिराजशरण, डॉ० मीना अग्रवाल	
पर्यावरण : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00

नारी : कल और आज	300.00
● निश्तर खानकाही, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	
विश्व आतंकवाद : क्यों और कैसे	125.00
हिंसा : कैसी-कैसी	200.00
● रमेशचंद्र दीक्षित, निश्तर खानकाही,	
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	
मानवाधिकार : दशा और दिशा (पुरस्कृत)	300.00
अपराध-अपराधी : अन्वेषण एवं अभियोजन ● डॉ० गिरिराज शाह	200.00
गुरु नानकदेव ● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
आप भी तनावमुक्त हो सकते हैं ● डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	250.00
वेद-वेदान्त दर्शन ● डॉ० मूलचन्द दालभ	300.00
प्रकृति : एक ज्ञेय तत्त्व ● डॉ० मूलचन्द दालभ	300.00
कन्हैया गीता ● डॉ० मूलचन्द दालभ	900.00
टास्कफोर्स : हैल्थकेयर प्रोजेक्ट्स ● डॉ० गोविंद शर्मा एवं रवि लंगर	450.00
सिद्धाश्रम का संन्यासी ● मनोज भारद्वाज	300.00
समुद्री दैत्य सुनामी ● डॉ० लालबहादुर रावल	300.00
Ecosystem in The Central Himalyas ● Dr.Vikram Singh IPS	200.00

अपना आदेश निम्नलिखित पते पर भेजें

हिंदी साहित्य निकेतन

16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०)

फोन : 01342-263232, 0124-4076565

07838090732